श्रेणिक बिम्बसार

(ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यास

लेखक

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

रीगल बुक डिपो,

नई सड़क, :: दिल्ली।

प्रथमबार २०००   गणतन्त्र दिवस, १९५४ ई०

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली।

प्रथम संस्करण

मूल्य
पाँच रुपया

मुद्रक :
विश्व भारती प्रेस,
पहाड़गंज, दिल्ली

❀ विषय सूची ❀

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हिन्दी में साहित्य की वर्तमान गति—यद्यपि भारत परतन्त्रता की बेडी को तोड कर आज स्वतन्त्र हो चुका है, किन्तु उसकी परतन्त्रता की अनेक कुटेव अभी तक भी बनी हुई है। भारत को वर्तमान स्वतन्त्रता अग्रेजो से मिली है, अत. उसकी नस-नस मे अग्रेजीपना समाया हुआ है। जिस प्रकार समृद्ध योरुप के नर-नारी उपन्यास द्वारा मनोरजन कर समय यापन करते है, उसी प्रकार भारतवासी आज भी करना चाहते है। हिन्दी के लेखक भी अपने ऐसे पाठको की रुचि को पूर्ण करने के लिए अपनी लेखनी का दुरुपयोग कर रहे है।

समय-यापन करने वाले साहित्य का राष्ट्रविरोधी रूप—यद्यपि हमको आज राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल गई है, किन्तु बौद्धिक परतन्त्रता से हम अभी तक भी नही छूट पाये है। इसके अतिरिक्त आर्थिक परतन्त्रता तो हमको अत्यन्त भयकर रूप में कस कर जकडे हुए है। देश के सामने पुर्ननिर्माण के कई क्षेत्र खुले पडे है, जिनमे हमको दसियो वर्ष तक अत्यन्त कठोर परिश्रम करना पडेगा। आज देश के सामने पुर्ननिर्माण का इतना अधिक कार्य है कि भारत के बच्चे-बच्चे के योग से ही उसको पन्द्रह-बीस वर्ष मे पूर्ण किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे हमको समय का अपव्यय करने वाले साहित्य का अध्ययन करना अथवा निर्माण करना दोनो ही कार्य देशहित के प्रतिकूल दिखलाई देते है। जो लोग अपने देश को भरपेट अन्न, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा तथा आजीविका नही दे सकते उनको इस प्रकार समय का अपव्यय करने तथा कराने का कोई अधिकार नही है।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास—इसी भावना के वशवर्ती होकर आज हिन्दी के लेखको मे समय का अपव्यय करने वाले उपन्यासो की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासो का कुछ-कुछ आदर किया जाने लगा है। इधर हिन्दी मे कई एक अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास निकले है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा जैसे उपन्यास लेखको मे आज अग्रगण्य है। किन्तु श्री चतुरसेन शास्त्री को वृन्दावन बाबू की

गति पसंद नही है। उनका कहना है कि "वृन्दावनलाल वर्मा के इतिहास की सत्य रेखाओ पर चलने के कारण उनके उपन्यासों मे इतिहास-रस की अपेक्षा इतिहास-सत्य अधिक व्यक्त हुआ है, जिससे उनकी रचना मे भावना और तल्लीनता की अपेक्षा सतर्कता अधिक व्यक्त हुई है।" श्री चतुरसेन शास्त्री की सम्मति मे "इसी से वृन्दावन बाबू के उपन्यास हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क पर अपना प्रभाव अधिक डालते है और पाठक उनके पात्रो के सुख-दु:ख को अपने सुख-दु:ख मे आरोपित नही कर पाता और केवल एक सहानुभति-पूर्ण दर्शक-मात्र ही रह जाता है।"

ऐतिहासिक उपन्यासों की मर्यादा—श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने ६००. पृष्ठ के विशालकाय उपन्यास "वैशाली की नगर-वधू" के पृष्ठ ८८६ पर लिखा है कि "इस ग्रन्थ मे पात्रो की काल-परिधि का कुछ भी विचार नही किया गया है और आवश्यकता पडने पर इतिहास के सत्य की रक्षा करने की कुछ भी परवाह नही की गई है।"

इसका अर्थ यह हुआ कि श्री चतुरसेन शास्त्री अपने पाठको को इतिहास-रस के नाम से इतिहास के धोखे मे रखना चाहते है। इसीलिये उन्होने अपने इस उपन्यास में अखण्ड ब्रह्मचारिणी महासती चन्दनबाला का विवाह राजकुमार विडूडभ से कराया है, वीतराग भगवान् महावीर स्वामी को राग-द्वेष में रत दिखलाया है तथा उत्तम गृहस्थ महाराजा श्रेणिक बिम्बसार के चरित्र को इतना गिरा हुआ दिखलाया है कि उन्होने प्रथम आर्या मातगी नामक कुमारी कन्या के साथ गुप्त व्यभिचार करके आम्रपाली को उत्पन्न किया और फिर अपनी पुत्री उसी आम्रपाली के साथ भी समागम किया। यदि ऐतिहासिक घटनाओ को इतना अधिक विकृत करके इसे इतिहास-रस नाम दिया जाता है तो ऐसे इतिहास-रस से हिन्दी के पाठको की रक्षा करना प्रत्येक इतिहासप्रेमी का परम कर्तव्य हो जाता है।

ऐतिहासिक उपन्यास तो केवल उसी को कहा जा सकता है, जिसमे ऐतिहासिक तथ्यो की समस्त रूप से रक्षा की गई हो। उसमे कल्पना का उपयोग ऐतिहासिक पात्रो की उन्ही जीवन-घटनाओ के सम्बन्ध मे किया जा सकता है, जिनके सम्बन्ध मे इतिहास मौन हो। ऐतिहासिक पात्रो की ऐसी जीवन-घटनाओ

से सम्बद्ध अन्य नवीन पात्रों की भी कल्पना ऐतिहासिक उपन्यास में की जा सकती है। किन्तु ऐतिहासिक तथ्य को तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करना ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र से बाहिर की बात है।

इतिहास-रस क्या है ?—श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे 'इतिहास-रस' शब्द का नया प्रयोग किया है। इसमें सदेह नही कि ऐतिहासिक उपन्यास मे इतिहास-रस ही प्रधान होता है, किन्तु प्रश्न यह है कि वह इतिहास-रस है क्या ? क्या ऐतिहासिक पात्रो के नाम की पृष्ठभूमि मे उनकी जीवन-घटनाओ को कल्पना की उडान पर उडाना इतिहास-रस है ? निश्चय ही यह इतिहास-रस न होकर इतिहास का उपहास एव उसका दुरुपयोग है। इतिहास-रस इससे विलक्षरण एक और ही रस है, जिसका नीचे वर्णन किया जाता है—

आज के भारत की साहित्यिक आलोचना की मनोवृत्ति अत्यन्त सकीर्ण बन गई है। वह इस विषय मे पाश्चात्य ससार से भी कुछ सीखना नही चाहता। हमारे प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो मे शृङ्गार, हास्य, रौद्र आदि नवरसों का वर्णन मिलने के कारण आलोचना के क्षेत्र को अत्यन्त सकीर्ण बना कर केवल कल्पनात्मक साहित्य—उपन्यास, कहानी तथा कविता को ही साहित्य मान कर उसी की आलोचना की जाती है। आज के भारत के पुर्ननिर्माण-कार्य में मुख्य रूप से भाग लेने वाले इतिहास, राजनीति, शोध तथा विज्ञान के विषयो को साहित्य से एकदम बहिष्कृत करके उनकी एकदम उपेक्षा की जाती है। हमारे आलोचक विद्वानो की इस प्रवृत्ति के कारण आज हिन्दी साहित्य के लेखन तथा प्रकाशन दोनो ही क्षेत्रो मे एक भारी दलबन्दी बन गई है, जिसके द्वारा कविता, कहानी के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के साहित्य का बहिष्कार किया जा रहा है, किन्तु यह प्रवृत्ति आत्मघाती है। इस प्रकार देश की प्रगति मे रोडे डाल कर अपनी स्वार्थसाधना द्वारा बाधा पहुँचाई जा रही है। वास्तव मे आजकल के आलोचको का अध्ययन अत्यन्त सीमित होता है। किन्तु लिखने का एक तो उन्हे व्यसन होता है, दूसरे, अपने शिक्षा-विभाग के स्थान के कारण उनमे पाठ्य ग्रन्थो पर अपना प्रभाव डाल कर अपने एकांगी अध्ययन के बल पर ही अपनी लेखनी से धन कमा लेने की क्षमता होती है। अतएव कम अध्ययन करने वालो के लिए आलोचना

से अधिक सस्ता विषय लिखने के लिए दूसरा नही मिल सकता। इसमे लेखक खूँटे मे बधे हुए बछडे के समान अपनी अत्यधिक सकुचित परिधि के अन्दर घूमता-घामता हुआ ही बिना अन्य विषयो का अध्ययन किये अपने को भारी विद्वान् मान कर लिखता रहता है। किन्तु उसकी इस प्रवृत्ति से हमारे राष्ट्र, हिन्दी भाषा तथा स्वय उस लेखक तीनो की ही उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। यदि भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा की उन्नति करना है तो हिन्दी को अपने आलोचनात्मक दृष्टिकोण को निम्नलिखित दिशाओं मे व्यापक बनाना ही होगा।

नव रसों की सीमा को बढ़ाने की आवश्यकता—भारत का कल्याण आज उन पुराने ढग के नव रसो, उनकी कविताओ तथा समय का अपव्यय करने वाले उपन्यासो से नही हो सकता। आज उसको राजनीति, इतिहास, विज्ञान अर्थशास्त्र आदि विषयो के अनेकानेक ग्रन्थो की आवश्यकता है। अतएव साहित्य को पुराने नौ रसो की सख्या मे परिमित रखने से आज साहित्य के अनेक अग न्याय प्राप्त करने से वचित हो रहे है। अतएव आज आवश्यकता इस बात की है कि नव रसो की इस सख्या को आगे बढा कर तीन-चार नए रसो की कल्पना की जावे। कम से कम यह तीन रस तो अत्यधिक आवश्यक है—

इतिहास रस व विज्ञान रस तथा अन्वेषण रस—इन तीन रसो की कल्पना करके इन-इन विषयो के ग्रन्थो को साहित्य मे उनका उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए। इतिहास रस मे राजनीति का अन्तर्भाव किया जा सकता है, क्योकि वर्तमान इतिहास ही राजनीति है और भूतकालीन राजनीति ही इतिहास है। विज्ञान रस मे भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणिशास्त्र, भूगर्भ विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। जो लोग इन सभी विषयो की शोध मे रुचि रखते है, उनके लिए अन्वेषण रस की कल्पना भी करनी ही पड़ेगी।

इन विषयो का अध्ययन करने वाले इस बात को जानते है कि यह विषय रस शून्य नही है। एक प्राणिशास्त्र का विद्वान् अपने विषय में वर्षों तक केवल इसीलिए तन्मय होकर खोज करता रहता है कि उसको उसमे रस आता है।

इतिहास एव राजनीति का एक विद्वान् सैकडो ग्रन्थो का पर्यालोचन करके केवल इसी-लिये अपने विषय पर तन्मय होकर लिखता रहता है कि उसे उसमे रस आता है। यही बात अन्य अनेक विषयो का अन्वेषण करने वालो पर भी लागू होती है। इन तीनो ,विषयो को रस मानना ही चाहिये। किन्तु यदि आजकल के आलोचक अब भी हठवश इन विषयो को रसो मे सम्मिलित करना स्वीकार न करेगे तो वह देखेगे कि कुछ समय पश्चात् इन विषयो की आलोचना की गगा उनकी पूर्णतया उपेक्षा करके स्वय ही प्रवाहित होने लगेगी।

इस ग्रंथ की कथावस्तु—अब हम आलोचना के विषय को छोडकर फिर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। हमारे प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु का आधार वह प्रसिद्ध व्यक्ति है, जिसको आज भारतीय इतिहास के निर्णीत भाग का आदि पुरुष माना जाता है। वास्तव मे श्रेणिक बिम्बसार से पूर्व का भारतीय इतिहास अत्यधिक विवादास्पद होने के कारण अभी तक भी निर्विवाद रूप से इतिहास मे स्थान नही पा सका है। यद्यपि श्रेणिक बिम्बसार के सम्बन्ध की भी सब घटनाए इतिहास मे नही आ सकी है, किन्तु जैन तथा बौद्ध ग्रन्थ उसके जीवन की अनेक घटनाओ से भरे पडे है। यद्यपि उन सभी घटनाओ को अभी निर्विवाद रूप से सत्य नही माना जा सकता, किन्तु ऐतिहासिक अन्वेषण के इस युग मे कौन जाने कि भविष्य मे कौन सी घटना ऐतिहासिक तथ्य की कसौटी पर खरी उतर आवे। हमने इस ग्रन्थ मे उन सभी घटनाओ को ज्यो-का-त्यो ग्रहण कर लिया है। इससे हमको एक लाभ यह भी हुआ है कि नई-नई कल्पनाए करने का झझट कुछ कम हो गया है, फिर भी हमको इस ग्रन्थ मे कुछ नई-नई कल्पनाए करनी ही पडी है, जैसा कि आगे चल कर दिखलाया जावेगा।

श्रेणिक बिम्बसार एक ऐसा व्यक्ति था, जो भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध दोनों का समकालीन था। उसको दोनो ही महानुभावो के मुख से उनके उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गौतम बुद्ध ने भगवान् महावीर से प्रथम उपदेश देना आरभ किया था। अतएव श्रेणिक बिम्बसार प्रथम बौद्ध बन कर पीछे जैन बना था।

मगध का प्राचीन इतिहास—श्रेणिक बिम्बसार मगध का राजा था। बिहार राज्य के जो प्रदेश आजकल पटना तथा गया जिलो मे सम्मिलित है, उन्ही का प्राचीन नाम मगध था। उसकी राजधानी पहिले गिरिव्रज थी, जो राजगृह से कुछ दूर पच पहाडियो से बाहिर गया के कुछ पास थी। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के ५६ वे सूक्त के मत्र ४ के अनुसार मगध का राजा प्रपगड कीकट नरेश था। यास्क ने अपने निरुक्त (६-३२) मे कीकट को अनार्य बतलाया है। अभिधान चिन्तामणि मे कीकट मगध है। अथर्ववेद के पाचवें काण्ड के २२ वें सूक्त के १४ वे मत्र मे मगध का वर्णन है। मागधो का पहले बुरा समझा जाता था। किन्तु शाखायन ब्राह्मण में उनका सम्मानित रूप मे वर्णन किया गया है। महाभारत के अनुसार बृहद्रथ मगध के प्रथम राजा थे। उस समय मगध मे ८०,००० ग्राम लगते थे और वह विंध्याचल पर्वत तथा गगा, चम्पा और सोन नदियो के बीच मे था। रीज डेविड्स् के अनुसार उस समय मगध की परिधि २३०० मील थी।

ऐतरेय ब्राह्मण मे प्राचीन काल के विविध राज्यो की शासनप्रणालियो का वर्णन करते हुए यह बतलाया गया है कि उन दिनो प्रतीची (पश्चिम) दिशा के सुराष्ट्र (गुजरात), कच्छ (काठियावाड) तथा सौवीर (सिन्ध) आदि देशो के शासन को 'स्वराज्य' कहा जाता था और वहा के शासक 'स्वराट्' कहलाते थे। उदीची (उत्तर) दिशा मे हिमालय के परे उत्तरकुरु, उत्तर मद्र आदि जनपदो मे 'वैराज्य' शासन प्रणाली थी। ये राज्य 'विराट्' या राजा से विहीन होते थे। दक्षिण दिशा मे सात्वत (यादव) लोगो मे 'भोज्य' प्रणाली प्रचलित थी। इन जनपदो के शासको को 'भोज' कहते थे। इसी प्रकार कुछ अन्य जनपदों के शासन का उल्लेख करके ऐतरेय ब्राह्मण मे लिखा है कि 'प्राच्य' (पूर्व) दिशा के देशो मे जो राजा है, वे 'सम्राट्' कहलाते है। उनका साम्राज्य के लिये 'सम्राट्' के रूप मे ही अभिषेक होता है। उन दिनो प्राचीन जनपदो में मगध और कलिंग प्रमुख थे।

बार्हद्रथ वंश—मगध राज्य का प्रारभ ही साम्राज्यवाद की प्रकृति से हुआ। महाभारत के समय मगध का राजा जरासन्ध था। उसके वश को

बार्हद्रथ वश कहा जाता था। जरासन्ध बृहद्रथ से नौवी पीढी पर था। उसने अग, बंग, कलिङ्ग तथा पुण्ड्र आदि को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया और अनेक राज्यों से कर लिया। उसकी राजधानी गिरिव्रज थी। उसने अनेक गणतत्रो पर भी आक्रमण किये। अन्धक-वृष्णियो का मथुरा का सघ राज्य भी उसके आक्रमण का शिकार हुआ, जिससे कृष्ण ने उनके अपना जनपद छोड कर द्वारिका ले जाकर बसाया। बाद मे कृष्ण नें पाण्डवो की सहायता से भीम के हाथों जरासन्ध का वध कराया। उसके बाद ९४० वर्ष तक २२ बार्हद्रथ वशीय राजाओ ने राज्य किया। इस वंश का अतिम राजा रिपुञ्जय था।

रिपुञ्जय के अमात्य का नाम पुलिक था। उसने राजा रिपुञ्जय को मार कर अपने पुत्र बालक को मगध का सम्राट् बनाया। पुलिक मगध के आधीन अवन्ति का राजा भी था। उसके दो पुत्र थे—बालक और प्रद्योत। पुलिक नें अपने बडे पुत्र बालक को मगध का राज्य देकर अपने छोटे पुत्र प्रद्योत को अवन्ति का राज्य दिया। बाद मे प्रद्योत ने अपनी शक्ति को खूब बढा लिया, जिससे बाद मे उसे चण्डप्रद्योत भी कहा गया।

शिशुनाग वंश का संस्थापक भट्टिय शिशुनाग—किन्तु बालक एक निर्बल शासक था। भट्टिय नामक एक बलवान् सेनापति ने उसे मार कर मगध के राज्यसिंहासन पर अधिकार कर लिया। भट्टिय को कही-कही श्रेणिक तथा जैन ग्रन्थो में उपश्रेणिक कहा गया है। सभवत उसका एक नाम शिशुनाग भी था। कुछ विद्वानो का मत है कि भट्टिय पुलिक की परम्परा का अनुसरण करके मगध के राजसिंहासन पर स्वय नही बैठा, वरन् उसने अपनें पन्द्रहवर्षीय पुत्र बिम्बसार को राजा बनाया। किन्तु जैन ग्रन्थो मे लिखा है कि बिम्बसार को अपने पिता उपश्रेणिक का कोपभाजन बन कर निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। क्योकि राजा भट्टिय ने एक भीलकन्या से विवाह करके उसके पुत्र को राजगद्दी देने की प्रतिज्ञा की थी, अत. राजा भट्टिय ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये बिम्वसार को देशनिर्वासित करके अपने पुत्र चिलाती को मगध की गद्दी पर बिठलाया। किन्तु वह एक अच्छा शासक तथा सेनापति नही था। अतएव मगध के नागरिक तथा सैनिक नेताओं ने बिम्बसार को निर्वासित जीवन से

बुला कर अपना राजा बनाया ।

श्रेणिक नाम का कारण—जैन ग्रन्थो मे राजा भट्टिय का नाम उपश्रेणिक तथा बिम्बसार का नाम श्रेणिक बतलाया गया है। किन्तु विद्वानो का विचार है कि श्रेणिक उनका नाम न होकर उनकी उपाधि थी, जो उनको अपनी सैन्य-बल के महत्त्वशाली 'श्रेणिबल' के कारण प्राप्त थी । विद्वानो का विचार है कि उन दिनो मगध मे सैनिको की अनेक श्रेणियाँ (Guilds) थी, जिनका सगठन स्वतन्त्र होता था । श्रेणियो मे सगठित इन सैनिको की आजीविका युद्ध से ही चलती थी। राजा लोग उन सैनिको को अपने अनुकूल बना कर उनकी सहायता प्राप्त करने के लिये सदा उत्सुक रहा करते थे । सभवत भट्टिय इसी प्रकार की एक शक्तिशाली सैनिक श्रेणि का नेता था, किन्तु बिम्बसार की आधीनता सभी श्रेणियो ने स्वीकार कर ली थी । इसीलिये भट्टिय को उपश्रेणिक तथा बिम्बसार को श्रेणिक कहा गया । ऐसा जान पडता है कि बिम्बसार ने अपने बल को बढा कर अपनी सेनाओ के श्रेणि रूप को समाप्त कर अपनी सेनाओ को अधिक सगठित किया । इसीसे बाद मे इसके पुत्र कुणिक अजातशत्रु को श्रेणिक नही कहा गया ।

किन्तु अवन्ति के राजा प्रद्योत को मगध मे अपने भाई का राज्यच्युत होना अच्छा नही लगा । इसीलिये उसने मगध पर आक्रमण करने की तैयारी की । अवन्ति तथा मगध के घोर सघर्ष का वर्णन इन पक्तियो में आगे किया जावेगा । कहना न होगा सघर्ष मे मगध ही सफल हुआ । मगध मे भृत तथा श्रेणि बल की प्रधानता बाद मे भी किसी न किसी रूप मे अवश्य बनी रही । इसलिये मगध की सैनिक शक्ति ऐसी प्रचण्ड बन गई कि अन्य राज्य उसके सामने नही टिक सकते थे ।

सोलह महाजनपद—राजा बिम्बसार के समय तथा उसके बाद भी मगध की इतनी अधिक उन्नति हुई कि क्रमश वह भारत की सब से बडी राजनीतिक शक्ति बन गया । मगध की तत्कालीन इस उन्नति पर विचार करने के लिये भारत के उस समय के अन्य राज्यो का वर्णन करना भी आवश्यक है ।

प्राचीन भारत मे अनेक छोटे-छोटे राज्य थे । इनमे से प्रत्येक राज्य को 'जनपद' कहा जाता था । कालान्तर में इनमे से कुछ जनपद उन्नति की

दिनो चम्पा, गिरिव्रज (राजगृह), श्रावस्ती, साकेत, काशी तथा कौशाम्बी भारत के बडे नगर थे। व्यापारी लोग चम्पा से अपने-अपने पोतो (जहाजो) में माल भर कर स्वर्णभूमि (बर्मा) तथा पूर्वी द्वीपसमूह तक जाया करते थे। अग तथा मगध में प्राय युद्ध हुआ करते थे। मगध के महाराज भट्टिय उपश्रेणिक के समय अग की गद्दी पर महाराज ब्रह्मदत्त विराजमान थे। उन्होंने एक बार महाराज भट्टिय को युद्ध मे पराजित भी किया था। बिम्बसार के समय उनके पुत्र दधिवाहन पर कौशाम्बी नरेश शतानीक ने आक्रमण करके उनको मार दिया और अग पर अधिकार कर लिया। किन्तु दधिवाहन के पुत्र दृढवर्मन् को शतानीक के पुत्र उदयन ने फिर से अगपति बना दिया, जैसा कि प्रियदर्शिका में लिखा हुआ है।

बाद में सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने दृढवर्मन् से अग जीतकर उसे मगध में मिला लिया।

२. **मगध**—वर्तमान पटना तथा गया जिलो को मगध राज्य कहा जाता था। महाभारत के अनुसार यहा का प्रथम नरेश बृहद्रथ था। उसके बाद जरासन्ध यहा का सब से प्रतापी राजा हुआ। उसके समय मे मगध मे ८०,००० ग्राम लगते थे और यह विन्ध्याचल तथा गगा, चम्पा तथा सोन नदियो के बीच में था। उसकी परिधि २३०० मील थी। राजा श्रेणिक तथा अजातशत्रु के समय मगध की सीमाए बहुत कुछ बढ गईं, जिनका यथास्थान आगे वर्णन किया जावेगा। श्रेणिक बिम्बसार ने ५२ वर्ष तथा उसके पुत्र अजातशत्रु ने २५ वर्ष तक राज्य किया।

३ **काशी**—अथर्ववेद में काशी, कोशल तथा विदेहो का साथ-साथ वर्णन किया गया है। शाख्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार श्वेतकेतु के समय जल जातुकर्ण्य काशी, विदेह और कोशल के नरेशो का पुरोहित था। काशीराज पुरुवशी थे। पौरववंश के बाद काशी मे ब्रह्मदत्त वश का राज्य हुआ। इस वश की स्थापना काशी में महाभारत काल मे हुई थी। सभवत यह वश विदेहो की शाखा थी। ईसा पूर्व ७७७ में काशीराज अश्वसेन का देहान्त हुआ था।

राजा अश्वसेन अथवा विश्वसेन ने अश्वमेध यज्ञ किया था। बाद मे जैनियो के तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ ने उनकी पटरानी ब्रह्मदत्ता की कोख से

जन्म लिया। सभवत अपने पुत्र के प्रभाव के कारण बाद मे वह जैनी हो गए। इसी से उनका उत्साह सैन्य सगठन मे नही रहा और बाद मे शतानीक शत्रुजित् ने उन्हे पराजित कर दिया। किन्तु काशीराज ने विभिन्न काल मे कोशल, अश्मक, अग तथा मगध तक को पराजित किया था। काशी राज्य के पश्चिम मे वत्स राज्य, उत्तर मे कोशल राज्य तथा पूर्व में मगध राज्य था। समय-समय पर वत्सो, कोशलो तथा मागधो ने भी काशी को जीता। बुद्ध से लगभग १५० वर्ष पूर्व ब्रह्मदत्तवशीय काशी-नरेश ने कोशल पर विजय प्राप्त की। ईसा पूर्व ६७५ तक काशी का अच्छा प्रभाव बना रहा।

५ **कोशल**—कोशल राज्य वर्तमान अवध प्रात मे था। पहिले इसकी राजधानी अयोध्या थी, जो सरयू नदी के किनारे पर थी। बौद्ध काल मे अयोध्या का प्रभाव घटने पर श्रावस्ती उसकी राजधानी हुई। श्रावस्ती अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर स्थित थी। ईसा पूर्व सन् ५३३ से कोशल की गद्दी पर प्रसेनजित् बैठा। वह इक्ष्वाकुवशीय क्षत्रिय था। उसने अपनी प्रधान राजधानी श्रावस्ती ही बनाई। साकेत श्रावस्ती से ४५ मील उत्तर को थी। साकेत सरयू नदी के किनारे पर ही बसा हुआ था। अतएव वह स्थल व्यापार के अतिरिक्त नौ-व्यापार का भी मुख्य केन्द्र था। उन दिनो सरयू का विस्तार डेढ मील का था और उसमे बडे-बडे पोत चला करते थे। महाराज प्रसनजित् का साकेत मे भी एक राजमहल तथा किला था।

श्रावस्ती में उन दिनो समस्त जम्बूदीप की सम्पत्ति एकत्रित थी। वहा अनेक धनकुवेर निवास करते थे, जिनके सार्थ जम्बूद्वीप के अतिरिक्त ताम्रलिप्ता नदी के मार्ग द्वारा पूर्व में बगाल की खाडी तथा पश्चिम में भरुकच्छ तथा शूर्पारक के मार्ग से अरब सागर को पार कर लक्षद्वीप, मालद्वीप तथा सुदूर पश्चिम के अन्य द्वीपो मे व्यापार करके जम्बूद्वीप की सम्पदा का विस्तार किया करते थे। इनके अतिरिक्त एक मार्ग श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक जाता था। उस मार्ग में माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी तथा साकेत पडते थे। श्रावस्ती से एक सरल मार्ग राजगृह को पार्वत्य प्रदेश में होकर जाता था। इस मार्ग मे सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलीपुत्र और नालन्द पड़ते थे। नदियो से उन दिनो व्यापार का कार्य अधिक लिया

जाता था। उन दिनो गगा मे सहजाति और यमुना मे कौशाम्बी तक बडी-बडी नावे चलती थी। सार्थवाह विदेह होकर, गान्धार होकर, मगध होकर सौवीर तक, भरुकच्छ से बर्मा तक, दक्षिण होकर बैबिलोन तक तथा चम्पा से चीन तक जाते-आते थे। कोशल जनपद के पश्चिम मे पाचाल, पूर्व मे सदानीरा (गण्डक) नदी, उत्तर मे नेपाल की पर्वतमाला तथा दक्षिण मे स्यन्दिका नदी थी। आधुनिक समय का अवध प्रात प्राय प्राचीन काल का कोशल ही है।

प्रसेनजित् बडा भारी दिग्विजयी सम्राट् था। वास्तव मे उन दिनो कोशल का प्रसेनजित् तथा मगध का श्रेणिक बिम्बसार दोनो समस्त जम्बूद्वीप पर अधिकार करके चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा रखते थे। प्रसेनजित् ने शाक्यो को पराजित करके बलपूर्वक उनकी एक राज्यकन्या से विवाह किया। किन्तु शाक्य प्रसेनजित् से घृणा करते थे, क्योकि उसके घर मे कोई कुलीन रानी नही थी। उसकी राजमहिषी एक माली की लडकी थी। अतएव उन्होंने प्रसेनजित् के साथ धोखा करके उसको एक राजकुमारी न देकर उसके साथ नन्दिनी नामक एक ऐसी राजकुमारी का विवाह किया, जो वासभ खत्तिया नामक एक दासी मे सामत महालनामन से उत्पन्न हुई थी। प्रसेनजित् का उत्तराधिकारी पुत्र विडूडभ इसी शाक्य कुमारी नन्दिनी से उत्पन्न हुआ था। विडूडभ के प्रपौत्र सुमित्र को महापद्मनन्द ने ईसा पूर्व ३८० के आस-पास राज्यच्युत करके कोशल को मगध मे मिला लिया।

५ वृजि या वज्जी—यहा उन दिनो गणतत्र शासन प्रणाली थी, जिनकी राजधानी वैशाली थी। पहिले इसका नाम विशालपुरी था। मिथिला वैशाली से उत्तर पश्चिम ३५ मील पर थी। उसकी राजधानी तब भी जनकपुर ही थी। वास्तव मे विदेह राज्य ने ही टूट कर वज्जी सघ का रूप ग्रहण कर लिया था। इसमे निम्नलिखित अष्टकुल थे—विदेह, लिच्छवि, ज्ञातृक, वज्जी, उग्र, भोज, ऐक्ष्वाकु और कौरव। इनमे प्रथम चार प्रधान थे। विदेहो की राजधानी मिथिला तथा लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी, जो आजकल के मुजफ्फरपुर जिले मे थी। लिच्छवियों के भी नौ राजा थे। उनके प्रधान गणपति उन दिनो राजा चेटक थे, जो बाद में समस्त वज्जीसघ के भी गणपति हो गए थे। ज्ञातृको की राजधानी वैशाली के निकट कुण्डपुर या कोल्लाग थी। इसे कुण्डलपुर भी कहा

जाता था। उसके प्रधान उन दिनो राजा सिद्धार्थ थे। जैनियो के अतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर उन्ही राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। वैशाली बहुत बडा नगर था। उसके तीन भाग थे। रामायण मे लिखा है कि वैशालिक वश के सस्थापक इक्ष्वाकु राजा अलम्बुष के पुत्र विशाल थे। पुराणो मे भी उनको वशधर माना गया है। इसी कारण लिच्छवियो को शुद्ध क्षत्रिय माना जाता था। उनको अपनी वशशुद्धि का अभिमान भी कम नही था। यह लोग जैन तथा बौद्धो के बराबर सहायक रहे। इसीलिये वैदिक परिपाटी वालो ने उनको द्वेषवश व्रात्य क्षत्रिय लिखा है।

वैशाली के तीन जिले थे- वैशाली, कुण्डपुर (कोल्लाग या कुण्डलपुर) तथा वाणिज्य ग्राम। तिब्बती मत के अनुसार इन तीनो मे क्रमश ७०००, १४००० तथा २१००० मकान थे। वृजि लोगो में प्रत्येक गाव के सरदार को राजा या राजुक कहा जाता था। लिच्छवियो के ७७०७ राजा थे और उनमे से प्रत्येक उपराज, सेनापति और भाण्डागारिक (कोषाध्यक्ष) भी था।

वैशाली के खण्डहर अब भी मुजफ्फरपुर से पश्चिम की ओर को जाने वाली पक्की सडक पर वहा से अठारह मील दूर 'वैसोढ' नामक एक छोटे से गाव मे देखे जा सकते है। अब से लगभग अढाई सहस्र वर्ष पूर्व यह एक अत्यत विशाल नगर था। उसके चारो ओर तिहरा परकोटा था। यह नगर अत्यत समृद्ध था। उसमे ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करणिया थी। उन दिनो समृद्धि मे उस नगरी की समानता भारत का कोई नगर नही कर सकता था। उन दिनो यह गणतत्र पूर्वी भारत मे एक मात्र आदर्श तथा शक्तिशाली सघ था। इसीलिये यह प्रतापी मगध साम्राज्य की साम्राज्य-विस्तार भावना मे सबसे बडी राजनीतिक तथा सामरिक बाधा था।

वैशाली नगर के चारो ओर काष्ठ के तीन प्राकार बने हुए थे, जिनमे स्थान-स्थान पर गोपुर तथा प्रवेशद्वार बने हुए थे। गोपुर इतने ऊचे थे कि उनके ऊपर खडे होकर मीलो तक के दृश्य को देखा जा सकता था। इनके ऊपर खडे होकर प्रहरीगण हाथो मे पीतल के तूर्ण लिये हुए पहरा दिया करते थे।

वज्जी महाजनपद वत्स, कोशल, काशी तथा मगध जनपदो के बीच मे घिरा हुआ था। यह श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले मार्ग पर पडने के कारण

उन दिनो व्यापारिक तथा राजनीतिक सघर्षों का केन्द्र बना हुआ था।

यह पीछे लिखा जा चुका है कि उन दिनो यहा के गणपति राजा चेटक थे जो लिच्छवियो के भी गणपति थे। उनकी छ कन्याए तथा एक बहन थी। इन सातो कन्याओ के कारण उन्होने वज्जी गणतत्र के सबध भारत के कई राज्यो से बना रखे थे। उनकी बहिन त्रिशला का विवाह ज्ञातृक कुल के गणपति राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था, जिनके यहा जैनियो के चौबीसवे तीर्थकर भगवान् महावीर स्वामी ने जन्म लिया था। श्वेताम्बर जैन ग्रन्थो मे त्रिशलादेवी को राजा चेटक की बहिन बतलाया गया है, जो उसकी बडी आयु को देखते हुए ठीक मालूम देता है। दिगम्बर ग्रन्थो मे उसे राजा चेटक की सातो कन्याओ में सब से बडी बतलाया गया है। उसके नाम प्रियकारिणी तथा मनोहरा भी थे। राजा चेटक की दूसरी पुत्री मृगावती का विवाह वत्सनरेश शतानीक के साथ कौशाम्बी मे हुआ था। शतानीक को प्राचीन ग्रन्थो मे सार तथा महाराज नाथ भी लिखा गया है। उन दोनो के पुत्र उदयन के सम्बन्ध मे सस्कृत-साहित्य मे अनेक नाटक लिखे गए है। राजा चेटक की तृतीय पुत्री वसुप्रभा का विवाह दशार्ण (दशानन) देश के हेरकच्छपुर (कमैठपुर) के सूर्यवशीय राजा दशरथ के साथ हुआ था। राजा चेटक की चौथी कन्या प्रभावती का विवाह कच्छदेश के रोरुकपुर के राजा महातुर के साथ हुआ था। पाचवी कन्या धारिणी अग नरेश दधिवाहन के साथ चम्पापुर मे ब्याही गई थी। उसके दो सतान थी—एक दृढवर्मन नामक पुत्र, दूसरी महासती चन्दनबाला, जो बालब्रह्मचारिणी रह कर विवाह किये बिना ही भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेने गई थीं। राजा चेटक की छठी पुत्री ज्येष्ठा के विवाह का उल्लेख नही मिलता। उनकी सबसे छोटी पुत्री चेलना का विवाह मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के साथ हुआ था। इस विवाह के कारण मगध तथा वज्जीगण का होने वाला युद्ध तो टल ही गया, इन दोनो विपरीत आदर्श वाले राज्यो मे लगभग ७५ वर्ष तक घनिष्ठ मैत्री भी बनी रही। बाद मे बिम्बसार तथा चेलना के पुत्र अजातशत्रु ने इस संघ पर आक्रमण करके इसे समाप्त कर दिया। वज्जी सघ का शासन एक राज्यपरिषद् किया करती थी, जिसका निर्वाचन प्रत्येक सातवे वर्ष आठों कुलो मे से किया जाता था।

राज्य में थी । महाभारत में पाण्डवो ने अपना अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष यहीं व्यतीत किया था। महाभारत युद्ध मे राजा विराट् तथा उसके दोनो पुत्रों ने बडा पराक्रम दिखलाया था । विराट् की राजपुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ था। उसी का पुत्र परीक्षित् पाण्डवो का उत्तराधिकारी बनकर हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा था । सोलह महाजनपद काल मे मत्स्य मे भी सघ राज्य था ।

१२. शूरसेन—इसकी राजधानी मथुरा थी। महाभारत के समय यह प्रसिद्ध अन्धक-वृष्णि सघ का केन्द्र था । बौद्ध साहित्य मे शूरसेन के राजा अवन्तिपुत्र का उल्लेख मिलता है, जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था । यह राजा प्रद्योत का पुत्र था । जैन ग्रन्थो में अवन्तिपुत्र का नाम सुबाहु दिया हुआ है । काव्यमीमासा मे शूरसेनो के राजा का नाम कुविन्द लिखा है । शूरसेनो का उल्लेख मेगस्थर्नाज ने भी किया है ।

१३ अश्मक—यह राज्य बौद्ध ग्रन्थ, सुत्तनिपात के अनुसार महाराष्ट्र मे गोदावरी के निकट था। किन्तु पाणिनि उसे दक्षिण प्रान्त मे बतलाता है । महाराष्ट्रीय लोगो को आज भी दक्षिणी कहा जाता है । सम्भवत इसीलिये पाणिनि ने उनको दक्षिण प्रात मे बतलाया है। अश्मक की राजधानी पोतन या पातलि थी । महाभारत में भी अश्मकपुत्र का उल्लेख है। वहा अश्मक की राजधानी का नाम पौदन्य बतलाया गया है । मूलक जनपद इसके दक्षिण मे था । महागोविन्द सुत्त के अनुसार अश्मकराज ब्रह्मदत्त, कलिङ्गराज सत्तभु, अवन्तिराज वेस्सभु, सौवीर राज भरत, विदेहराज रेणु तथा काशीराज धत्तरथ समकालीन थे । चुल्ल कलिग जातक के अनुसार अश्मक-नरेश अरुण ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी । सम्भवत. महाराष्ट्र से मिला होने के कारण अश्मक तथा अवन्ति की सीमाएँ मिलती थी, किन्तु अन्य ग्रन्थो मे अश्मक और मूलक का नाम एक साथ आता है । यहाँ का राजा ब्रह्मदत्त दक्षिण कोशल का सूर्यवशी राजा था ।

१४ अवन्ति—आधुनिक मालवे का नाम प्राचीन काल मे अवन्ति था । उसकी राजधानी उज्जैन थी । इन दिनों यहा का राजा प्रसिद्ध प्रद्योत था । उसका पिता अवन्तिराज का मत्री था। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, उसने अपने स्वामी को मारकर अपने पुत्र को राजा बनाया था । प्रद्योत एक

प्रबल शासक था। उसने अनेक युद्धो में विजय प्राप्त की थी। इसीलिये उसे चण्ड प्रद्योत भी कहते थे। वत्स को जीतने की उसे बडी अभिलाषा थी। इसलिये उसमे तथा उदयन मे बहुत समय तक शीतयुद्ध चला। उदयन को उन दिनो वीणावादन मे तीन लोक मे अद्वितीय समझा जाता था। वीणा बजाकर ही वह हाथियो को भी पकड लिया करता था। एक बार प्रद्योत ने वत्स की सीमा पर एक नकली हाथी खड़ा करवा दिया और उसके पेट मे अनेक योद्धाओ को छिपा दिया। उदयन जब उसको वश मे करने गया तो योद्धा लोग उसे पकड कर उज्जैन ले गए। प्रद्योत ने उज्जैन लाकर उसे अपनी पुत्री को सगीत सिखाने का कार्य दिया। बीच में एक पर्दा डालकर सगीत की शिक्षा दी जाती थी। प्रद्योत ने अपनी पुत्री को बतला रखा था कि उसे एक अन्धा शिक्षा दे रहा है और उदयन को बतला रखा था कि उसे एक कुबडी वृद्धा को शिक्षा देनी है। एक दिन किसी बात पर राजकुमारी ने उदयन को अन्धा कहा। तब उदयन ने उसे कुबडी बुड्ढी कहा। अत मे उसने असली बात को जानकर राजकुमारी को अपना वास्तविक परिचय दिया। अब तो दोनों मे घनिष्ठ प्रेम हो गया। उधर उदयन का कूटनीति-विशारद महामात्य यौगन्धरायण अपनी नीति का आश्रय लेकर समस्त उज्जैन मे अपने चरो का जाल बिछा चुका था। उनकी सहायता से उसने उदयन को प्रद्योत की पुत्री सहित उज्जयिनी से चुपचाप निकाल लिया। अपनी पुत्री से उदयन का विवाह हो जाने पर चण्ड प्रद्योत ने भी उन दोनो को आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् अवन्ति तथा वत्स मे स्थायी सधि हो गई।

१५. गान्धार—आजकल के अफगानिस्तान तथा पख्तूनिस्तान का नाम उन दिनों गाधार देश था। आजकल के कन्दहार नगर का नाम उन दिनो गाधार था और उसी के नाम पर इस देश का नाम गान्धार देश पड़ा था। महाभारत के समय दुर्योधन का मामा शकुनि यहा का राजा था। इसीलिये उसकी बहिन को गान्धारी कहा जाता था। सोलह महाजनपद काल मे गान्धार देश की राजधानी तक्षशिला थी। इन दिनों गान्धार के राजा का नाम पुक्करणाति अथवा पुक्कसाति था। उसने राजा बिम्बसार को पठौनी भेजी थी और युद्ध मे प्रद्योत को हराया था। आजकल के रावलपिण्डी, पेशावर, काश्मीर तथा हिन्दूकुश पर्वतमाला सब गान्धार में ही थे।

तक्षशिला में इन दिनो ऐसा बडा भारी विश्वविद्यालय था कि संसार भर मे उसकी जोड का दूसरा विश्वविद्यालय नही था। उसमे सभी विषयो के साथ-साथ [illegible]यन तथा युद्ध विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी। आर्य बहुलाश्व उसके प्रधान आचार्य थे। तक्षशिला के बाद दूसरा विश्वविद्यालय उन दिनो राजगृह मे था।

१६. काम्बोज—यह जनपद उत्तरापथ में गान्धार के निकट था। इसकी राजधानी का नाम राजपुर अथवा राजघट था। नन्दिनगर नाम की एक अन्य बस्ती भी काम्बोज मे थी। महाभारत मे चन्द्रवर्मन तथा सुदक्षिण काम्बोज थे। इसकी राजधानी द्वारिका थी। यहा सघ राज्य था। गान्धार के परे उत्तर मे पामीर का प्रदेश तथा उससे भी परे बदख्शा का प्रदेश काम्बोज महाजनपद मे ही था।

इस प्रकार इन सोलह महाजनपदो मे से निम्नलिखित छै मे सघ राज्य थे।

बज्जी, मल्ल, मत्स्य, कुरु, पाञ्चाल तथा काम्बोज। शेष दस में राजा राज्य करते थे। राजा लोग सदा ही सघ राज्यो को हडपने की योजना बनाया करते थे।

तत्कालीन अन्य जनपद—कोशल-नरेश प्रसेनजित् के आधीन निम्नलिखित पाच राज्य थे—काशी, यायावि, सेतव्यानरेश, हिरण्यनाभ कौशल और कपिलवस्तु के शाक्य। इस प्रकार बुद्ध के समय सोलह महाजनपदो मे से कई लुप्त हो चुके थे।

यह सोलह महाजनपद उत्तरी भारत मे ही थे। दक्षिण के राज्य इनसे पृथक् थे। दक्षिण के पैठण, पतित्थान अथवा दक्षिणापथ का उल्लेख भी इस काल के ग्रन्थो मे आता है। यह आन्ध्रों की राजधानी थी। कलिङ्ग का नाम भी इन सोलह जनपदो मे नही है। उसकी राजधानी दन्तिपुर थी। चोल और पाण्ड्य राज्य तो वाल्मीकीय रामायण से भी पुराने राज्य थे। सौवीर (सिन्ध) देश की राजधानी रोरुक थी। यह व्यापार का प्रधान केन्द्र था। वहाँ यहूदी राजा सोलोमन के जहाज भी व्यापारार्थ आया करते थे। यहा के राजा का नाम रुद्रायण था। मद्रदेश की राजधानी सागल भारत के उत्तर-पश्चिम मे थी। महाभारत के समय मे इसे साकल कहा जाता था। बाद में राजा

मिलिन्द ने यही राज्य किया। इस प्रकार इन सोलह महाजनपदो के अतिरिक्त उन दिनो भारत मे अन्य भी अनेक जनपद थे, जिनमे अनेक स्वतन्त्र थे। कोशल के उत्तर तथा मल्लजनपद के पश्चिमोत्तर मे आधुनिक नेपाल की तराई मे अचिरावती (राप्ती) तथा रोहिणी नदी के बीच शाक्यो का गणराष्ट्र था, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। महात्मा बुद्ध का जन्म यही हुआ था। शाक्य गण के पास ही कोलिय गण था, जिसकी राजधानी रामग्राम थी। वही मोरियगण भी था, जिसकी राजधानी पिप्पलिवन थी। बुलि गण, भग्ग गण तथा कालाप गण भी यही थे, जिनकी राजधानियो के नाम क्रम से अल्लकप्प, सुंसुमार तथा केसपुत्त थे।

गाधार, कुरु तथा मत्स्य के बीच मे केकय, मद्रक, त्रिगर्त और यौधेय जनपद थे तथा अधिक दक्षिण मे सिन्धु, शिवि, अम्बष्ठ तथा सौवीर आदि थे। सिहल को नागद्वीप, ताम्रपर्णी या हंस द्वीप भी कहते थे। सौवीर के सम्बन्ध मे तीन मत मिलते है। एक मत के अनुसार वह दक्षिण मे था, दूसरे के अनुसार वह सिंध था तथा तीसरे मत के अनुसार वह सूरत था।

किन्तु यह सभी जनपद उस समय अपने पडौसी शक्तिशाली महाजनपदो की किसी न किसी रूप मे आधीनता स्वीकार करते ही थे। वास्तविक बात तो यह है कि इन सोलह महाजनपदो मे से भी मगध, वत्स, कोशल और अवन्ति यह चार ही सबसे अधिक शक्तिशाली थे। यह एक ओर अपने पडौसी जनपदो को जीतकर अपने आधीन करते जाते थे तो दूसरी ओर यह आपस मे भी एक दूसरे को हडप जाने का यत्न किया करते थे।

श्रेणिक बिम्बसार का शासन—यह ऊपर बतला दिया गया है कि श्रेणिबल के धारक सेनापति भट्टिय ने राजा बालक को मार कर मगध के राजसिंहासन को हस्तगत किया था। सम्भवत इस राजा बालक का दूसरा नाम कुमारसेन भी था। महाकवि बाणभट्ट ने भी इस घटना का उल्लेख अपने ग्रन्थ हर्षचरित्र मे किया है। उन दिनो महाकाली के मेले मे महामास की बिक्री के कारण एक झगडा उठ खडा हुआ था। उस गडबड से लाभ उठाकर श्रेणिक भट्टिय की प्रेरणा से तालजङ्घ नामक एक वेताल सैनिक ने राजा कुमारसेन पर अचानक आक्रमण करके उसे जान से

मार दिया था। भद्रिय उपश्रेणिक के बाद उसका पुत्र चिलाती गद्दी पर बैठा। किन्तु सेनाओ ने उसके शासन को सहन न कर उसके ज्येष्ठ भ्राता श्रेणिक बिम्बसार को निर्वासित जीवन से वापिस बुलाकर मगध के राजसिंहासन पर बिठलाया।

वास्तव मे इस समय मगध मे आर्यभिन्न सैनिक श्रेणियो की प्रबलता थी। उनके नेता मगध के सिंहासन को गेंद के समान उछालते रहते थे। किन्तु बिम्बसार उनके वास्तविक नेताओ मे से था। वह बहुत शक्तिशाली तथा महत्त्वाकाक्षी राजा था। किन्तु उन दिनो अन्य भी कई शक्तिशाली और महत्त्वाकाक्षी राजा थे।

कोशल-नरेश प्रसेनजित् का पिता महाकोशल बहुत महत्त्वाकाक्षी था। उसने ईसा पूर्व ६७५ मे काशी पर आक्रमण किया किन्तु इस आक्रमण में उसको पराजित होना पडा। बाद मे महाकोशल ने इसके पचास वर्ष बाद ईसा पूर्व ६२५ मे काशी को पराजित करके अपने राज मे मिला लिया। प्रसेनजित् ने अपने पिता के दिग्विजय कार्य को बराबर जारी रखा। वह एक कूटनीतिकुशल शासक था। उसने सोचा कि शक्तिशाली मगध राज्य के विरोध मे रहकर दिग्विजय कार्य को आगे नही बढाया जा सकता। अत उसने मगध के राजा बिम्बसार के साथ अपनी बहिन कोशलदेवी उपनाम क्षेमा का विवाह कर दिया। इस विवाह के दहेज मे प्रसेनजित् ने अपनी बहिन के 'नहान चुन्न मूल्य' के रूप मे काशी जनपद का एक ऐसा प्रदेश बिम्बसार को दिया, जिसकी आय एक लाख वार्षिक थी। कोशल के साथ वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने से मगध और कोशल दोनो की मित्रता हो गई और उन दोनो को एक दूसरे के अपने ऊपर आक्रमण का भय न रहा और प्रसेनजित् का पूर्व की ओर साम्राज्यविस्तार का मार्ग एकदम साफ हो गया।

राजा बिम्बसार ईसा पूर्व ५८४ मे पन्द्रह वर्ष की आयु मे गद्दी पर बैठा था। उसने ईसा पूर्व ५३२ तक ५२ वर्ष राज्य किया। गद्दी पर बैठने से पूर्व ही उसका विवाह वेणपद्म नगर के सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री नन्दश्री के साथ हो चुका था, जिससे उसको अभयकुमार जैसा प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न हुआ था। राजगद्दी पर बैठने के बाद उसने कोशल राजकुमारी के साथ विवाह करके अपनी उच्चकोटि की राजनीतिज्ञता का परिचय दिया।

बिम्बसार द्वारा अंग पर अधिकार—अंग तथा मगध का झगडा बहुत पुराना था। अगराज ने पहिले बिम्बसार के पिता राजा भट्टिय उपश्रेणिक को हरा दिया था। किन्तु जैन ग्रन्थो मे लिखा है कि अगराज दधिवाहन को शीघ्र ही वत्स देश के राजा शतानीक के हाथ पराजित हो कर अपने प्राणो से हाथ धोना पडा। यद्यपि शतानीक के पुत्र उदयन ने दधिवाहन के पुत्र दृढवर्मा को अग का राज्य वापिस दे दिया, किन्तु बाद मे राजा बिम्बसार ने दृढवर्मा को युद्ध मे मार कर अग को मगध साम्राज्य मे मिला लिया। कुछ ग्रन्थो मे बिम्बसार द्वारा पराजित होने वाले अगराज का नाम ब्रह्मदत्त लिखा है। सभव है ब्रह्मदत्त उसकी उपाधि हो, क्योकि इस नाम के अनेक अगराज हमको इतिहास में मिलते है।

अग को जीतने से मगध की शक्ति बहुत बढ गई। काशी का कुछ प्रदेश उसको पहिले ही प्राप्त हो गया था, अब अग पर अधिकार हो जाने से मगध की शक्ति इतनी अधिक बढ गई कि वह साम्राज्यविस्तार के सघर्ष के उस मार्ग पर अग्रसर होने लगा, जिसका उग्ररूप उसके पुत्र अजातशत्रु के शासन मे देखने को मिला।

राजगृह का निर्माण—आदि मे मगध की राजधानी गिरिव्रज थी। किन्तु इस नगर की किलेबदी उत्तम न होने के कारण यह लिच्छवियो के आक्रमणो से सुरक्षित नही था। एक बार तो इन आक्रमणो के कारण गिरिव्रज में भारी आग लग गई। अतएव सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने गिरिव्रज को छोड़कर उदयगिरि, सोनागिरि, खण्डगिरि, रत्नागिरि तथा विपुलाचल इन पाच पहाडियो के बीच मे एक नए नगर की स्थापना करके उसका नाम राजगृह रखा। महागोविंद नामक प्रसिद्ध वास्तुकलाविद् ने राजगृह के राजप्रासादो का निर्माण किया। राजगृह को एक ऐसे दुर्ग के रूप मे बनवाया गया कि वह लिच्छवियों के आक्रमणों का सफलतापूर्वक मुकाबला कर सके। उपरोक्त पाचो पर्वतो ने राजगृह की स्वाभाविक प्राचीर का काम अच्छी तरह किया। जिस एक स्थान पर पर्वतो की घाटी थी उसको सुदृढ दीवार बना कर पूर्ण किया गया। इस नए नगर के कारण वज्जियो के आक्रमण बन्द हो गए। राजा चेटक की पुत्री रानी चेलना के साथ विवाह होने से तो

शाली तथा मगध मे एक स्थायी सधि भी हो गई।

उन दिनो मगध उन्नति के चरम शिखर पर था। बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग के अनुसार मगध राज्य मे ८०,००० ग्राम थे, जिनके ग्रामिक बिम्बसार की राजसभा मे एकत्रित हुआ करते थे। एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ मे उसके राज्य का विस्तार ३०० योजन लिखा गया है।

बिम्बसार के रनवास मे अनेक रानिया थी। जैन ग्रन्थो मे नन्दश्री, कोशल-राजकुमारी, केरल राजकुमारी तथा लिच्छवी राजकुमारी यह चार रानिया ही उसकी बतलाई गई है, किन्तु बौद्धग्रन्थ महावग्ग के अनुसार उसकी रानियो की संख्या ५०० थी। सभव है कि इस विषय मे बौद्ध लेखक ने कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया हो। जैन ग्रन्थो में राजा श्रेणिक के आठ पुत्रो के नाम मिलते है। उनमे नन्दश्री का पुत्र अभयकुमार सबसे प्रसिद्ध था। रानी चेलना के सात पुत्र बतलाए गए है, जिनमे कुणिक सबसे बडा था। अजातशत्रु के नाम से बाद में वही मगध-सम्राट् बना था। बौद्ध ग्रन्थों मे दर्शक, शीलवन्त तथा विमल आदि के नाम भी राजा बिम्बसार के पुत्रो के रूप में मिलते है।

बिम्बसार की बुद्ध तथा महावीर से समसामयिकता—बिम्बसार १५ वर्ष की आयु में ईसापूर्व ५८४ मे मगध की गद्दी पर बैठा था। उसने पूरे ५२ वर्ष तक राज्य किया। अतएव उसका पुत्र अजातशत्रु ईसापूर्व ५३२ में गद्दी पर बैठा। बिम्बसार ने महात्मा गौतम बुद्ध तथा भगवान् महावीर दोनो के ही दर्शन करके उन दोनो के मुख से उपदेश सुना था। भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण अजातशत्रु के राज्य के छटे वर्ष ईसापूर्व ५२६ मे तथा बुद्ध का निर्वाण उनसे दो वर्ष बाद ईसापूर्व ५२४ मे हुआ था। भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण ७२ वर्ष की आयु में हुआ था। उन्होने २८ वर्ष की आयु में दीक्षा ली, उसके बाद १४ वर्ष तक तप किया तथा ४२ वर्ष की आयु मे केवल-ज्ञान होने पर तीस वर्ष तक उपदेश दिया। इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी का जन्म ईसापूर्व ५९८ में हुआ। उन्होने २८ वर्ष की आयु में ईसा पूर्व ५७० में दीक्षा ली। उसके बाद १४ वर्ष तक तप करके ईसा पूर्व ५५६ में उनको केवल ज्ञान हुआ और उसके तीस वर्ष बाद ईसापूर्व ५२६ में वह मोक्ष गए।

गौतम बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रु के राज्य के आठवे वर्ष ईसा पूर्व ५२४ म हुआ। उनकी आयु ८१ वर्ष थी। अतएव उनका जन्म ६०५ ईसा पूर्व मे हुआ था। उन्होने २५ वर्ष की आयु में विवाह किया, तथा २८ वर्ष की आयु मे गृह त्याग किया। ३५ वर्ष की आयु मे बोध होने पर उन्होने ४५ वर्ष तक उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होने ईसापूर्व ५८० मे विवाह किया, ईसा पूर्व ५७७ में घर छोडा, और ईसा पूर्व ५७० मे उनको बोध हुआ।

इस प्रकार भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध के सम्बन्ध मे हमको निम्न-लिखित तुलनात्मक अक मिलते है—

	गौतम बुद्ध	भगवान् महावीर
जन्म	ई० पू० ६०५	ई० पू० ५९८
दीक्षा	,, ५७७	,, ५७०
बोध	,, ५७०	,, ५५६
निर्वाण	,, ५२४	,, ५२६

इस प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध का जन्म भगवान् महावीर के जन्म से सात वर्ष पूर्व हुआ। उन्होने दीक्षा भी भगवान् महावीर से सात वर्ष पूर्व ली। (दोनो ने २८ वर्ष की आयु मे दीक्षा ली थी ।) गौतम बुद्ध को ज्ञान भी भगवान् महावीर स्वामी से चार वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु बुद्ध का निर्वाण महावीर स्वामी के दो वर्ष बाद हुआ था। इस प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध ने भगवान् महावीर से पहले उपदेश देना आरभ किया और उनके दो वर्ष बाद तक दिया।

जिस वर्ष श्रेणिक बिम्बसार ईसा पूर्व ५८४ मे मगध की गद्दी पर बैठा उसके चौदह वर्ष बाद महात्मा गौतम बुद्ध को बोध हुआ और उन्होने उपदेश देना आरम्भ कर दिया। उस समय महात्मा गौतम बुद्ध की आयु ३५ वर्ष की तथा श्रेणिक बिम्बसार की २९ वर्ष की ही थी। उससे कुछ ही वर्ष पूर्व बिम्बसार ने गौतम बुद्ध को अपने राजमहल मे भोजन कराकर उनको तप के मार्ग से हटने का परामर्श भी दिया था। श्रेणिक बिम्बसार कठिनता से चार वर्ष तक बौद्ध रहने के बाद जैन हो गए। महात्मा बुद्ध तथा भगवान् महावीर दोनो ने उनके राज्यकाल-भर उपदेश देकर अजातशत्रु के राज्यकाल में

निर्वाण प्राप्त किया । इस प्रकार श्रेणिक बिम्बसार महात्मा बुद्ध तथा भगवान् महावीर के पूर्णतया समकालीन थे ।

बिम्बसार की अपने राज्य के प्रथम अठारह वर्षो मे ही वैशाली के साथ सधि हो गई थी और सभवत इसी बीच मे वह अग देश को भी अपने राज्य मे मिला चुका था । यह भी सभव है कि उसने अग देश को इसके कुछ समय बाद जीता हो । क्योकि पिता दधिवाहन के मरने के बाद चन्दनबाला वापिस चम्पा नही गई और उसने भगवान् महावीर स्वामी के केवल-ज्ञान होने का समाचार कौशाम्बी में सुन कर वहा से राजगृह आकर उनसे दीक्षा ली थी । गिरिव्रज के स्थान पर राजगृह का निर्माण भी बिम्बसार ने अपने शासन के प्रथम अठारह वर्ष मे ही किया था । इस प्रकार हम देखते है कि बिम्बसार ने अपने शासन के प्रथम अठारह वर्ष मे अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये । इससे पता चलता है कि उसको कितनी कम आयु मे कार्यदक्षता प्राप्त हो गई थी ।

सेनापति जम्बूकुमार—यद्यपि बिम्बसार के सेनापति जम्बूकुमार का वर्णन अन्य ग्रन्थो मे नही मिलता, किन्तु जैन आचार्यो ने उनके सबन्ध मे अनेक ग्रन्थो की रचना की हैं । वह राजगृह के सेठ अर्हद्दास तथा उनकी सेठानी जिनमती के पुत्र थे । उन्होने युवावस्था के आरम्भ मे ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रो की शिक्षा प्राप्त कर ली थी । इससे राजदरबार मे भी इनकी मान्यता हो गई । कुछ समय पश्चात् राजा श्रेणिक बिम्बसार ने उनको अपना प्रधान सेनापति बनाया ।

बिम्बसार का केरल-राजकुमारी से विवाह—इन दिनो दक्षिण के केरल देश में मृगाक नामक एक विद्याधर राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम मालतीलता था । उसके विशालवती नामक एक पुत्री थी, जिसकी मगनी उसने राजा बिम्बसार के साथ कर दी थी । इस कन्या के नाम विलासवती, मजु तथा वासवी भी मिलते हैं । किन्तु हस (सिहल) द्वीप के विद्याधर राजा रत्नचूल ने विशालवती को राजा मृगाक से अपने लिये मागा । मृगाक के इनकार करने पर रत्नचूल ने केरल पर आक्रमण कर दिया । मृगाक द्वारा इस समाचार को पाकर राजा बिम्बसार श्रेणिक जम्बूकुमार के सेनापतित्व में एक सेना उसकी सहायता को भेज कर पीछे से आप भी एक भारी सेना

लेकर केरल गए। उन्होने विन्ध्याचल और रेवा नदी को पार कर कुरल नामक पर्वत पर विश्राम किया। जम्बूकुमार ने केरल के युद्ध में अत्यत पराक्रम दिखला कर राजा रत्नचूल की आठ सहस्र सेना को जान से मार दिया। अत में रत्नचूल तथा मृगाक की मित्रता कराकर तथा विलासवती से विवाह करके राजा श्रेणिक बिम्बसार जम्बूकुमार सहित वापिस राजगृह आए।

जम्बूकुमार द्वारा जिन-दीक्षा—जम्बूकुमार भगवान् महावीर स्वामी के पाचवे गणधर सुधर्माचार्य से दीक्षा लेना चाहते थे, किन्तु उनके पिता उनका विवाह करके उनको गृहस्थ के बधन मे बाधना चाहते थे। उधर राजगृह के चार सेठ भी जम्बूकुमार के साथ अपनी पुत्रियो का विवाह करना चाहते थे। उनकी पुत्रियो ने जब सुना कि जम्बूकुमार विवाह न करके दीक्षा लेना चाहते है तो उन्होने अपने-अपने पिताओ द्वारा जम्बूकुमार से कहलाया कि वह सायकाल के समय उन चारों के साथ विवाह कर ले और उनको रात्रि भर बातचीत करने का अवसर दे। इसके बाद यदि वह चाहे तो प्रात काल होने पर दीक्षा ले ले। जम्बूकुमार ने इस बात को स्वीकार करके सायकाल के समय उन चारो के साथ विवाह कर लिया। उन चारो ने जम्बूकुमार को रात भर समझाया। वह जम्बूकुमार को भोग भोगने के लिये प्रेरित करतीं थी और जम्बूकुमार उनको ससार की असारता दिखलाते थे।

विद्युच्चर—उन दिनो दक्षिण के पोदनपुर नगर मे विद्युद्राज नामक एक राजा था। उसके पुत्र विद्युत्प्रभ अथवा विद्युच्चर ने चौर्य-शास्त्र का अध्ययन किया। पिता के बहुत समझाने पर भी उसने राज्य-कार्य न कर चोरी का पेशा ही अपनाया। जिस समय जम्बूकुमार तथा उनकी चारो स्त्रियो का वार्तालाप हो रहा था तो वह उनके यहा चोरी करने आया। किन्तु उनकी बातो में उसे ऐसा रस आया कि वह चोरी करना भूल कर उनकी बाते ही सुनने लगा।

प्रात:काल होने पर जम्बूकुमार तथा उनकी चारो पत्नियों के साथ विद्युच्चर ने भी सुधर्म स्वामी के पास दीक्षा ले ली।

बिम्बसार के समय विमानों का अस्तित्व—जम्बू स्वामी चरित्र तथा अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हमको इस बात का पता लगता है कि उन

दिनो आजकल के दक्षिण देशों तथा सीलोन मे विद्याधर राजाओ का राज्य था, जिनके पास आकाशगामी विमान थे।

वाल्मीकीय रामायण जैसे ग्रन्थो मे जहा किष्किन्धा के राजा बाली तथा सुग्रीव को पशु योनि का बन्दर माना है, वहा जैन ग्रन्थो मे उस समय भी वहा विद्याधर जातियो का निवास मानकर उनको विद्याधर ही माना है। इसीलिये जहा वाल्मीकीय रामायण मे हनूमान् जी समुद्र को कूद कर लंका जाते है वहा जैन रामायण के अनुसार वह विमान पर बैठ कर लका जाते है।

फिर भी वाल्मीकीय रामायण मे ऐसे स्थलो की कमी नही है, जिनसे हनूमान् जी के पास आकाशगमन विद्या का होना प्रमाणित होता है। उनका जन्म लेते ही सूर्य की ओर को उडना, उनका अयोध्या के ऊपर आकाश मार्ग से द्रोणागिरि पर्वत के शिखर को लाना—ऐसी घटनाएँ है, जिनसे सिद्ध होता है कि हनुमान् जी मन की गति से आकाश मे भ्रमण करते थे। किन्तु वाल्मीकीय रामायण मे जहा लका जाते समय उनके समुद्र को कूदने का वर्णन करके उसकी आकाशगामिनी विद्या के महत्त्व को घटा दिया है वहा द्रोणागिरि पर्वत से सजीवनी बूटी लाते समय वह इसकी कोई व्याख्या नही दे सके है। इस स्थल पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि हनूमान् जी के पास आकाशगामिनी विद्या थी।

इसी प्रकार सुग्रीव के पास भी आकाशगामिनी विद्या होने के प्रमाण मिलते है। कुम्भकर्ण जब सुग्रीव को अपनी बगल मे दाब कर ले चला तो सुग्रीव उसकी बगल मे नोच-खसोट कर उससे निकल आए और उसके नाक-कान काट कर आकाश-मार्ग से उड कर उसकी पहुँच से निकल भा[illegible]।

इस प्रकार जैन ग्रन्थो ने जो दक्षिण मे रामायण से भी प्राचीन समय से सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के समय तक विद्याधर जातियो का अस्तित्व माना है वाल्मीकीय रामायण से उनको किसी अश तक ऐसा समर्थन मिलता है कि उसकी दूसरी व्याख्या की ही नही जा सकती।

इसीलिये सिहल के राजा रत्नचूल द्वारा केरल-नरेश राजा मृगांक के ऊपर चढाई करने पर रत्नचूल ने विमान पर व्योमगति विद्याधर को राजगृह भेज कर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को इस चढाई का समाचार उसी दिन भिजवा दिया और वमान की सहायता से जम्बू स्वामी उसी दिन राजा मृगाक की

सहायता को जा पहुँचे ।

इस घटना के बाद प्रियदर्शी अशोक के समय भी हमको बौद्ध ग्रन्थो से यह पता लगता है कि अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री सिहमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये विमान द्वारा ही सिंहल द्वीप गए थे । इस प्रकार उस प्राचीन काल मे अब से अढाई सहस्र वर्ष पूर्व तक हमारे देश मे विमानो तथा आकाशगामिनी विद्या का अस्तित्व था । किन्तु विमानविद्या का अस्तित्व उन दिनो उत्तरी भारत मे न होकर केवल दक्षिणी भारत तथा सिहल द्वीप मे ही था ।

संभव है कि उन दिनो आजकल की अपेक्षा अन्य भी ऐसी अनेक विद्याओ का अस्तित्व हो जिनका आज लोप हो चुका है ।

वीणा-वादन-कला—ऐसी विद्याओ मे वीणावादन की एक अभूतपूर्व कला तथा सिद्धाजन की कला का उल्लेख हमको तत्कालीन साहित्य मे मिलता है । वीणावादन की जैसी उच्चतम-कुशलता हमको उस काल के राजा उदयन मे देखने को मिलती है, वैसी कुशलता का सम्पादन इस विद्या मे आज तक भी नही किया जा सका है ।

सिद्धांजन कला—उन दिनो एक ऐसा सिद्धाजन तैयार किया जाता था, जिसको आखो मे लगाने वाला आप स्वय तो अदृश्य हो कर सब कही जा सकता था, किन्तु उस को कोई नही देख सकता था । सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के राज्यकाल मे विद्युच्चर नामक चोर राजकुमार इस विद्या मे पारगत था ।

जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्व से हमको इस विद्या के अस्तित्व का पता चन्द्र-गुप्त मौर्य के काल मे भी मिलता है । उसमे चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में एक कहानी आती है कि कोई व्यक्ति बे रोज़गार तो था, किन्तु उसके पास सिद्ध-लोपाजन था । अतएव वह अपना अजन लगाकर नित्य चन्द्रगुप्त के अन्त पुर में जाकर उसकी थाली मे भोजन करने लगा । इस घटना से चन्द्रगुप्त भूखा रहने लगा और कुछ दुर्बल भी हो गया । उसकी इस दशा को देखकर चाणक्य को बड़ी चिन्ता हुई । उसने राजा के दुर्बल होने के कारणो का पता लगाया, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसको असली कारण का पता न चला । अत में उसको सदेह हो ही गया कि कोई व्यक्ति सिद्धलोपाजन का प्रयोग करके राजमहल में आता है । अत. उसने चन्द्रगुप्त मौर्य के भोजन कर चुकने पर

राजमहल की ड्योढी में अत्यधिक धुआँ करवा दिया।

जब वह व्यक्ति चन्द्रगुप्त के थाल मे भोजन करके ड्योढी पर आया तो धुए के कारण उसके नेत्रो से इतना अधिक जल निकला कि उसके नेत्रो का अजन धुल गया और वह सबको दिखाई देने लगा। अब तो द्वारपालो ने उसको गिरफ्तार करके राजदण्ड दिलवा दिया।

इस प्रकार की ऐसी अनेक विद्याओ का पता हमको उस सोलह महाजनपद-काल मे मिलता है, जिनका आज नाम के अतिरिक्त कही अस्तित्व नही मिलता और हम उन विद्याओ के सम्बंध मे यह मान बैठे है कि वह उन दिनो के ग्रन्थो की केवल कपोलकल्पना है।

वैद्य जीवक—प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक भी राजा बिम्बसार का समकालीन था। उसने शालवती नामक एक वेश्या के उदर से जन्म लिया था। माता के द्वारा जन्म लेते ही त्याग दिये जाने के कारण उसे मगध के युवराज अभयकुमार ने अपना लिया और पाल-पोसकर बडा किया। अभयकुमार ने जीवक को उत्तम शिक्षा देकर उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के लिये तक्षशिला भेजा। तक्षशिला मे जीवक ने आयुर्वेद का खूब अध्ययन किया और उसकी कौमारभृत्य शाखा मे विशेष निपुणता प्राप्त की। जीवक अपना विद्याध्ययन समाप्त करके वापिस मगध लौटा। आगे चल कर उसने वैद्यक मे अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। बौद्ध साहित्य मे जीवक के चिकित्सासम्बन्धी चमत्कारो का वर्णन अनेक स्थानो पर किया गया है।

कोशल, मगध, वत्स तथा अवन्ति की होड़—यह पीछे बतला दिया गया है कि सर्वप्रथम ईसा पूर्व सातवी शताब्दी के आरम्भ मे काशी महाजनपद ने अपना एक बडा साम्राज्य बना लिया। काशी के बाद कोशल ने उन्नति करनी आरंभ की। दोनो मे अनेक बार युद्ध हुआ। अन्त मे कोशल के एक राजा महाकोशल ने ईसा पूर्व ६२५ के लगभग काशी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। उसका पुत्र प्रसेनजित् बिम्बसार तथा बुद्ध का समकालीन था। उसने तक्षशिला मे विद्याध्ययन किया था।

कोशल, मगध, अवन्ति तथा वत्स की होड मे सर्वप्रथम अवन्ति ने अपना हाथ बढ़ाना आरम्भ किया। अवन्ति के राजसिहासन पर इस समय प्रद्योत था,

जिसे बाद में चण्ड प्रद्योत कहा गया। उसने उत्तर की ओर बढकर मथुरा को जीतकर वहा का शासन अपने एक पुत्र को सौप दिया।' जिसको तत्कालीन ग्रन्थो में अवन्ति पुत्र तथा जैन ग्रन्थो मे सुबाहु कहा गया है। इसके पश्चात् उसने हस्तिकान्त शिल्प के प्रतिभाशाली विद्वान् वत्सराज उदयन को धोखे से कैद किया। प्रद्योत ने उदयन से अपनी पुत्री को पढवाना आरम्भ किया। पढाई बीच मे पर्दा डाल कर की जाती थी। प्रद्योत ने उदयन से कहा कि तुमको एक बुड्ढी कुबडी को शिक्षा देनी है। उधर उसने वासवदत्ता से कहा कि तुझे एक कोढी पढावेगा। किन्तु यह भेद प्रकट होने पर दोनो मे प्रेम हो गया और उदयन प्रद्योत की पुत्री सहित उज्जैन से भागकर अपनी राजधानी कोशाम्बी आ गया। उदयन के प्रद्योत-पुत्री से विवाह हो जाने पर प्रद्योत तथा उदयन का भी प्रेम बढ गया। इससे प्रद्योत की शक्ति और बढ गई, क्योंकि आधीन उदयन की अपेक्षा जामाता उदयन उसके लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

बिम्बसार के विरुद्ध अजातशत्रु का विद्रोह—अभयकुमार के भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ले लेने पर बिम्बसार ने अपने एक और पुत्र दर्शक को युवराज बनाकर उससे काम लेना आरम्भ किया। सभवत दर्शक कोशलदेवी क्षेमा का पुत्र था। कुछ वर्ष बाद रानी चेलना का ज्येष्ठ पुत्र अजातशत्रु (कुणिक) काम करने योग्य हो गया। अपने शासन के अतिम वर्षो मे बिम्बसार ने उसे चम्पा (अङ्ग जनपद) का शासक नियत कर दिया। किन्तु अजातशत्रु को अग के राज्य से सतोष न हुआ। वह सपूर्ण मगध राज्य का स्वामी होना चाहता था। उसने चम्पा का राज्य पाने के पूर्व ही अपने पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया था।

इन दिनो बौद्ध सघ मे भी गौतम बुद्ध का चचेरा भाई देवदत्त बुद्ध के विरुद्ध षड्यत्र कर रहा था। उसने अजातशत्रु के साथ मिल कर अपनी शक्ति को बढाने का यत्न किया।

अत मे अजातशत्रु ने अपने पिता राजा बिम्बसार को कैद कर लिया। इस जेल जीवन मे परमप्रतापी, अगविजेता, सैनिक श्रेणी के नेता सम्राट् बिम्बसार का स्वर्गवास हुआ। इस घटना से खिन्न होकर अजातशत्रु की माता महारानी

चेलना ने भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में जाकर जिन दीक्षा ले ली। अजातशत्रु के शीलवन्त, विमल आदि सौतेले छोटे भाइयो ने अजातशत्रु के भय के कारण गौतम बुद्ध के पास जाकर बौद्ध दीक्षा ले ली। किन्तु अजातशत्रु ने अपने सगे चारों छोटे भाइयो को समझा-बुझा कर दीक्षा नही लेने दी। बिम्बसार की कोशलरानी क्षेमा इस घटना से बहुत पूर्व बौद्ध भिक्षुणी बन चुकी थी।

बिम्बसार के विषय मे कुछ ग्रन्थो मे लिखा है कि उसने ६७ वर्ष की आयु तक ५२ वर्ष राज्य किया। किन्तु कुछ विद्वानो की सम्मति मे उन्होने कुल २८ वर्ष राज्य किया। वह ईसा पूर्व ५८४ मे गद्दी पर बैठा। उसके बाद ईसा पूर्व ५३२ में अजातशत्रु मगध की गद्दी पर बैठा। बिम्बसार अपने पुत्र के पास कितने समय तक बन्दी रहा, इसके कोई अक प्राप्य नही है।

अजातशत्रु का शासन—इसमे सन्देह नही कि राज्यप्राप्ति के पश्चात् अजातशत्रु को अपने कार्य पर अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। बौद्ध तथा जैन ग्रन्थो मे स्थान-स्थान पर उसके पश्चात्ताप का उल्लेख किया गया है। जैन लेखक हेमचन्द्राचार्य का तो यहा तक कहना है कि इस घटना के बाद वह राजगृह मे नही रह सका और उसने अपनी राजधानी राजगृह से उठा कर चम्पापुरी को बनाया।

अजातशत्रु ने कुल चौतीस वर्ष तक राज्य किया।

कोशल और मगध का युद्ध—अजातशत्रु के अपने पिता को इस प्रकार मारने की बडी भयकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया हुई। बिम्बसार कोशलराज प्रसेनजित् का बहनोई था। उसको आशा थी कि बिम्बसार के बाद उसका भानजा दर्शक मगध सम्राट् होगा। किन्तु अजातशत्रु ने अपने रास्ते से बिम्बसार के अतिरिक्त दर्शक को भी हटा दिया। इस पर क्रुद्ध होकर राजा प्रसेनजित् ने मगध को दिये हुए काशी के उस प्रदेश पर फिर अधिकार कर लिया, जो उसने अपनी बहिन कोशलदेवी क्षेमा का बिम्बसार के साथ विवाह होने पर उसके 'नहान-चुन्न मूल्य' के रूप मे दहेज मे दिया था। इसी प्रश्न को लेकर मगध तथा कोशल में युद्ध आरभ हो गया। अजातशत्रु ने तीन युद्धों मे प्रसेनजित् को हराया, किन्तु चौथी बार वृद्ध प्रसेनजित् ने उसे पराजित करके कैद कर

लिया। किन्तु अजातशत्रु से साक्षात्कार करके प्रसेनजित् इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसके साथ अपनी कन्या वाजिरा का विवाह करके उसे छोड दिया और यौतुक मे 'नहान-चुन्न मूल्य' के रूप मे एक लाख वार्षिक आय का काशी का वह प्रदेश भी उसको वापिस दे दिया, जो उसने क्षेमा के विवाह के अवसर पर बिम्बसार को दिया था।

अजातशत्रु के गद्दी पर बैठने से कुछ ही समय पूर्व वत्सराज उदयन का विवाह अवन्तिराज चण्डप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के साथ हुआ था, जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। बिम्बसार के शासन के अन्तिम दिनो मे चण्ड-प्रद्योत ने ईसापूर्व ५३० मे मगध पर आक्रमण करने की तैयारी की। किन्तु इसके पाच वर्ष पश्चात् ईसा पूर्व ५२५ मे प्रद्योत का स्वर्गवास हो जाने से मगध अवन्ति की ओर से निश्चित हो गया। प्रद्योत के बाद उज्जयिनी की गद्दी पर पालक बैठा। कहा जाता है कि जिस दिन यह गद्दी पर बैठा उसी दिन भगवान् महावीर स्वामी का पावापुर मे निर्वाण हुआ। पालक ने २४ वर्ष राज्य किया।

भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण—अजातशत्रु के राज्य के छठे वर्ष ईसा पूर्व ५२६ या ५२७ मे भगवान् महावीर स्वामी को मोक्ष हो गया। किन्तु कुछ लोग महावीर निर्वाण ईसा पूर्व ५४६ मे मानते है। इस मत को मानने से इन सभी तिथियो मे २० वर्ष और बढाने पडेगे।

भगवान् महावीर स्वामी ने अपने निर्वाण से पूर्व शूरसेन, दशार्ण देशो में होते हुए सिन्धु, सौवीर देश मे भी विहार किया था। उन्होने हेमाग देश की राजधानी राजपुर मे भी जाकर उपदेश दिया था। राजपुर उन दिनो दण्डकारण्य के निकट था। वहा के राजा जीवधर अत्यत पराक्रमी थे। उन्होने पल्लव आदि अनेक देशो को जीता था। राजा जीवधर ने दक्षिण भारत के अनेक देशो का भ्रमण किया था। अत मे वह भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुनि बन गए थे। बाद मे उनके सम्बन्ध मे 'छत्र-चूडामणि', 'जीवन्धर-चम्पू' आदि अनेक साहित्य ग्रन्थ लिखे गए।

पोदनपुर मे राजा प्रसन्नचन्द्र भगवान् महावीर स्वामी का भक्त था। पोलासपुर का राजा भी उनका भक्त था। इस प्रकार भगवान् ने तीस वर्ष तक उपदेश देकर पावापुर नामक स्थान से कार्तिक वदि अमावस्या को निर्वाण

प्राप्त किया।

गौतम बुद्ध का निर्वाण—अजातशत्रु के राज्य के आठवें वर्ष और महावीर निर्वाण के दो वर्ष पश्चात् ईसा पूर्व ५२४ मे कुशीनारा मे महात्मा गौतम बुद्ध का निर्वाण हुआ।

श्रावस्ती के सम्राट् प्रसेनजित् का पुत्र विडूडभ जब श्रावस्ती का राजा बना तो उसने अपने मातृपक्ष के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये शाक्यो पर आक्रमण करके उनका सर्वनाश कर डाला। भगवान् बुद्ध ने अपना पैतालीसवाँ तथा अन्तिम चातुर्मास्य श्रावस्ती में व्यतीत करके राजगृह जाते हुए मार्ग मे कपिलवस्तु के ध्वसावशेषो को देखा था। उन दिनों वैशाली मे आम्रपाली नामक एक वेश्या रहती थी। उसने एक बार भगवान् को सघ समेत भोजन के लिये निमन्त्रित किया।

"क्यो आम्रपाली! आज तुझको यह साहस, कि तू वैशाली के राजपुत्रो का उल्लघन करके अपना रथ उनसे भी आगे निकाल रही है।"

"क्यो नही? आज भगवान् तथागत ने मेरे यहा अपने सघ सहित भोजन करना जो स्वीकार कर लिया है।"

"ऐसी बात है?"

"और क्या।"

"अच्छा आम्रपाली! तू यह निमन्त्रण हमारे हाथो बीस सहस्र स्वर्ण मुद्रा लेकर बेच दे।"

"नही, कभी नही।"

"पचास सहस्र स्वर्णमुद्रा ले ले।"

"कभी नही।"

"अच्छा एक लाख स्वर्णमुद्रा ले ले।"

"मै वैशाली का सारा राज्य लेकर भी इस निमन्त्रण को नही बेचूंगी। एक समय था जब आप लोगों को मै अपने द्वार पर नही आने देती थी तो मैने अपने को तथागत को अर्पण करना चाहा था, किंतु तथागत ने उस समय मेरे समस्त रूप-यौवन की उपेक्षा करते हुए केवल यही कहा था कि 'अभी नही।" बाद मे मै भयकर रूप से बीमार पडी और मैने आप लोगो को बुल-

वाया, किंतु आप लोग तो मेरे रूप-यौवन के भूखे थे। मेरे रोग के समय मेरे पास क्यो आते ? किंतु भगवान् तथागत मेरे रोग का समाचार पाकर विना बुलाए ही मेरे पास आए और उन्होने मेरी परिचर्या करके मुझे रोग के सकट से छुडा दिया। आज उन्होने मेरे ऊपर दया करके जो मेरे घर सघ-सहित भोजन करना स्वीकार किया है, यह मेरे जीवन मे सबसे बडा सम्मान है।

"आपकी वैशाली का यह नियम कि नगर की सब से सुन्दर कन्या को विवाह न करने देकर सब के उपभोग के लिये रखा जावे, अब भी मेरे हृदय मे शूल के समान चुभ रहा है। कहा मै वैशाली के प्रधान सेनापति की प्राणप्यारी पुत्री, कहा यह वार-वनिता का जीवन ? आप लोगो ने मेरे स्त्रीत्व का अपमान किया है। किंतु मै आप लोगो को दिखला दूगी कि मै आप लोगो से कही अधिक ऊची बन चुकी हूँ।"

यह कहकर आम्रपाली अपने रथ को शीघ्रता से अपने भवन की ओर ले चली।

आम्रपाली ने घर आकर भगवान् तथागत की दावत का बडा भारी आयोजन किया। उसने अपने महलो तथा वाटिका की खुद सफाई कराई। फिर उसने भगवान् तथागत के भिक्षुओ तथा भिक्षुणियो के लिये अनेक प्रकार के भोजन तैयार कराए।

भोजन का समय होने पर भगवान् तथागत अपने सघसहित उसके घर पधारे। आम्रपाली ने भगवान् के घर मे पधारने पर उनका चरणोदक लेकर उनको साष्टाग दण्डवत किया। इसके पश्चात् उसने भगवान् और उनके शिष्यो को भोजन कराया। भोजन समाप्त होने पर आम्रपाली भगवान् को प्रसन्न मुद्रा में देखकर बोली—

"भगवन् ! आपने मेरे घर अपनी जूठन डाल कर जो मुझे विशेष सम्मान दिया है, उसकी कृतज्ञता स्वरूप मै आपसे एक निवेदन करना चाहती हूँ।"

"कहो आम्रपाली ! तुम्हे जो कुछ कहना हो प्रसन्नता से कहो।"

"महाराज ! मेरी यह इच्छा है कि मेरा यह भारी महल तथा बगीचा सघ के लिये सकल्प कर दिया जावे। मै चाहती हू कि आप मुझे ऐसा करने

की अनुमति दें।"

"आम्रपाली ! जैसी तेरी इच्छा।"

"भगवन् ! एक प्रार्थना और भी है और वह मेरे जीवन की सब से बडी अभिलाषा है।"

"वह भी कह डालो।"

"भगवन् ! मै चाहती हू कि अब घर, मकान तथा वाटिका सहित आप मुझे भी स्वीकार करे।

"अच्छा ऐसा ही हो।"

"बुद्ध सरण गच्छामि। सघ सरण गच्छामि। धम्मं सरण गच्छामि।"

आम्रपाली ने भिक्षुणी बन कर बौद्ध सघ मे प्रवेश किया। उसके महल से बौद्ध-विहार का काम लिया जाने लगा।

बुद्ध की आयु जब चालीस वर्ष की हुई तो उनका शरीर क्षीण हो गया। बौद्ध तथा जैन साधुओ के सघ का यह नियम होता है कि किन्ही दो साधुओं का साथ लगातार नही रह सकता। किंतु बुद्ध की शारीरिक स्थिति निर्बल मानकर बौद्ध सघ ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि आनद बुद्ध की सेवा के लिये सदा उनके साथ रहा करे। तब से आनद अतिम समय तक सदा ही बुद्ध के साथ बने रहे। उन्होने अत तक बडी लगन और प्रेम के साथ भगवान् की सेवा की। कुछ दिनो बाद आपको अपने प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के निर्वाण का समाचार मिला, इसी वर्ष आपके शरीर मे भी रोग हुआ।

कुछ दिनो बाद भगवान् पावा पहुचे। वहा चुन्द नामक किसी कर्मकार ने आपको सघ सहित भोजन का निमत्रण दिया। भोजन करते समय जब भगवान् ने देखा कि चुन्द सुअर का मास परोसने वाला है तो उन्होने उससे कहा—

"हे चुन्द ! तुम मुझे छोड़ यह मास और किसी को न देना, क्योकि मनुष्य-क, देवलोक और ब्रह्मलोक को छोडकर और कोई इस मास को नही पचा सकता। जो मास मेरे खाने से बच रहे उसे यही पर गढा खोद कर गाड देना।"

चुन्द ने भगवान् के बतलाए अनुसार ही सब कार्य किया। बुद्ध पहिले से ही अस्वस्थ थे, आयु भी इक्यासी की हो चुकी थी, अतएव सुअर का

मास खाने से उनको आव और लोहू के दस्त आकर खूनी पेचिश हो गई। वह उसी दशा मे कुशीनगर को चल दिये। मार्ग मे रोग के कारण कई स्थल पर विश्राम करते हुए वह हिरण्यवती नदी को पार करके कुशीनगर के समीप एक शालवन मे ठहरे। वहा उनका रोग और भी बढ गया। उस समय सुभद्र नामक एक परिव्राजक भगवान् से कुछ प्रश्न पूछने को आया। आनन्द ने भगवान् का अंतिम समय जान उसे प्रश्न करने से रोका। किंतु यह बात तथागत के कान मे पड गई और उन्होने उसको अपने पास बुलाकर उसका समाधान किया। इसके पश्चात् उनका ८२ वर्ष की आयु मे स्वर्गवास हुआ। उन्होने २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन किया, २८ वर्ष की आयु मे गृहत्याग किया, सात वर्ष तप करने के बाद उन्हे ३५ वर्ष की आयु मे बोध हुआ और ४५ वर्ष तक ससार को ज्ञानामृत का पान कराकर उन्होने ईसापूर्व ५२४ मे निर्वाण प्राप्त किया। मल्लराज ने उनका दाह सस्कार कर उनकी अस्थियो पर स्तूप बनवाकर उन पर अधिकार करने की घोषणा की। इस समय मगधराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवियो, कपिलवस्तु के शाक्यो, अल्ल कल्प के बूलयो, रामग्राम के कोलियो और पावा के मल्लो ने कुशीनगर के महाराज के पास दूत भेज कर कहलाया कि—

"भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय है। इस नाते उनके शरीर पर हमारा भी अधिकार है।"

मल्लराज के इनकार करने पर सभी राजा अपने दल-बल समेत कुशीनगर पर चढ दौडे। भगवान् का स्वर्गवास द्रोणाचार्य वशोद्भव द्रोण नामक एक ब्राह्मण की कुटी के पास हुआ था। उसने उन पवित्र अस्थियो के आठ भाग करके उनको कुशीनगर, पावा, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकल्प, राजगृह और वेठदीप वालो मे बाट दिये। बाद में पिप्पलीय वन के मोरी क्षत्रिय भी उसका भाग लेने आए। द्रोणाचार्य ने उनको चिता की भस्म देकर विदा किया। जिस कुम्भ मे अस्थियां रखी थी उसे सब से माग कर उस पर द्रोणाचार्य ने स्वयं स्तूप बनवाया।

भगवान् बुद्ध के जन्म के समय भारत मे वेदो के नाम पर विशाल परिमाण में जीव-हिसा की जाती थी। 'उस समय भैसो और बकरो की बहुत बडी

सख्या मे वलि दी जाती थी। उस वैदिक हिंसा के विरुद्ध यद्यपि प्राचीन काल से ही आंदोलन किया जा रहा था, किंतु भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने इस आन्दोलन को नवीन दिशा देकर उसमे नवीन प्राण-प्रतिष्ठा की। भगवान् बुद्ध ने जिस जीवदया और अहिसा-धर्म का उपदेश दिया था, उसका प्रचार उनके बाद उनके अनुयायी भिक्षुसघ तथा बौद्ध नरेशो ने बहुत बडे पैमाने पर किया। भगवान् बुद्ध के उपदेश से अनेक राजकुमारो तथा सुकुमार राजकुमारियो ने राजसुख छोड कर भिक्षु तथा भिक्षुणियो का जीवन स्वीकार किया। बुद्ध के बाद उन्होने दूर-दूर के देशो मे जाकर तथागत के ज्ञान का सदेश दिया।

अहिंसा प्रचारक चार विभूतियाँ—अहिंसा के प्रचारको मे ससार मे सब से प्रमुख स्थान गौतम बुद्ध, भगवान् महावीर, ईसा मसीह तथा महात्मा गाँधी का है। ईसा मसीह के अलावा शेष तीनो प्रचारक भारतीय थे। ईसा मसीह ने भी अहिसा की शिक्षा भारत आकर बौद्ध विद्यालय मे ही प्राप्त की थी, इस बात को अब इतिहास के विद्वान् मानने लगे है। बौद्ध धर्म के कारण भारत मे तथा भारत के बाहिर भी भारतीय धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, साहित्य, कला तथा सस्कृति का अत्यन्त व्यापक रूप मे प्रचार हुआ। चीन, जापान, कम्बोडिया, ब्रह्मा, स्याम, सुमात्रा, जावा, बाली, लका आदि जिन देशो मे आज बौद्ध धर्म का व्यापक रूप मे प्रचार है उनको भारतीय इतिहास मे 'बृहत्तर भारत' कहा जाता है। मूर्तियो तथा ग्रन्थो के रूप मे भारतीय संस्कृति की बहुत बडी सामग्री अब भी वृहतर भारत' के इन देशो मे मिलती है।

भगवान् बुद्ध की धारणा थी कि वह किसी नये धर्म का उपदेश न दे कर शाश्वत सनातन धर्म का ही उपदेश कर रहे है। उन्होने मनुष्य को पशुता की ओर जाने से रोक कर मानवता का सदेश दिया।

उन्होने जो वेदो के नाम पर होने वाली हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई उसका सनातनधर्मी नेताओ पर इतना अधिक प्रभाव पडा कि उन्होने बुद्ध को विष्णु के दशावतारो में गिनना आरभ किया। भागवत पुराण मे जहा विष्णु के सभी अवतारो का चरित्र दिया गया है बुद्ध का चरित्र वर्णन करते हुए यह बतलाया गया है कि ब्रह्मा जी ने भगवान् बुद्ध से यह अनुरोध किया कि वह

पथ्वी पर अवतार लेकर वेदो के नाम पर की जाने वाली नृशंस हिंसा को रोके।

बौद्धों के वर्तमान तीर्थ स्थान—भारत में बुद्ध के जीवनसम्बन्धी चार प्रधान स्थान है—

एक कपिलवस्तु जहा भगवान् का जन्म हुआ, दूसरा गया जहाँ भगवान् को बोध हुआ, तीसरा सारनाथ जहाँ भगवान् ने प्रथम बार धर्मोपदेश देकर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया तथा चौथा कुशीनगर जहाँ भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया। यद्यपि बौद्ध लोग इन चारो ही स्थानो की तीर्थ-या ा बडी श्रद्धा से करते है, किंतु सनातनधर्मी लोग बुद्धावतार के सम्बन्ध से बुद्ध गया को ही अधिक मानते है। बुद्ध गया मे भगवान् बुद्ध का एक उत्तम मदिर है, जिसे बुद्ध का ससार भर मे सर्वश्रेष्ठ मदिर समझा जाता है। इस मदिर के साथ बड़ी भारी विशाल सम्पत्ति लगी हुई है, जो सब की सब एक सनातनधर्मी महंत के अधिकार में है। बौद्ध लोग अनेक वषो से यह आन्दोलन कर रहे है कि यह मदिर बौद्धो को दिया जाना चाहिये। भारत में अग्रेजो के प्रभुत्व के समय द्वितीय महायुद्ध से पूर्व इस आन्दोलन को बौद्ध लोगों ने बडे जोर-शोर से चलाया था, किंतु १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध आरभ हो जाने पर यह आन्दोलन अपने आप ही समाप्त हो गया। अब भारत के स्वतत्र हो जाने पर यद्यपि भारत में बौद्धो की सख्या बढ गई और महाबोधि सोसाइटी को भी अधिक बल मिल गया, किन्तु बुद्ध गया के मदिर को बौद्धो को देने के सम्बन्ध मे कही कोई आन्दोलन दिखलाई नही देता।

आज ससार तृतीय विश्व युद्ध के लिये तैयार जैसा दिखलाई देता है। उस की तृतीय विश्वयुद्ध से कोई रक्षा कर सकता है तो वह भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश ही है।

प्रसेनजित का पुत्र विडूडभ—प्रसेनजित का सेनापति बन्धुल मल्ल था। उसकी पत्नी को जब गर्भ रहा तो उसको यह दौहृद हुआ कि मै वैशाली की मङ्गल पुष्करिणी मे स्नान करू। इस समय कोशल तथा मगध की सधि हो कर उनमे फिर गाढ मित्रता हो चुकी थी। बधुल मल्ल के वृजि सघ पर चढाई करने की अनुमति मागने पर प्रसेनजित् ने इस विषय में अजातशत्रु का मत जानने के लिये कुछ दूत राजगृह भेजे। इस समय तक अजातशत्रु की माता जैन

आर्यिका चेलना देवी का स्वर्गवास हो चुका था। अत अजातशत्रु के मन मे राजा चेटक के सबध का मान अब नही रहा था। उसके विपरीत अजातशत्रु बौद्ध तथा राजा चेटक जैन था। इसलिये अजातशत्रु अपनी साम्राज्यविस्तार की भावना मे वैशाली के गणतन्त्र को एक बाधा मानकर उसको नष्ट करने का विचार कर रहा था। प्रसेनजित का सवाद पाकर उसने उसको तुरन्त ही वैशाली पर चढ़ाई करने की अनुमति दे दी। वह समझता था कि इस युद्ध मे यदि लिच्छवी लोग न भी हारे तो युद्ध के कारण वह निर्बल तो अवश्य हो जावेंगे। प्रसेनजित् ने बन्धुल मल्ल की पत्नी की इच्छापूर्ति के लिये यद्यपि बन्धुल को वैशाली पर व्यक्तिगत अभियान करने की अनुमति दे दी, किन्तु उसने उसे कोशल तथा वज्जिसघ के युद्ध का रूप नही दिया। बन्धुल कुछ चुने हुए वीरो को साथ ले कर व्यापारियो के वेष मे वैशाली पहूँचा। रात्रि के समय मगल पुष्करिणी मे अपनी पत्नी को स्नान कराकर वह एक हल्के युद्ध के बाद ही वैशाली से अपने साथियो सहित कुशलपूर्वक निकल आया।

राजा प्रसेनजित बन्धुल की उन्नति से ईर्ष्या करने लगा था। उसके इस कार्य ने उसकी ईर्ष्या मे और भी घी का काम किया। उसने अवसर पाकर बन्धुल मल्ल को उसके सब पुत्रो सहित धोखे से मरवा दिया। इसके बाद उसने बन्धुल के भानजे दीघकारायण को अपना सेनापति बनाया।

किन्तु दीघकारायण भी प्रसेनजित् से मन ही मन जलता था। उसने प्रसेनजित् के उस विद्रोही पुत्र विडूडभ से गुप्त मैत्री कर ली, जिसको प्रसेनजित् ने शाक्य राजकुमारी के धोखे मे शाक्य दासी मे उत्पन्न किया था। विडूडभ अपनी उत्पत्ति का दोषी अपने पिता को मानता था। शाक्यो के गणतन्त्र की तो ईंट से ईंट बजा देने की वह प्रतिज्ञा कर चुका था। अजातशत्रु से वाजिरा का विवाह होने के तीन वर्ष वाद जब प्रसेनजित् शाक्यराष्ट्र की सीमा पर गया हुआ था, तो उसके सेनापति दीघकारायण ने उसके बेटे विडूडभ को कोशल का राजा बना दिया। प्रसेनजित अजातशत्रु से सहायता लेने राजगृह गया। किन्तु उसका राजगृह के बाहिर ही देहान्त हो गया। अजातशत्रु नें अपने श्वशुर प्रसेनजित की राज्योचित सम्मान के साथ अत्येष्टि की।

यह बतला दिया गया है कि विडूडभ की माता दासी तथा महानामन नामक

शाक्य की पुत्री थी, जो उसने दासी मे उत्पन्न की थी। शाक्यो ने युवराज अवस्था मे उसका अपमान भी किया था। अत विडूडभ ने कोशलराज बनने पर शाक्यो पर आक्रमण करके उनके राज्य को पूर्णतया नष्ट कर दिया। बाद मे भगवान् बुद्ध ने विडूडभ द्वारा विध्वस्त कपिलवस्तु को भी देखा था।

अजातशत्रु द्वारा वज्जिसंघ की समाप्ति—यह पीछे बतला दिया गया है कि साम्राज्यकामी अजातशत्रु वृज्जिगण सघ को नष्ट करना चाहता था। इस युद्ध की तैयारी के लिये अजातशत्रु के अमात्य सुनीध तथा वर्षकार ने राजगृह की किलेबन्दी को और भी मजबूत करवाया। महापरिनिब्बत्ति सुत्त मे लिखा है कि बुद्ध जब अपने जीवन मे अन्तिम बार राजगृह आए तो अजातशत्रु ने अपने मन्त्री वर्षकार को उनके पास भेज कर अपने वज्जिसघ पर भावी अभियान के सम्बन्ध मे बुद्ध के विचार जानने का प्रयत्न किया। बुद्ध ने वृजियो के सबध मे सात प्रश्न पूछकर अपनी सम्मति दी। बुद्ध के कथन का साराश यह था कि जब तक वृजि लोग अपनी परिषदो मे नियम से एकत्रित होते है, जब तक वह एक साथ बैठते है, जब तक वह एक साथ उद्यम करते और एक साथ राष्ट्रीय कामो को करते है, जब तक वह नियम बनाए विना कोई आज्ञा जारी नही करते और बने हुए नियम का उल्लघन नही करते, जब तक वह अपने राष्ट्रीय नियमो के अनुसार मिल कर आचरण करते है, जब तक वह अपने वृद्धो का आदर करते और उनकी सुनने योग्य बाते सुनते है, जब तक वह अपनी कुल-स्त्रियो तथा कुल-कुमारियो पर किसी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती नही करते, जव तक वह अपने राष्ट्रीय मदिरो का आदर करते और अपने त्यागी विद्वानो की रक्षा करते है, तब तक उनका अभ्युदय होता जावेगा और उनकी हानि नही की जा सकती।

महात्मा गौतम बुद्ध के इस उत्तर से अजातशत्रु ने समझ लिया कि वह अपने सैनिक बल से वृजि-सघ को नही जीत सकता। अतएव उसने अपने मत्री वर्षकार की सम्मति के अनुसार उनमें फूट डालने का निश्चय किया।

इसके बाद अजातशत्रु ने भरी सभा मे ब्राह्मण वर्षकार पर वज्जियो के साथ मिले होने का दोष लगाकर उसका भारी अपमान किया। वर्षकार राजगृह को छोडकर वैशाली आया और वहां एक सम्मानित अतिथि के रूप मे रहने लगा। वर्षकार बड़ी सुन्दर रीति से वैशाली मे न्याय कार्य करता था। वैशाली

राजकुमार उसके पास विद्याग्रहण करते थे।

धीरे-धीरे वर्षकार के त्याग तथा उसकी विद्वत्ता की वैशाली मे अच्छी प्रतिष्ठा
ो लगी। अब उसने लिच्छवियों मे किसी से कुछ तथा किसी से कुछ कहकर
मे फूट डालनी आरम्भ की। इस घटना के तीन वर्ष बाद वर्षकार ने लिच्छवि
ाओ मे ऐसी फूट डाल दी कि दो लिच्छवि राजा एक मार्ग पर ही नही जाते
। जब वर्षकार को लिच्छवियो की पारस्परिक फूट का पूर्ण विश्वास हो गया
उसने अजातशत्रु को जल्दी आक्रमण करने को लिखा। इस पर अजातशत्रु
-भेरी बजाकर युद्ध के लिए चल पडा।

जैन आगम ग्रन्थो मे मगध तथा लिच्छवियो के युद्ध का एक तात्कालिक
ण यह बतलाया गया है कि अजातशत्रु के चारो छोटे भाई उससे नाराज
र वैशाली आकर अपने नाना चेटक के पास रहने लगे। अजातशत्रु ने राजा
क को लिखा कि वह उनके छोटे भाइयो को गिरफ्तार करके राजगृह भेज
किन्तु लिच्छवियो ने शरणागत को धोखा देने में अपना अपमान समझा।
श यह है कि मगध तथा लिच्छवियो मे युद्ध आरम्भ हो गया।

बौद्ध ग्रन्थो मे लिखा है कि जब लिच्छवियो ने अजातशत्रु का मुकाबला
की रणभेरी बजवाई तो उस रणभेरी को सुनकर कोई भी नही आया।
रणभेरी गगा तट पर अजातशत्रु का मुकाबला करने के लिये बजवाई गई
जब अजातशत्रु वैशाली के द्वार तक आ गया तो दुबारा रणभेरी बजवाई
क अजातशत्रु को नगर मे न घुसने दिया जावे और नगर द्वार बद करके
ा मुकाबला किया जावे। किन्तु इस बार भी लोग नही आए और अजात-
खुले द्वार से वैशाली मे घुस कर उसको नष्ट करके चला गया।

किन्तु जैन आगम बौद्ध ग्रन्थो के इस वर्णन से सहमत नही है। उनके अनु-
वैशाली के गणपति राजा चेटक ने नव लिच्छवि-राजाओ तथा नव मल्ल-
ो को लेकर अजातशत्रु के साथ भारी युद्ध किया, जिसमे अजातशत्रु को
मिली और वज्जि सघ के साथ-साथ मल्ल जनपद तथा काशी जनपद को
ाध साम्राज्य मे मिला लिया गया। राजा चेटक ने अपने धेवते के हाथो
मे वीर गति प्राप्त की। यह घटना अजातशत्रु के राज्य के बारहवे वर्ष
ुद्ध के निर्वाण के चार वर्ष बाद ईसा पूर्व ५२० की है। जैन ग्रन्थो मे

लिखा है कि यह युद्ध इतना भयंकर था कि इसमे अजातशत्रु ने 'महाशिला-कण्टक' तथा 'रथमूसल' जैसे भयकर अस्त्रो का भी प्रयोग किया था।

इसके बाद अजातशत्रु के बीस वर्ष के जीवन काल में कोई उल्लेखनीय घटना नही मिलती। ३४ वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त अजातशत्रु का स्वर्ग-वास ईसापूर्व ४६८ मे हुआ।

दर्शक (ईसापूर्व ४६८ से ४६७ तक)—अजातशत्रु के उत्तराधिकारी के सबध मे जैन, बौद्ध तथा पुराण ग्रन्थो मे कुछ मतभेद है। कुछ तो उसका बेटा दर्शक को तथा कुछ अज उदायी को मानते है। किन्तु ऐसा जान पडता है कि दर्शक के समय कोई राजनीतिक घटना न होने से इतिहास श्रृङ्खला मे उसके नाम की उपेक्षा की गई है। वैसे दर्शक ने ३१ वर्ष तक राज्य किया।

अज उदायी (ईसापूर्व ४६७ से ईसापूर्व ४४४ तक)—बौद्ध ग्रन्थ महावश के अनुसार अज उदायी ने भी अपने पिता को मारकर सिहासन प्राप्त किया था, किन्तु इस घटना का समर्थन किसी अन्य आधार से नही होता। अज उदायी के जीवन मे दो बाते उल्लेखनीय थी। इनमे प्रथम पाटली-पुत्र का निर्माण तथा दूसरी अवन्ति का पराभव थी। अज उदायी भी अजातशत्रु के समान विजेता था।

अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी चम्पा तथा राजगृह थी। उसने कोशल को जीतकर अवन्ति का मुकाबला किया और वृजिसघ के साथ-साथ मल्ल-जनपद तथा काशी जनपद को भी अपने राज्य मे मिलाया। अन्त मे अज उदायी ने अपने राज्य के द्वितीय वर्ष मे अवन्ति को भी जीतकर उसे केन्द्रीय भारत की एकमात्र प्रमुख शक्ति बना दिया।

उदायी के समय तक मगध साम्राज्य इतना बडा हो गया था कि उसकी राजधानी चम्पा या राजगृह साम्राज्य के केन्द्र से बहुत दूर पडती थी। यद्यपि वज्जिसंघ पर अधिकार कर लिया गया था, किन्तु उसमे विद्रोही तत्त्वो की अब भी कमी नही थी। अतएव उसको भली प्रकार वश मे रखने के लिये एक ऐसी राजधानी की आवश्यकता थी जो वज्जी जनपद से अधिक दूर न हो। इसलिये बहुत सोच-विचार के बाद पाटलीग्राम नामक स्थान पर पाटलीपुत्र नामक नई राजधानी बनाई गई। उसने २३ वर्ष तक राज्य किया।

उदायी अत्यन्त महत्त्वाकाक्षी तथा वीर राजा था। पास-पडौस के सभी राजा उसके आए दिन के आक्रमणो से तग थे। यद्यपि उसने अपने जीवन मे अनेक युद्ध किये, किन्तु अवन्ति युद्ध के अतिरिक्त उनमे से किसी युद्ध का वर्णन नही मिलता। हेमचन्द्राचार्य ने अपने ग्रन्थ स्थविरावली चरित्र मे लिखा है कि उदायी राजा जैन था और उसकी हत्या एक ऐसे पदच्युत राजकुमार ने सोते समय की थी, जिसने जैन साधु का वेष धारण करके उसके अन्त पुर मे निर्बाध प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

शिशुनाग वंश का अन्त—उदायी के बाद उसके बेटे अनिरुद्ध अथवा नन्दिवर्द्धन ने ईसापूर्व ४४४ से ईसापूर्व ४०४ तक ४० वर्ष तक राज्य किया। उसने कलिंग (उडीसा) को भी जीत लिया था। नन्दिवर्द्धन के बाद उदायी के पोते मुण्ड अथवा महानन्दी ने लगभग ईसा पूर्व ४०४ से ३६९ ईसा पूर्व तक ३५ वर्ष राज्य किया। महानन्दी के बाद आठ वर्ष तक ३६९ से ३६१ ईसा पूर्व तक उसके दो बेटो ने राज्य किया, जिनका अभिभावक महापद्मनन्द था। उसने उन दोनो को मार कर मगध मे नन्दवश के शासन की स्थापना की और शिशुनागवश के शासन को समाप्त कर दिया।

इस प्रकार शिशुनागवश के मगध-सम्राटो ने अपने समय के सोलह महा-जनपदो मे से अग, काशी, वज्जि, मल्ल, वत्स और अवन्ति इन जनपदो को अपने आधीन कर लिया। महापद्मनन्द ने कोशल, पाञ्चाल, चेदि, शूरसेन, तथा कुरु—इन पाच जनपदो को भी जीत कर मगध साम्राज्य मे मिला लिया। उसने गोदावरी प्रदेश मे अश्मक पर भी अधिकार किया। बाद मे चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने नन्दवश को नष्ट कर मगध मे मौर्यवश की प्रतिष्ठा की और मगध साम्राज्य को भारतीय साम्राज्य का रूप देकर आर्य-पताका को मध्य एशिया तक फैलाया। भारत मे इतना बडा साम्राज्य तबसे लगा कर आज तक भी नही बन पाया। उस समय भारतीय साम्राज्य की सीमा दक्षिण के कुछ थोडे से भाग के अतिरिक्त मध्य एशिया तक फैली हुई थी, जिसमे आजकल के पख्तू-निस्तान, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान, चीनी तुर्किस्तान, पूर्वी ईरान तथा सोवियत रूस के मध्य एशिया के कुछ जनतन्त्र सम्मिलित थे। किन्तु इतना निश्चय है कि न्द्रगुप्त मौर्य इस विशाल साम्राज्य का मूल रूप मे निर्माता

न होकर उत्तराधिकारी था। इस विशाल साम्राज्य के निर्माण-कार्य को सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने आरभ किया था। बाद मे अजातशत्रु, उदायी तथा महापद्मनन्द ने उस साम्राज्य को इतना अधिक बढाया कि उसको नन्दवश से उत्तराधिकार मे प्राप्त करके चन्द्रगुप्त मौर्य उसको मध्य एशिया तक बढाने मे सफल हो गया। यह निश्चय है कि यदि चन्द्रगुप्त मौर्य को इस विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकार न मिलता तो वह इतने बडे साम्राज्य का निर्माण कभी न कर पाता।

जैन तथा बौद्धमत के पतन के कारण—इसमे सदेह नही कि शिशुनाग वश से लेकर मौर्य वश के समय तक जैन तथा बौद्ध धर्म उन्नति के चरम शिखर पर थे। उसके बाद उनमे न केवल अनेक सम्प्रदाय बन गए, वरन् उनका भौतिक पतन भी आरभ हो गया। किन्तु दोनो के पतन के कारण भिन्न ही थे। बौद्ध धर्म की अवनति का कारण उसके भिक्षुको के चरित्र का पतन था। बाद के बौद्ध भिक्षुओ ने न केवल मन्त्र-तन्त्रो को अपना लिया, वरन् वह अपने ब्रह्मचर्य व्रत को भी स्थिर न रख सके। बौद्ध साधु मासभक्षी तो आरभ से ही थे। अत उनके खानपान मे भी विलासिता आ गई। बौद्ध भिक्षुओ का नैतिक पतन बौद्ध धर्म के ह्रास का आन्तरिक कारण था। स्वामी शकराचार्य के आक्रमण से उनको बाहिर मे ऐसी चोट लगी कि वह उसको न सभाल सके। बाद मे मुसलमानो के आक्रमण ने तो उनके अस्तित्व तक को भारतवर्ष से मिटा दिया।

किन्तु जैनियो की सख्या भारतवर्ष मे कभी भी तेरह चौदह लाख से कम नही हुई। यह लोग सदा से ही धनिक रहे, भारतवर्ष के व्यापार मे सदा से ही उनका प्रधान भाग रहा। किन्तु जैन धर्म आज उस उन्नत अवस्था में नही है। उसके पतन का कारण मुख्य रूप से उसका विभिन्न सम्प्रदायो मे बट जाना तथा उसके आचरणो की कठोरता है। आचरणो की कठोरता के कारण ही जैन साधुओ के चरित्र मे कभी निर्बलता नही आई। गौतम बुद्ध ने जहा अपने सघ मे महिलाओ को हिचकते-हिचकते लिया, वहाँ जैन सघ मे प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभ देव के समय से जैन साध्वियो का प्रधान स्थान रहा है।

राहुल साकृत्यायन जैसे कुछ विद्वानो का तो सामूहिक ब्रह्मचर्य मे विश्वास ही नही है। उनका कहना है कि साधु या साध्विया पृथक्-पृथक् अथवा सम्मिलित रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर ही नही सकते। राहुल जी का इस सम्बन्ध मे इतना पक्षपातपूर्ण मत है कि वह किसी ब्रह्मचारी समाज को देखकर उसकी चारित्रिक दुर्बलताओ को (यदि उनमे वह पा सके) बतलाने को तैयार नही है।

राहुल जी का मत चाहे जो कुछ क्यो न हो, तथ्य यह है कि जैन साधुओ के नियम आरभ से ही इस प्रकार के रखे गए है कि उनमे कचन तथा कामिनी के ससर्ग को किसी प्रकार भी सिद्ध नही किया जा सकता। प्रत्येक जैन साधु के लिये यह अनिवार्य है कि वह विपरीत लिंग वाले प्रत्येक प्राणी के स्पर्श तक से बचे। एक जैन साधु स्त्री तो क्या एक दिन की कन्या, गौ, भैस, बकरी, मुर्गी, मोरनी अथवा किसी भी मादा पशु-पक्षी तक का स्पर्श नही कर सकता। उधर जैन साध्वी किसी भी पुरुष जाति के व्यक्ति का स्पर्श नही कर सकती, फिर भले ही वह एक दिन का लडका, बैल, घोडा, बकरा, मुर्गा, मोर आदि कोई भी पशु-पक्षी क्यो न हो।

जैन आचार्यो को महिलाओ को दीक्षा देने का अधिकार है। किन्तु उन की महिला शिष्या अपने गुरु का चरण स्पर्श तो क्या, किसी प्रकार का भी स्पर्श नही कर सकती। जैन साधु तथा साध्विया जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते है तो उनके बीच मे एक दूसरे से पर्याप्त अन्तर होना चाहिये। जहा वह ठहरे वहा एक ही नगर मे रहते हुए भी उन दोनो के निवास स्थान एक दूसरे से पर्याप्त दूर होने चाहिये। यद्यपि गुरुओ को साध्वियो को पढाने का अधिकार है किन्तु वह अकेली साध्वी को नही पढा सकते। फिर भी यह आवश्यक है कि साध्विया पहर भर दिन रहते अपने निवास स्थान मे पहुच जावे और पहर भर दिन निकले पीछे वहा से निकले।

इस प्रकार के कठोर चारित्रिक नियन्त्रणो के कारण जैन साधुओ का बौद्ध साधुओ के समान कभी भी चारित्रिक पतन नही हुआ। जैन साधु स्त्री के स्पर्श के अतिरिक्त धन का स्पर्श भी नही करते। वह पैदल ही चलते है। अतएव उनको मार्ग-व्यय की कभी आवश्यकता नही पडती। दिगम्बर साधु खड़े होकर हाथ मे ही भोजन करते है और एक काठ के कमडलु के अतिरिक्त और

कोई पात्र अपने पास नही रखते। इसलिये उनको बर्तन आदि किसी भी का के लिये द्रव्य की आवश्यकता नही पडती। श्वेताम्बर जैन साधु, स्थानिकवासी जैन साधु तथा तेरापथी जैन साधु भिक्षा अपने स्थान पर लाकर काठ के पात्रो मे भोजन करते है, जिन्हे वह गृहस्थो से माग लाते है। अतएव कामिनी के समान कंचन का स्पर्श वह भी किसी प्रकार नही करते।

इस प्रकार कचन तथा कामिनी दोनो का ही सम्पर्क जैन साधुओ मे किसी प्रकार भी सिद्ध नही किया जा सकता। जैन साध्वियो का भी पुरुषो अथवा धन से किसी प्रकार का सपर्क सिद्ध नही किया जा सकता। भगवान् महावीर स्वामी के समय से लेकर आज तक जैन साधुओ ने इस विषय मे सदा ही अपने चरित्र की रक्षा की है। किन्तु साधुओ के इतने उच्च आचरण होते हुए भी जैन धर्म का पतन हुआ है। जो कि निम्न लिखित तथ्यो से प्रकट है।

(१) जैन साधुओ की सख्या आज प्राचीन काल की अपेक्षा नगण्य है—

(२) जैन धर्म का प्रचार रूप समाप्त हो चुका है और नये-नये व्यक्ति जैन धर्म को ग्रहण नही करते।

(३) जैनी लोग भगवान् महावीर के उपदेशो से क्रमश दूर हटते जा रहे है और—

(४) उनके विभिन्न सम्प्रदायो मे इतना अधिक मनोमालिन्य है कि वह एक दूसरे की उपस्थिति को भी सहन नही कर सकते।

यहा इन चारो के विषय मे एक-एक करके विचार किया जाता है—

जैन धर्म संख्या का ह्रास—भगवान् महावीर के समय जैन मुनियो की सख्या लाखो मे थी, जबकि आज दिगम्बर जैन मुनियो की सख्या कठिनता से समस्त भारत मे दस-बारह तथा अन्य तीनो सम्प्रदायो के मुनियो की सम्मिलित सख्या लगभग दो सहस्र से अधिक नही है। इससे प्रकट है कि जैन धर्म आजकल पतन की ओर जा रहा है।

जैन धर्म के प्रचारक रूप की समाप्ति—जैन धर्म आरभ से ही एक प्रचारक धर्म था। उसमें सदा से नये-नये व्यक्तियो को प्रविष्ट करके उसके क्षेत्र को व्यापक बनाया जाता रहा है। किन्तु आज वह अपने इस प्रचारक रूप को छोड कर प्रगतिहीन बन चुका है, जिससे जैनियो की सख्या प्रतिदिन

घटती ही जाती है। उसका कारण अगले शीर्षक मे दिया जावेगा।

जैनी भगवान् महावीर के उपदेश से दूर हटते जा रहे हैं— वास्तव मे जैन धर्म के वर्तमान पतन का यही कारण है। भगवान् महावीर के मूल उपदेश मे जन्मना जाति का विरोध किया गया है। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापथी किसी के सिद्धान्त भी जन्मना जाति को सिद्ध नही कर सकते। किन्तु एक ओर जहां जैनियो के प्रभाव के कारण प्राचीन सनातन धर्म ने अपने हिंसामय यज्ञ-यागो को छोड दिया वहां जैनियो पर भी उनका ऐसा प्रभाव पडा कि उन्होने सनातनधर्मियो के जन्मना जाति के सिद्धान्त को दातो से जकड़ कर पकड लिया। इसी कारण नये-नये व्यक्तियों का जैन धर्म मे प्रवेश रुक गया और जैन धर्म एक गतिहीन धर्म बन गया।

इसके अतिरिक्त जैन साधुओ की क्रियाएँ इतनी कठोर होती है कि उनका पालन करना अत्यन्त कठिन है। अत न तो नये-नये व्यक्ति प्रायः मुनि-दीक्षा लेते है, और न गृहस्थ ही अपने नियमो का पालन ठीक-ठीक करते है।

फिर उनके देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करने के सिद्धान्त के कारण वह अपने शास्त्रो को इतना अधिक पवित्र मानने लगे कि अन्य मतावलम्बियों से यह आशा करने लगे कि वह भी उनके शास्त्रो को शुद्ध वस्त्र पहिन कर तथा हाथ-पैर धोकर ही छुए। जैनियो की इस भावना के कारण अजैनो को जैन ग्रन्थो का देना बन्द हो गया, जिससे अजैन लोग यह समझने लगे कि जैनी लोग ग्रन्थो को छिपाते है।

हिंसा के अर्थ के विषय मे भी जैनी लोग भगवान् महावीर स्वामी की व्याख्या से हटते जा रहे है।

साम्प्रदायिक कलह—जैनियो के चारो सम्प्रदाय एक दूसरे से इतना द्वेष करते है कि वह किसी विषय मे भी एकमत होकर कार्य नही कर सकते।

इस प्रकार जैनियो का आजकल बराबर पतन होता जाता है। किन्तु उधर गत शताब्दी से पाश्चात्य विद्वानो का ध्यान संस्कृत, प्राकृत तथा पाली के अध्ययन की ओर कुछ अधिक आकर्षित हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानो ने यूरोप तथा अमरीका जाकर भी जैनधर्म का प्रचार किया है, इससे जैनधर्म का प्रचार आजकल पाश्चात्य जगत् मे कुछ बढता जाता है। किंतु बौद्ध तथा वैदिक धर्म के प्रचार की अपेक्षा वह प्रचार आज भी नगण्य है।

इस ग्रन्थ के पात्र—इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर इस उपन्यास की रचना की गई है। यद्यपि इसके प्राय. पात्र वास्तविक है किन्तु महामात्य कल्पक और सेनापति भद्रसेन जैसे अनेक कल्पित व्यक्ति भी है। सेनापति जम्बूकुमार का नाम केवल जैन शास्त्रो मे ही आता है। सभवत अग की विजय के अवसर पर जम्बूकुमार बहुत छोटा था, फिर भी हमने उसी के हाथो अग का पतन दिखलाया है।

इस पृष्ठभूमि मे जैन ग्रन्थो, बौद्ध ग्रन्थो तथा हिन्दू पुराणों के आधार पर राजा बिम्बसार के चरित्र को उपस्थित किया गया है। यद्यपि राजा बिम्बसार के घर मे अनेक रानिया थी, किन्तु वह विषयी नही था। उसके प्राय विवाह राजनीतिक विवाह थे और उनके द्वारा उसने अपने पर राष्ट्र-सम्बन्ध बढाए थे। ऐसे व्यक्ति के चरित्र मे जो कुछ लेखको ने गुप्त व्यभिचार की घटनाए मिला दी है, वह उचित नही है।

बिम्बसार के जीवन की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ का सिलसिला ठीक-ठीक बिठलाने के लिये हमने इस ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि मे शिशुनाग वश का पूरा इतिहास दे दिया है। किन्तु यह अभी तक भी पता नही चला कि इस वश का नाम शिशुनाग वश क्यो पडा। सभवत राजा भट्टिय उपश्रेणिक का ही एक नाम शिशुनाग भी था।

अत मे हमको अपने पाठको से यह निवेदन करना है कि हमने अभी तक इतिहास, राजनीति, विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र आदि के सम्बन्ध मे ही ग्रन्थो की रचना की है, उपन्यास हमारे लिये सर्वथा नवीन क्षेत्र है। यद्यपि इससे पूर्व हमारी कुछ कहानिया प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु उपन्यास हमारा अभी तक कोई भी प्रकाशित नही हुआ। सभव है कि इस उपन्यास मे पाठको को अन्य उपन्यासो के जैसा लालित्य न मिले। तो भी इस ग्रन्थ मे जो हमने 'सोलह महाजन पद काल' के इतिहास को ठीक-ठीक उपस्थित करने का यत्न किया है, उससे पाठको के मनोरजन के अतिरिक्त उनकी ज्ञानवृद्धि भी होगी। आशा है पाठक हमारे अन्य कई दर्जन बृहदाकार ग्रन्थो के समान हमारे इस ग्रन्थ को भी प्रेमपूर्वक अपनावेंगे।

चन्द्रशेखर शास्त्री

४५६६, बाजार पहाड़गंज,

१

अश्व भेंट

लगभग डेढ पहर दिन चढा होगा। गिरिव्रज का सभा-भवन आगत व्यक्तियो से ठसाठस भरा हुआ था। सभा मे एक ओर बन्दिजन राजा का स्तुतिपाठ कर रहे थे तो दूसरी ओर व्यवहारिक जनता के व्यवहारो (मुकदमो) को सुन-सुन कर राजा भट्टिय उपश्रेणिक के सम्मुख उपस्थित करता जाता था। सभा-भवन मे अनेक आसन बिछे थे, जिन पर राज्य के विविध पदाधिकारी अपने-अपने पद के अनुसार बैठे हुए थे। एक ओर विदेशी राजदूत भी बैठे हुए मगध की परराष्ट्र-नीति की एक घोषणा पर विचार कर रहे थे। बीच मे एक सात हाथ का सोने का सिहासन रखा हुआ था, जिस पर बढिया गद्दी-तकियो पर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक बैठे हुए थे। उनकी बगल मे उनसे एक नीचे सिहासन पर मगध के प्रधान अमात्य ब्राह्मण कल्पक बैठे हुए थे कि सेनापति भद्रसेन ने कहा—"महाराज! हमारी कोशल तथा अवन्ति की सीमा पर उत्पात बढते जाते है। कोशल के महाराज प्रसेनजित् तथा अवन्ति के महाराज चण्डप्रद्योत दोनो ही साम्राज्य कामना वाले है। सीमा पर सेनाए कम है, यदि वहा अधिक सेनाए भेज कर सीमा का प्रबन्ध न किया गया तो न जाने भविष्य मे हमको अचानक किस देश की सेना से मगध की भूमि पर युद्ध करना पडे।"

कल्पक—महाराज! सेनापति भद्रसेन का कहना यथार्थ है। मेरे चरो ने भी आकर मुझे दोनो सीमाओ पर विरोधी पक्ष की सेनाओ की टुकडियो के बढने का समाचार दिया है। वैसे अभी तक हमारी कोशल तथा अवन्ति दोनो के साथ ही मित्रता की सधि है। किन्तु आक्रमण करने वाली सेनाए सगठित सेनाए न होकर सेना की टुकडिया है, जिनके विषय मे हारने पर तो यह सुगमता से कहा जा सकता है कि सैनिक टुकडियां अपनी भमि को न पहचानने के कारण

भूल से मगव सीमा मे प्रवेश कर गई, किंतु यदि यह सैनिक टुकडिया मगध सैनिको को हटा कर हमारी सीमा मे दूर तक बढ आईं तो उनके आक्रमक रूप को स्वीकार करने मे भी विलम्ब न होगा ।"

राजा—तब तो इन दोनो ही सीमाओ पर अधिक सेनाए भेज देनी चाहिये और अवन्ति तथा कोशल के शासको के पास इस विषय मे विरोध पत्र भी भेज देना चाहिये ।

कल्पक—ऐसा ही किया जावेगा महाराज ।

कल्पक के अपना कथन समाप्त करते ही दौवारिक ने सभा मे प्रवेश करके महाराज को प्रणाम करके उनसे निवेदन किया—

दौवारिक—महाराज की जय हो ।

राजा—क्या है दौवारिक ?

दौवारिक—महाराज ! चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा का सामन्त विचित्र-वर्मा महाराज की सेवा मे उपस्थित होना चाहता है । वह अपने साथ एक सर्वलक्षण सम्पन्न अश्व भी महाराज को भेट करने लाया है ।

राजा—उसे आदरपूर्वक अन्दर ले आओ ।

राजा के यह कहते ही दौवारिक महाराज को प्रणाम करके बाहिर चला गया और थोडी देर मे ही विचित्रवर्मा के साथ वापिस आया । विचित्र-वर्मा एक तीस वर्ष का युवक था । उसका शरीर लम्बा, सुडौल तथा भारी था । उसका चेहरा भरा हुआ और मूछें चढी हुई थी । रौब उसके चेहरे से फटा पडता था । उसके वस्त्र सामन्तो जैसे थे । उसके बाए कन्धे पर एक धनुष पडा हुआ था और पीठ पर तरकश था, जिससे पता चलता था कि नागरिक जीवन की अपेक्षा वह वन्य जीवन ही अधिक व्यतीत करता था । उसने आते ही दोनो हाथ जोड कर महाराज को अभिवादन किया ।

महाराज—कहो विचित्रवर्मा कुशल से तो हो ?

विचित्रवर्मा—जिस पर महाराज की कृपा हो उसकी कुशलता मे कौन बाधा दे सकता है अन्नदाता !

महाराज—कहो, आज कैसे आना हुआ ?

विचित्रवर्मा—इन्ही दिनो महाराज सोमशर्मा को एक सर्वलक्षण-सम्पन्न उत्तम अश्वरत्न की प्राप्ति हुई। उन्होने मन मे सोचा कि ऐसे उत्तम अश्व का स्थान केवल गिरिव्रज की राजकीय अश्वशाला ही है। अस्तु, मै उसको उनकी ओर से लेकर महाराज की सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।

महाराज—अश्व कहा है सामन्त !

विचित्रवर्मा—वह बाहिर खडा हुआ है महाराज !

महाराज—अच्छा, आप अश्व को लेकर कल प्रात काल नगर के बाहिर के मैदान मे मिले। उसकी परीक्षा उसी समय कर ली जावेगी।

"जैसी महाराज की आज्ञा" कहकर विचित्रवर्मा महाराज को पुनः अभिवादन करके चला गया।

इसी समय विश्राम का घटा बजने पर महाराज सभाभवन से उठ कर राजमहल मे चले गये।

॰ अश्व-परीक्षा

प्रातःकाल का समय है। शीतल, मन्द पवन के झोके चित्त को प्रसन्न कर रहे हैं। सूर्य अभी कठिनता से डेढ हाथ ऊपर चढा है। गौएँ तथा भैसे अपने-अपने घरो से चरने के लिए जगल में जा चुकी है। किसान भी अपने-अपने हल-बैल लेकर खेतो मे जा चुके है। गिरिव्रज नगर के उत्तर की ओर के मैदान मे इस समय विशेष चहल-पहल दिखलाई दे रही है। यहा विशेष रूप से छिडकाव कराया गया है। क्रमश मैदान मे रक्षक सेनाए आनी आरम्भ हो गई। इन सेनाओ के सैनिको को रक्षक के रूप में मैदान के चारो ओर नियत कर दिया गया। विचित्रवर्मा अपने विचित्र अश्व तथा कुछ रक्षको सहित पहिले से ही मैदान मे उपस्थित था। इतने में गिरिव्रज के उत्तरी द्वार प्रर तुरही का शब्द हुआ। तुरही के शब्द के साथ अन्य बाजे भी बजते हुए दिखलाई दिये। बाजो के पश्चात् महाराज भट्टिय उपश्रेणिक का घुडसवार अग रक्षक दल था। उनके बीच मे महाराज उपश्रेणिक महामात्य कल्पक तथा अन्य पदाधिकारियो से घिरे हुए एक रथ मे बैठे हुए जुलूस के रूप में चले आ रहे थे। इस जुलूस के मैदान मे आने पर राजा के अतिरिक्त अन्य सभी अधिकारी अपने-अपने रथो से उतर पडे। महाराज के सेनाओ का अभिवादन स्वीकार कर चुकने पर विचित्र-वर्मा ने आगे बढ कर उनसे निवेदन किया—

"महाराज! यही वह अश्व है, जिसके विषय में मैने महाराज से कल निवेदन किया था।"

महाराज—अच्छा, यह अश्व है! अश्व तो वास्तव मे बहुत सुन्दर है। कल्पक जी, हमारे अश्वाध्यक्ष को तो आपने इस अवसर पर उपस्थित रहने की आज्ञा दे ही रखी होगी!

तब तक अश्वाध्यक्ष ने स्वय आगे बढ़कर महाराज को अभिवादन करके कहा—

"महाराज ! मै सेवा में उपस्थित हूँ। आपके पधारने के पूर्व ही मैं इस अश्व की अश्वविद्याविशारदो द्वारा परीक्षा करा चुका हूँ। अश्व वास्तव में सर्वगुणसम्पन्न है। लक्षणो की दृष्टि से इसमें कोई त्रुटि नही है। केवल उसकी चाल की परीक्षा करना शेष है।

महाराज—अच्छा, चाल की परीक्षा भी कर ली जावे।

महाराज के यह कहने पर अश्वाध्यक्ष ने उस घोडे की लगाम पकड कर उसे महाराज के सामने लाकर कहा—

"यदि महाराज उचित समझे तो इस पर स्वय सवार हो।"

"नही, प्रथम इसकी चाल को तुम देखो, बाद मे हम देखेगे।"

महाराज के यह कहने पर अश्वाध्यक्ष उछल कर उस घोडे की पीठ पर बैठ गया। उसने उसको उस मैदान में घुमाते हुए कदम, दुलकी तथा सरपट तीनो चालो से चला कर देखा। लगभग दो घडी तक उसको घुमाकर तथा फिर महाराज के सम्मुख लाकर तथा घोडे से उतर कर अश्वाध्यक्ष ने कहा—

"महाराज, यह घोडा तो चाल मे भी पास हो गया। क्या आप इस पर इसी समय सवारी करना पसद करेगे ?"

"अवश्य"

यह कहकर महाराज स्वय उस घोडे पर बैठ गए। उन्होने भी उसको उस मैदान मे सभी प्रकार से खूब चलाया। महाराज घोडे की चाल से बहुत प्रसन्न हुए और विचित्रवर्मा को अपने पास बुलाकर बोले—

"सामन्त ! हम तुम्हारे महाराज की इस अश्व-भेट से अत्यत प्रसन्न होकर उसको स्वीकार करते है। तुम कोषाध्यक्ष से इसका मूल्य ले लो।"

विचित्रवर्मा—नही महाराज ! यह महाराज को उनकी ओर से भेट है। अस्तु, मै इसके मूल्य के बदले में केवल महाराज का प्रसाद ही चाहता हू।

महाराज—अच्छा सामत, हम इस भेट को स्वीकार करते है। कल्पक, सामत को कल राजसभा मे शिरोपाद-वस्त्र देकर सम्मानित किया जावे।

कल्पक—जैसी महाराज की आज्ञा।

महाराज—महामन्त्री जी, हमारा विचार इस अश्व पर बैठकर मृगया के लिये जाने का है। हमारी अंगरक्षक सेना मृगया में हमारे साथ रहेगी। आप सब नगर मे जावे।

"बहुत अच्छा, महाराज !"

इसके पश्चात् महाराज भट्टिय उपश्रेणिक अपनी अगरक्षक सेना को लेकर मृगया के लिये वन को चले और शेष राज-पुरुष नगर मे लौट आये। देखते ही देखते वह सारा मैदान खाली हो गया।

३

दुर्गम वन में

महाराज उस अश्व पर बैठकर जगल के मार्ग मे अपनी अगरक्षक सेना के साथ चले तो उनका मन बहुत प्रसन्न था। बहुत देर तक वह अगरक्षक सेना के साथ चलते रहे। क्रमश गहन वन आ गया। इसी समय उनको एक मृग दिखलाई दिया। राजा ने जो अश्व को मृग के पीछे दौडाया तो वह चक्कर काट कर वहा से भाग गया। राजा ने भी अपने अश्व को उसके पीछे इस प्रकार डाला कि मृग उनकी दृष्टि से ओझल न हो सका। अगरक्षको ने राजा का साथ करने का बहुत यत्न किया, किन्तु वह उस अश्व को किसी प्रकार भी न पा सके। अस्तु, वह राजा को न पाकर उनको ढू ढते हुए वन मे भटकने लगे।

राजा ने जो अश्व को मृग के पीछे डाला तो उसने दो तीन कोस तक मृग का पीछा करने के बाद उनको मृग के पास पहुचा दिया। अब तो राजा ने एक ही बाण से मृग को मार डाला। किन्तु मृग को मारकर ज्योंही उन्होंने अश्व को रोकने के लिये उसकी लगाम को खैंची तो अश्व ने लगाम को मानने से इकार कर दिया। राजा ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर लगाम को खैंचना आरम्भ किया, किन्तु अश्व ने उनके शासन को मानने से साफ इकार कर दिया। लगाम के वेग से अश्व का मुख लहू-लुहान हो गया, किन्तु उस की सरपट चाल में लेशमात्र भी अन्तर न आया। अश्व अपनी एक उसी चाल से सरपट भागते हुए राजा को कई कोस तक दूर ले जाकर ऐसे जगल मे ले गया जहा किसी प्रकार का भी मार्ग नही था और सारी भूमि कटकाकीर्ण तथा ऊबड-खाबड थी। अश्व वहा से आगे बढने का मार्ग न पाकर वही पर इस प्रकार चक्कर काटने लगा कि वह प्रथम दस-बीस कदम आगे बढ जाता था और कभी भारी

झटके के साथ एकदम दस-बीस कदम पीछे को दूर हट जाता था। उसने इस प्रकार झटको से राजा को बेहद परेशान कर दिया। उनका बदन थकावट के कारण एकदम चूरचूर हो गया और उनमे घोडे की रास सभालने की शक्ति भी न रही। अन्त मे उसने एक काटो से भरे हुए भारी तथा दुर्गम गड्ढे के किनारे पर जाकर महाराज को ऐसा भारी झटका दिया कि वह उसकी पीठ पर से लुढक कर उसी गड्ढे मे गिर पडे। घोडा उनको गिरा कर जगल मे अज्ञात दिशा की ओर भाग गया।

गड्ढे मे गिरते ही महाराज का सारा शरीर काटो से बिध गया। गिरने के कारण उनको ऐसी भारी चोट लगी कि वह गिरते ही बेहोश हो गए।

महाराज बहुत देर तक उस गड्ढे मे अचेत पडे रहे। जिस समय उनको कुछ होश हुआ तो उनके शरीर मे भारी वेदना हो रही थी। काटो के कारण वह करवट तक लेने मे असमर्थ थे। उनके न केवल वस्त्र ही फट गए थे वरन् शरीर भी लहू-लुहान हो गया था। उस समय वह असहाय के समान मन ही मन परमात्मा का स्मरण कर उससे यह प्रार्थना कर रहे थे कि उनका किसी प्रकार इस विपत्ति से उद्धार हो।

तभी अचानक एक जगली उधर आया। वस्त्र के नाम उसके शरीर पर कटिवस्त्र के अतिरिक्त और कुछ भी न था। किन्तु उसके सिर के बाल कुछ विशेष शैली से बधे हुए थे और उनके उपर कुछ पक्षियो के पख लगे हुए थे। उसके गले मे शख तथा कौडियो के हार पडे हुए थे तथा भुजाओ मे सोने के बाजूबन्द थे, जो उसके अञ्जन के समान काले शरीर पर एक विचित्र आभा डाल रहे थे। राजा को उस गड्ढे मे पडा देखकर उसने कहा—

"अरे! महाराज यहा और ऐसी असहाय अवस्था मे!"

यह कहकर वह तुरन्त उस गड्ढे मे उतर गया। यद्यपि वह गड्ढा काटो से पूर्णतया भरा हुआ था, किन्तु उसके नगे पैर इतने कठोर थ कि काटे उनके स्पर्श से ही टूट जाते थे। वह उस गडढे मे इस प्रकार उतर गया, जिस प्रकार कोई मैदान के गड्ढे मे उतर जाता है। गड्ढे मे उतर कर उसने उन सब काटो

को हाथ से ही मसल डाला, जो राजा के वस्त्रो में चुभ गए थे। राजा के वस्त्रो के सब काटो को निकाल कर उसने उनको इस प्रकार ऊपर उठा लिया, जिस प्रकार कोई बालक खिलौने को उठा कर अपने कन्धे पर रख लेता है। उसने राजा को उठा कर अपने कन्धे पर बिठलाया और गड्ढे से निकाल कर बाहिर खडा किया। बाहिर आने पर राजा बोले—

"भाई तुम कौन हो? तुमने तो इस गाढे समय में आकर मेरे प्राणो को बचा लिया।"

"महाराज! मै भीलो की पल्ली का स्वामी उनका सरदार हूँ और आपकी एक तुच्छ प्रजा हूँ। मेरा नाम यमदण्ड है। यदि यह तुच्छ शरीर आपकी कुछ सेवा कर सका तो इसे मै अपना अहोभाग्य समझता हूँ। इस समय दिन छिप रहा है और गिरिव्रज यहा से लगभग दो योजन है। अतएव आप अपनी राजधानी मे आज किसी प्रकार भी नही पहुँच सकते। अस्तु, यदि आपकी अनुमति हो तो मै आज रात आपके आतिथ्य का प्रबन्ध कर दू।"

"फिर तो ठहरने के अतिरिक्त और कोई उपाय भी नही है।"

"तो महाराज, मेरे कन्धे पर बैठ जावे। इस कटकाकीर्ण मार्ग मे आप पैदल नही चल सकेगे।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा" कहकर महाराज उस भील सरदार यमदण्ड के कन्धे पर बैठकर उसके निवास स्थान की ओर चले।

भील कन्या से प्रणय

भील सरदार महाराज को लिये चला जाता था और मन में कुछ सोचता सा जाता था। कुछ दूर चलने पर उसने महाराज से कहा—

"महाराज ! हम अपावन वस्तुओ को खानेवाले आपका आतिथ्य किस प्रकार करेगे यह समझ मे नही आ रहा। मेरे पास एक क्षत्रिय बालिका है, जो हम लोगो को लूट मे मिली थी। मैंने तथा मेरी रानी विद्युन्मती ने उसका अपनी पुत्री के समान पालन किया है। उसका नाम तिलकवती है। वह महाराज की सब प्रकार से सेवा करेगी और महाराज को भोजन बनाकर भी खिला देगी। यदि महाराज की अनुमति हो तो मै आपको उसी के महल मे पहुचा दू।

"सभवत यही अधिक उचित होगा।"

महाराज के यह कहने पर भील सरदार के मन मे और भी उत्साह हो आया। अब वह लम्बी-लम्बी डग भरकर चलने लगा। महाराज ने दूर से भीलो की एक छोटी सी बस्ती-पल्ली-को देखा, जिसमें छोटे-छोटे बच्चे दूर से ही खेलते दिखलाई दे रहे थे। पल्ली में भीलो के लगभग पचास घर थे। उनके ठीक बीचो-बीच दो-तीन पक्के मकान थे। सरदार ने महाराज से कहा—

"महाराज ! वह जो पक्के मकान दिखलाई दे रहे हैं वह अपने ही हे।"

"अच्छा हम निवासस्थान पर आ पहुचे ! अब तुम मुझको नीचे उतार दो। यहा से हम तुम्हारे घर तक पैदल ही चलेगे।"

महाराज के यह कहने पर भील सरदार ने उनको अपने कन्धे से उतार दिया। सरदार को एक अपरिचित के साथ आते देखकर भील बालक तो प्रथम ही एकत्रित हो गए थे, अब कुछ युवक भी आ गए। उनको देखकर सरदार ने अपनी भाषा मे जोर से कुछ कह कर डाँटने जैसी मुद्रा प्रकट की कि सभी

युवक तथा बालक वहा से चले गए। सरदार राजा को लेकर एक मकान के अन्दर 'तिलकवती, तिलकवती' आवाज लगाता हुआ घुस गया। तिलकवती उसका शब्द सुनते ही आगे बढकर आई। वह एक सोलह वर्ष की सुन्दरी बाला थी। उसका रग चम्पे के पुष्प के समान हल्का पीलापन लिये हुए गौर था। उसका भरा हुआ मुख, गोल चेहरा तथा चचल सुन्दर आँखे उसके उच्चवशीय होने का प्रमाण दे रही थी। सौन्दर्य तथा यौवन उसके सारे बदन से फूटे पडते थे। राजा उसके रूप की छटा को देखकर चौंधिया से गये। सरदार ने उसको देखकर कहा—

"तिलके! यह अपने महाराजा भट्टिय उपश्रेणिक है। आज यह तेरे अतिथि हैं। इनकी सेवा मन लगा कर करना।"

"अच्छा पिता जी"

यह कह कर तिलकवती फिर अन्दर चली गई और एक लोटे मे जल भर लाते हुए बोली—

"महाराज! यह जल है। आप प्रथम मुह-हाथ धोकर मार्ग के श्रम को दूर करे। भोजन भी तैयार ही है। मै अभी महाराज के भोजन का प्रबन्ध करती हू।"

सरदार महाराज को तिलकवती के महल मे एक बिछे हुए बिस्तर पर बिठला कर चला गया। उसके चले जाने के बाद राजा ने तिलकवती के दिये हुए जल से हाथ-पैर धाकर मुह धोया। इसके पश्चात् वे चारपाई पर लेटकर विश्राम करने लगे। उनका शरीर तो बुरी तरह थका हुआ था ही, चारपाई पर लेटने के कुछ क्षणो के बाद ही उनको निद्रा आ गई। तिलकवती ने जो उनको सोते हुए देखा तो भोजन मे अन्य भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने लगी। लगभग डेढ घटे मे राजा की नीद खुली तो उनके शरीर की थकावट बहुत कुछ दूर हो चुकी थी। तिलकवती उनको जगा हुआ देखकर उनके पास आकर बोली—

"महाराज! भोजन तैयार है। आप पटरे पर बैठकर चौके मे भोजन करेंगे या यही ले आऊँ?"

"नही सुन्दरी ! मै चौके मे ही पटरे पर बैठकर भोजन करूँगा। अब मै बहुत कुछ ठीक हूँ।"

"तो महाराज पधारें, भोजन का सब सामान ठीक है।"

"बहुत अच्छा" कहकर महाराज चारपाई से उठ खडे हुए और तिलकवती के साथ चौके मे जाकर पटरे पर बैठ गए। तिलकवती ने उत्तम पकवानों से भरा हुआ थाल उनके सामने लाकर रख दिया और स्वय हाथ मे पखा लेकर उनके सामने बैठ गई। राजा भोजन करते जाते थे और उसके रूपसुधारस का पान भी करते जाते थे। भोजन कर चुकने पर तिलकवती ने उनके हाथ धुला कर उनको कुल्ला कराया और खाने को इलायची दी। इसके पश्चात महाराज फिर चारपाई पर आकर लेट गए और तिलकवती स्वय भोजन करने लगी।

कहने को तो राजा लेट गए, किन्तु उनको रह-रहकर तिलकवती का ध्यान ही आ रहा था। उसका गोल-गोल तथा सुन्दर मुख उनके मन मे बस गया था। उसके चम्पक के समान गौर वर्ण मुख को बारबार देखते रहने की उनकी इच्छा बराबर बढती जाती थी। अन्त मे वह इस प्रकार विचार करने लगे—

"यह अज्ञातकुलशीलवाली कन्या निश्चय से किसी उच्च वश मे उत्पन्न हुई है। इसका सारा शरीर इसके उच्चवशीय होने का प्रमाण दे रहा है। इसकी आयु भी विवाह के योग्य हो चुकी है। यद्यपि इसने अपनी प्रथम दृष्टि मे ही मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है, किन्तु मै इस सूने घर में इस कन्या से प्रणय-सम्भाषण करके मर्यादा का अतिक्रमण नही करूँगा। किन्तु क्या सरदार से उसको मागना उचित होगा ? अनुचित तो नही जान पडता। उसको तो इसका विवाह कही करना ही है। अच्छा, सरदार आवे तो उससे उसके सम्बन्ध मे बातचीत की जावे।"

राजा इस प्रकार अपने मन ही मन ऊहापोह कर रहे थे कि सरदार ने ड्योढी मे प्रवेश करके तिलकवती को आवाज दी। तिलकवती इस समय तक भोजन कर चुकी थी। वह उसका शब्द सुन कर बोली—

"आइये पिताजी, कहिये क्या आज्ञा है।"

"क्या तेरे अतिथि सो गए, बेटी ?"

इस पर राजा ने अपने कमरे के अदर से उत्तर दिया—

"नही सरदार ! मै अभी नही सोया । तुम यहा आओ !"

सरदार महाराज का शब्द सुनकर कमरे मे चला गया और उनकी चारपाई पर पैताने बैठ कर उनके चरण दबाने लगा । तिलकवती अपने कमरे में चली गई । सरदार के बैठ जाने पर राजा बोले—

"सरदार ! तुमने मुझ पर कितना उपकार किया है इस बात को सोचकर मै अत्यन्त सकोच मे पड जाता हू ।"

"नही महाराज ! इसमे सकोच की क्या बात है । हमारा धर्म है कि हम आपकी सब प्रकार से सेवा करे । अब यदि कोई और सेवा हो तो वह भी बतलावे । इसीलिये मै सोने से पूर्व आपके पास उपस्थित हुआ हूँ ।"

"क्यो नही सरदार, सेवा तुमसे नही लेगे तो और किससे लेगे । परन्तु तिलकवती भोजन बहुत अच्छा बनाती है । क्या तुमने अभी तक उसके लिय कोई वर ठीक किया ?"

"नही महाराज ! वर तो कई मिलते रहे, किन्तु अपनी एक प्रतिज्ञा के कारण मै उसका अभी तक भी विवाह नही कर सका ।"

"आपकी वह प्रतिज्ञा क्या है सरदार ?"

'महाराज ! मैने प्रतिज्ञा की है कि तिलकवती का विवाह किसी सामान्य व्यक्ति के साथ न कर किसी ऐसे राजा के साथ करूँगा, जो उसकी सन्तान को राज्य देने की प्रतिज्ञा करे ।"

"तिलकवती के रूप को देखते हुए आपकी प्रतिज्ञा अनुचित तो दिखलाई नही देती । क्या तुम उसे मगध की महारानी बनाने के प्रश्न पर विचार कर सकते हो ?"

"यह तो महाराज मेरा तथा तिलकवती दोनो का सौभाग्य होता । किन्तु महाराज आपके अनेक तेजस्वी पुत्र है । इतने पुत्रो के रहते हुए आप तिलकवती के भावी पुत्र को मगध का युवराज बनाने की प्रतिज्ञा किस प्रकार कर सकते है ?"

"किस प्रकार कर सकू गा, यह तो तुम मुझ पर छोड दो सरदार ! तुम्हारे

लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि मैं उसके भावी पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना कर मगध का राज्य देने की प्रतिज्ञा करता हू ।"

"तब तो महाराज मेरी आपत्ति के लिये कोई स्थान ही नही रहता । आप मुझे अनुमति दे कि मैं तिलकवती का हाथ इसी क्षण आपके हाथ मे दे दूं ।"

"मैं भी यही चाहता हू सरदार ।"

यह सुनकर सरदार ने 'तिलकवती' 'तिलकवती' कहकर आवाज दी । तिलकवती के आने पर सरदार ने उससे कहा—

'बेटी, ये मगध नरेश इस बात की प्रतिज्ञा करते है कि वे तुझसे विवाह करके तेरे भावी पुत्र को ही अपना उत्तराधिकारी मगध-सम्राट् बनावेगे । अस्तु, अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई । ला, मैं तेरा हाथ इनके हाथ मे सौप दू ।"

यह कहकर सरदार तिलकवती का हाथ पकड कर महाराज भट्टिय उप-श्रेणिक की ओर को चला । उन दोनो को अपनी ओर आते देखकर महाराज उपश्रेणिक भी चारपाई से उतर कर नीचे खडे हो गए। तब सरदार ने तिलकवती का हाथ उनके हाथ मे देते हुए कहा—

"महाराज, मै भीलो का सरदार यमदण्ड अपनी इस पालिता पुत्री तिलकवती को आपको पत्नी-रूप में दान करता हूँ । आप इसके साथ धर्मपूर्वक गृहस्थ का सुख भोगते हुए राज्य करे और उसके भावी पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनावे ।"

इस पर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने तिलकवती का हाथ अपने हाथ में लेकर उत्तर दिया—

"मै मगध-सम्राट् भट्टिय उपश्रेणिक आपकी इस पुत्री तिलकवती को पत्नी-रूप मे ग्रहण करता हूँ और इस बात की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भ से होनेवाली सन्तान को ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर मगध का राज्य दूँगा ।"

इस पर सरदार ने तिलकवती को इन शब्दो मे आशीर्वाद दिया—

"बेटी, तुम खुश रहो और सदा अपने पति को सुख देती रहो ।"

यह कहकर सरदार बाहिर चला गया और तिलकवती राजा के चरणो में गिर पड़ी । उन्होने उसे हाथो से उठाकर छाती से लगा लिया ।

५

युवराज की खोज

महाराज के मृग के पीछे घोडा दौडाने पर यद्यपि उनके अंगरक्षकों ने भी उनके पीछे अपने अपने घोडे दौडाए, किन्तु वे महाराज का किसी प्रकार भी पीछा न कर सके और हताश होकर लौट आए। महाराज के दोपहर तक भी न लौटने पर उन्होने वन मे सब ओर फैलकर उनको खोजना आरम्भ किया। वन के आरम्भ मे महाराज का पता न लगने पर उन्होने गहन वन मे घुस कर महाराज को ढूंढना आरम्भ किया। रात्रि का अन्त होने पर वे भीलो की पल्ली मे उस सरदार के मकान पर पहुँच ही गए, जहा महाराज ने तिलकवती का पाणिग्रहण किया था। महाराज की अगरक्षक सेना के आ जाने से सारी भील बस्ती मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। उनके आजाने पर भील सरदार यमदड ने तिलकवती को महाराज के साथ बिदा कर दिया। यौतुक मे उसने अपनी सामर्थ्य भर तिलकवती को बहुत कुछ दिया। तिलकवती की डोली के बाहिर आने पर महाराज की अगरक्षक सेना ने अपने महाराज तथा नई महारानी का सैनिक ढग से अभिवादन किया। महाराज महारानी तिलकवती को बडे आदर-सम्मान के साथ गिरिव्रज ले आए।

महारानी तिलकवती ने इस घटना के ठीक एक वर्ष पश्चात् एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम चिलाती रखा गया। जब तक तिलकवती के पुत्र नही हुआ था महाराज निश्चित थे, किन्तु उसके पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उनको अपने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता उत्पन्न हो गई। उनकी चिन्ता का विशेष कारण यह था कि उनके पाँच सौ पुत्रो में सभी एक से एक पराक्रमी थे। उनके पुत्रो मे एक ज्येष्ठ पुत्र श्रेणिक बिम्बसार तो इतना तेजस्वी था कि उसके सम्मुख सामान्य व्यक्ति बात तक नही कर सकते थे। वह उनकी पटरानी इन्द्राणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। राजकुमार श्रेणिक बाल्यावस्था मे ही अपने पास

पांच सौ सैनिको की एक अगरक्षक सेना भी रखते थे, जिनका वेतन वह अपनी जेब से दिया करते थे । राजकुमार चिलाती की आयु बढने के साथ-साथ महाराज की चिन्ता भी अधिकाधिक बढती जाती थी, क्योकि अपने सभी पुत्रो के विरोध का सामना करने का उनको साहस नही था । अन्त में एक दिन उन्होने महामात्य कल्पक को बुलाकर उससे कहा—

"कल्पक ! मुझे अपने उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे बडी भारी चिन्ता है। उसको दूर करने का कुछ तो उपाय निकालो ।"

"उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कैसी चिन्ता ! क्या आप श्रेणिक बिम्बसार को अपने उत्तराधिकार के योग्य नही मानते । वह आपकी पटरानी इन्द्राणी देवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है ।"

"श्रेणिक की योग्यता मे तो कोई सन्देह नही । किन्तु मै वचनबद्ध होने के कारण उसे राज्य पद नही दे सकता ।"

"कैसा वचन महाराज ! मुझे थोडा समझाकर कहे तो सम्भवत मै कुछ सहायता कर सकूं ।"

"बात यह है कि तिलकवती के साथ विवाह करते समय मैने यह प्रतिज्ञा की थी कि उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक ही मेरे बाद राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा । प्रतिज्ञा करते समय मै समझता था कि मै अब वृद्ध हो गया हूँ, शायद तिलकवती के सन्तान ही न हो और यदि उसके सन्तान हुई भी तो सम्भव है कि वह कन्या ही हो, किन्तु उसके तो विवाह के एक वर्ष बाद ही पुत्र उत्पन्न हो गया । अब मै विषयो से उपरत हो चुका हूँ । मेरी इच्छा है कि तिलकवती के पुत्र को किसी प्रकार राज्यपद देकर स्वय वन मे जाकर अपना शेष जीवन तपस्या करने मे व्यतीत करूँ । अतएव अब तुम यह बतलाओ कि मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है, क्योकि उसको राज्य दे देने से मेरे सभी पुत्र विद्रोही बन सकते है । तुम कोई ऐसी युक्ति निकालो कि बिना झगडे-झझट के मै चिलाती को मगध का राज्य दे सकू ।"

कल्पक—मेरे विचार मे तो महाराज, आपको सब पुत्रों की अपेक्षा अपने केवल एक पुत्र का ही विरोध सहन करना पड़ेगा । यदि आपको किसी प्रकार

यह पता लग जावे कि आपका वास्तविक उत्तराधिकारी कौन पुत्र होगा तो आप उसी पुत्र को राजद्रोह का आरोप लगा कर देश निर्वासित कर दे और उसके चले जाने के बाद राज्य चिलाती को देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करे। आपका उत्तरदायित्व पूर्ण होने पर यदि चिलाती योग्य हुआ तब तो वह मगध सम्राट् बना रहेगा अन्यथा उसके हाथ से राज्य चले जाने का दोष आपके सिर न आवेगा।

राजा—किन्तु यह कैसे पता लगे कि राज्य का उत्तराधिकारी वास्तव में कौन बनेगा ?

कल्पक—वह तो मै पता लगा चुका हूँ। अभी-अभी नगर मे एक उत्तम निमित्तज्ञानी आए थे। मैने उनसे पूछा था कि राजा के पाच सौ एक पुत्रों मे से राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा ?

राजा—तो उन्होने क्या उत्तर दिया ?

कल्पक—उन्होने तीन परीक्षाएँ बतलाकर यह कहा कि जो राजकुमार इन सभी परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होगा वही भावी मगध-नरेश होगा।

राजा—वह तीन परीक्षाएँ कौन २ सी है ?

कल्पक—सब राजकुमारो को एक साथ भोजनशाला मे बिठला कर उनको खीर का भोजन परोस दिया जावे। बाद मे एक शिकारी कुत्ते को उनके ऊपर छोड दिया जावे। जो राजकुमार थाली बिना छोडे पेट भर भोजन करके उठे वह आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इसके पश्चात् प्रत्येक राजकुमार को मिट्टी का एक-एक कोरा घडा देकर उनसे उसको ओस से भर कर लाने को कहा जावे। जो राजकुमार उस घडे को ओस से भर कर उठवाकर लावेगा वह राज्य का अधिकारी होगा। तत्पश्चात् राजमहल मे आग लगवा दी जावे। जो राजकुमार छत्र, चँवर, सिंहासन आदि राज्य-चिन्हो को आग में से बचाकर ले आवेगा वह राज्य का अधिकारी होगा।

राजा—यह बात ठीक है। मै कल से इन तीनो परीक्षाओ का प्रबन्ध करूँगा।

युवराजपद की प्रथम परीक्षा

मध्याह्न का समय है। महाराज भट्टिय उपश्रेणिक राजसभा से भोजन के लिये उठ चुके हैं। आज उनकी पाकशाला मे विशेष चहल-पहल दिखलाई दे रही है। रसोइये जल्दी इधर-उधर आ-जा रहे हैं। उनकी रसोई के कई भाग हैं, जिनमे कुछ मे तो कई-कई सहस्र व्यक्तियो को एक साथ बिठला कर भोजन कराया जा सकता है। राजकुमारो के भोजन करने का एक दालान पृथक् है। उससे लगा हुआ एक कमरा महाराज तथा महारानियो के भोजन करने के लिये नियत है। महाराज के भोजन पर बैठ जाने के साथ उनके पाच सौ एक राजकुमारो को भी एक साथ ही भोजन के लिये बिठलाया गया। राजकुमारो के सामने सुन्दर सोने के थालो मे खीर का भोजन परोसा गया।

भोजन परोसा जाने पर राजकुमारो ने भोजन आरम्भ किया ही था कि उनको एक अत्यन्त भयकर कुत्ता जोर से गुर्राता हुआ अपनी ओर आता दिखलाई दिया। कुत्ता भेडिये के जितना ऊँचा था। उसने अपने कानो तथा पूछ को खडा किया हुआ था। उसके खुले हुए मुख के अन्दर उसके पैने तथा नुकीले दात उसकी भयकरता को और भी प्रकट कर रहे थे।

राजकुमारो ने जो इस शिकारी कुत्ते को अपनी ओर आते देखा तो वे भय से चीख मार-मार कर वहा से भागने लगे। क्रमश वहा से एक के अतिरिक्त सभी राजकुमार भाग गए। न भागने वाला राजकुमार बिम्बसार था। उसकी आयु चौदह वर्ष की थी। उसका उन्नत ललाट, तेजस्वी आँखे तथा बड़-बडे भुजदण्ड उसके महापुरुष होने का प्रमाण दे रहे थे। उसने कुत्ते को अपनी ओर आते हुए देखकर सोचा कि कुत्ता सदा ही शिकार से प्रथम भोजन लेना पसन्द करता है। अतएव निश्चय ही वह रसोई मे आकर प्रथम थाली

मे मुँह डालेगा। हुआ भी वास्तव मे ऐसा ही। कुत्ते ने राजकुमारो के भोजन-गृह मे प्रवेश करके सबसे आगे वाली थाली मे से खीर खानी आरम्भ की। बिम्बसार उसको निश्चितता से देखते जाते थे और स्वय भोजन करते जाते थे। कुत्ता एक थाली की खीर खाकर अगली थाली पर बढ गया। बिम्बसार भी दालान के आरम्भ मे ही बैठे होने के कारण कुत्ते के अत्यत समीप थे। कुत्ता जब दूसरी थाली की खीर खा रहा था तो बिम्बसार ने अन्य थालियो को खीच कर अपने पास एकत्रित कर लिया। दूसरी थाली की खीर खा चुकने पर बिम्बसार ने उसकी ओर को एक थाली और फेक दी। कुत्ते ने उसको भी खाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार कुत्ते की एक-एक थाली समाप्त हो जाने पर बिम्बसार उसकी ओर दूसरी-दूसरी थाली फेकते जाते थे। क्रमश बिम्बसार तथा कुत्ता दोनो अपना-अपना भोजन समाप्त कर चुके। राजा भट्टिय को यह देखकर अत्यत आश्चर्य हुआ कि जिस समय राजकुमार बिम्बसार भोजनशाला से बाहिर निकला तो वह शिकारी कुत्ता पूँछ हिलाता हुआ उसके पीछे-पीछे जा रहा था। राजा ने उस समय महामात्य कल्पक से कहा

"कल्पक! मेरे सारे पुत्रो मे यह बिम्बसार ही सब से अधिक तेजस्वी है। आज की घटना से मझे विश्वास हो गया कि वास्तव मे मेरे सब पुत्रो की अपेक्षा मेरा उत्तराधिकारी यही होगा। खैर, अभी तो दो परीक्षाएँ और शेष है।"

७

युवराजपद की द्वितीय परीक्षा

प्रात काल का समय है। पौष मास होने के कारण अभी आकाश मे कुहरा छाया हुआ है। राजकुमारो को रात्रि के समय ही यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे प्रात काल होते ही सूर्योदय से पूर्व राजा के सम्मुख उपस्थित हो। अस्तु, अरुणोदय होते ही सब के सब राजकुमार राजा के पास पहुँच गए। उस समय राजा के पास पाच सौ कोरे घडो का ढेर पडा हुआ था। उन्होने राजकुमारो के एकत्रित हो जाने पर उनसे कहा .

"राजकुमारो ! आप जानते है कि हमारी वृद्धावस्था समीप है और हम अब राज्यकार्य से उपराम होकर वन मे जाकर तपस्या करने का विचार कर रहे है। ऐसे अवसर पर आप लोगो की भिन्न-भिन्न कार्य देने की दृष्टि से आप लोगो की योग्यता की परीक्षा करना आवश्यक है। अस्तु, आप लोग इस ढेर म से एक-एक कोरा घडा उठा कर लेते जावे और उसे ओस से भर कर यहा शीघ्र से शीघ्र ले आवे।"

राजा भट्टिय उपश्रेणिक राजकुमारो को यह आज्ञा देकर राजमहल म चले गए और राजकुमार भी एक-एक घडा उठा कर चलते बने। सब राजकुमारो के चले जाने पर बिम्बसार ने अपने एक सेवक को घडा उठाने की आज्ञा दी। वह उसके ऊपर घड़ा रखवा कर शीघ्र ही नगर के बाहिर एक ऐसे मैदान मे आ गए जहा अन्य कोई राजकुमार नही था।

शेष राजकुमार भी नगर के बाहिर घास के अन्य मैदानो मे ही गए। वह घास के ऊपर से ओस की एक-एक बूद को उठाते और फिर उसको घडे में डालते थे, किन्तु उनके ऐसा करते ही ओस की वह बूद घडे के अन्दर जाकर सूख जाती थी। राजकुमार इसी प्रकार कई घटो तक बराबर ओस की

बूदें उठाते रहे यहा तक कि सूर्य के ऊपर चढ आने से ओस के कण सूख गए। किन्तु उनके घडे पहिले के समान ही खाली के खाली रहे। अत मे उन्होने लज्जित होकर अपने-अपने खाली घडे राजा को जाकर वापिस कर दिये।

किन्तु राजकुमार बिम्बसार एक प्रतिभाशाली युवक था। वह धीर, वीर एव साहसी था। आपत्तियो से घबराना उसने सीखा ही नही था। घडे को उठाकर प्रथम तो उसको उसने पानी मे डालकर खूब भिगोया, जिससे ओस की बूदे उसमे पडते ही सूख न जावे। इसके पश्चात् उसने अपने सेवक की सहायता से एक चादर को घास के ऊपर बिछाया। दो-चार बार घास पर बिछाने से चादर ऐसी भीग गई, जैसे उसे पानी मे ही भिगो दिया गया हो। अब तो बिम्बसार ने उस चादर को घडे मे निचोडना आरम्भ किया। वह चादर को पृथक्-पृथक् स्थानो मे बिछाकर गीली करके बाद मे उसे घडे मे निचोड दिया करते थे। थोडे परिश्रम के बाद ही उनका घडा ओस से भर गया। अब वह उसको अपने सेवक के सिर पर रखवा कर पिता के पास ले गए।

राजा ने जो बिम्बसार को ओस से भरा हुआ घडा लिवा कर लाते हुए देखा तो प्रसन्न होकर बोले—

"क्यो बिम्बसार, तुम ओस का घडा भर कर ले आए?"

बिम्बसार—हा पिता जी, ले तो आया।

राजा—तुमने उसे किस प्रकार भरा?

बिम्बसार—मै अपने साथ एक चादर ले गया था। वह चादर घास के ऊपर बिछाते ही भीग जाती थी, फिर मै उसे घडे मे निचोड देता था। तीस-चालीस बार इस प्रकार करने से घड़ा ओस से भर गया।

कल्पक—तुम्हारी इस बुद्धि के लिए तुमको मै बधाई देता हूँ राजकुमार। अच्छा अब तुम जा सकते हो।

बिम्बसार के चले जाने पर राजा ने कल्पक से कहा—

"तुमने देखा कल्पक, इस परीक्षा मे भी बिम्बसार ही उत्तीर्ण हुआ। तुम देख लेना कि अतिम परीक्षा में भी यही उत्तीर्ण होगा।"

८

युवराजपद की तृतीय परीक्षा

लगभग डेढ पहर दिन चढा होगा। गिरिव्रज के सभी निवासी अपने-अपने काम-काज मे लग गए थे। राजा भट्टिय उपश्रेणिक भी अपने राजमहल से निकल कर सभा भवन को जा रहे थे कि अचानक राजमहल मे से अग्नि की लपटे निकलती दिखलाई दी। राजमहल से आग की लपटो को निकलता देख कर सारा नगर राजमहल की ओर को आग बुझाने दौड पडा। किन्तु राजमहल पर आग बुझाने वालो का पर्याप्त प्रबन्ध था। अतएव सैनिको ने नगरनिवासियो को उनकी निश्चित सीमा से आगे नही बढने दिया। आग बुझाने वाले सैनिक दल ने राजमहल का घेरा डालकर लम्बी-लम्बी सीढियो तथा पानी के लम्बे-लम्बे नलो की सहायता से आग बुझाने का कार्य तुरन्त आरम्भ कर दिया। किन्तु अग्नि कुछ इस प्रकार से लगी थी कि बुझने का नाम ही न लेती थी। एक बार तो ऐसा दिखलाई दिया कि जल अग्नि मे पड कर घी का कार्य कर रहा है।

किन्तु सैनिक दस्ते भी कम मुस्तैद नही थे। ज्यो-ज्यो अग्नि बढती जाती थी वह दुगने उत्साह के साथ उसके साथ युद्ध करते जाते थे। अन्त मे एक पहर भर युद्ध करने के उपरान्त उन्होने अग्नि पर अधिकार करके उसे बुझा ही दिया।

राजमहल की अग्नि के बुझ जाने पर जब जले हुए सामान की पडताल की गई तो राजा तथा महामात्य को यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि राजकुमार बिम्बसार ने न जाने कब अत्यन्त कौशलपूर्वक छत्र, चमर, सिहासन आदि राज्य-चिन्हो को जलते हुए राजमहल से अत्यन्त सुरक्षित रूप मे निकाल लिया था, जिनकी वे इस समय अत्यन्त सावधानी से रक्षा कर रहे थे। महामात्य कल्पक ने उनको देखकर कहा—

"राजकुमार बिम्बसार, तुमने इस समय सचमुच एक युवराज के योग्य ही

कार्य किया है । मै इस कर्तव्यपरायणता के लिये तुमका बधाई देता हूँ । तुमको अपने इस सत्कर्म का यदि शीघ् नही तो कुछ बिलम्ब से अवश्य ही उत्तम फल मिलेगा ।"

राजकुमार कल्पक के इन गूढ शब्दो पर देर तक विचार करते हुए अपने आवास की ओर चले गए ।

अग्नि के बुझ जाने पर राजा ने महल का फिर सस्कार करवाया । आग के कारण काली पडी हुई दीवारो पर रग कराया गया । अधजली वस्तुओं को फेक कर उनके स्थान पर नवीन वस्तुएँ बनवा कर रख दी गई । जो वस्तुएँ पूर्णतया जल गई थी उनके स्थान पर भी नई वस्तुएँ मगवा कर रखी गई ।

आग बुझाने मे राजसेवको, दासो तथा दासियो की जो हानि हुई थी उसकी भी राज्य-कोष से पूर्ति कर दी गई । इस बात का पूर्णतया ध्यान रखा गया कि प्रत्येक वस्तु पहिले के स्थान पर ही रखी जावे । इस प्रकार अग्निध्वस्त उस राजमहल को पहिले की अपेक्षा भी अधिक सजा दिया गया ।

आपको किसी गुप्तचर ने धोखा दिया है। मेरे जैसे पितृभक्त पुत्र के द्वारा भला क्या ऐसी बात सम्भव है ?

राजा—फिर तुम गुप्त रूप से पाच सौ सैनिक अपन पास क्यो रखते हो ?

बिम्बसार—मै गुप्त रूप से तो नही रखता ! उनको तो मै प्रकट रूप से रखता हूँ और अपने खर्च से ही उनको वेतन भी देता हूँ। यदि आपको मेरे पास उनकी उपस्थिति पसन्द नही है तो मै उनको अभी सेवा-निवृत्त कर सकता हूँ।

राजा—किन्तु इससे तुम्हारी सदाशयता का समर्थन तो नही होता। तुम को उसके लिये राज्यदण्ड लेना होगा।

बिम्बसार—पिता जी, आपका दिया हुआ राज्यदण्ड तो मै निरपराध होने पर भी प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करूँगा।

राजा—तुमको इस राज्य-द्रोह के अपराध मे देश-निष्कासन का दण्ड दिया जाता है। जाओ, गिरिव्रज को छोडकर अभी निकल जाओ।

इन वज्र से भी कठोर शब्दो को सुनकर बिम्बसार को अपने पैरो के नीचे से पृथ्वी निकलती हुई सी प्रतीत होने लगी। किन्तु वह स्वभाव से ही अत्यन्त धीर था। उसने केवल यही कहा—

"पिता जी ! जब मर्यादा पुरुषोत्तम राम पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये वन जा सकते थे तो क्या आपका यह अधम पुत्र आपकी देशनिष्कासन की आज्ञा का पालन न करेगा। मुझे मातृभूमि के छूटने का इतना दु ख नही, जितना दु ख मुझे आपके चरणो की सेवा से वचित होने का है। अच्छा पिताजी, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये। मै जाता हूँ।"

यह कहते-कहते राजकुमार बिम्बसार का गला भर आया और वह अपने पिता के चरण छूकर वहाँ से चले गए। उस समय राजा उपश्रेणिक का भी गला भर आया था, किन्तु वह बिम्बसार के सामने गम्भीर ही बने रहे। बिम्बसार के चले जाने पर उनके नेत्रो से आसू ढुलकने लगे, जिनको उन्होने बडी कठिनता से पोछा। तब कल्पक ने कहा—

"आखिर महाराज ! आपका भी पिता का हृदय है। निरपराध पुत्र को दण्ड देते समय आपके मन मे वेदना होना स्वाभाविक है।"

१०

राज्य-संन्यास

आज गिरिव्रज मे अपूर्व आनन्द का स्रोत उमड रहा है। सारे नगर को नए सिरे से सजाया गया है। प्रत्येक घर पर बन्दनवारो तथा झडियो के अतिरिक्त नवीन ध्वजाएँ लगाई गई है। सडको मे विशेष रूप से छिडकाव किया गया है। उनकी सफाई इतनी सावधानी से की गई है कि एक दाना भी गिर जावे तो उसका सुगमता से पता लगाया जा सकता है। लोगो के झुण्ड कै झुण्ड अपने-अपने घरो से निकल-निकल कर राज्य-सभा की ओर जा रहे है। वह आपस मे अनेक प्रकार की बाते भी करते जाते है। उनमे से एक बोला—

"भाई, इसमे सन्देह नही कि महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने जन्म भर सैकडो विवाह करके भी जो इस समय सन्यास लेकर वन जाने की घोषणा की है उससे उन्होने अपने जीवन के सारे अनाचारो को धो दिया।"

तब तक दूसरा बोला—

"भाई, यह बात तो तुम्हारी ठीक है। किन्तु राजा सन्यास लेकर कितने ही ऊँचे महात्मा बन जावे उन्होने जो निरपराध बिम्बसार को देश-निर्वासन का दण्ड दिया है, इस कलक को वह सात जन्म लेकर भी नही धो सकेगे।"

इस पर तीसरा बोला—

"तो क्या आप समझते है कि बिम्बसार अब लौट कर गिरिव्रज नही आवेगे। यह निश्चय है कि यह बालक चिलाती किसी प्रकार भी राज्य की बागडोर नही सभाल सकेगा। ऐसी अवस्था में हम और तुम ही चाहे कही से भी बिम्बसार को ढूढकर लावेगे।"

तब चौथा बोला—

"यह तुमने ठीक कहा। मै भी यही समझता हूँ कि साल दो साल के अन्दर ही गिरिव्रज में बिम्बसार का शासन स्थापित हो जावेगा।"

इस पर पाचवे ने कहा—

"अरे भाई, अब तो इस आलोचना-प्रत्यालोचना को जाने दो। अब तो राज-दरबार सामने दिखलाई दे रहा है। यदि कही किसी राज-पुरुष ने हमारी इन बातो को सुन लिया तो लेने के देने पड जावेगे।"

उसके ऐसा कहने पर सब लोग चुपके-चुपके चलने लगे। राजसभा की आज की सजावट तो और भी देखने योग्य थी। सारी राजसभा मे एक से एक उत्तम दरिया तथा कालीन बिछा कर उनके ऊपर गद्दे तकियो को लगाया गया था। राजपुरुषो के लिये कुर्सी के आकार के आसन बिछाए गए थे। महामात्य कल्पक तथा प्रधान सेनापति भद्रसेन के आसन भी आज विशेष रूप से नये दिखलाई दे रहे थे। पुरान राजसिहासन की बगल मे एक नया राजसिहासन रखा हुआ था। वे दोनो आसन सोने-चादी के बने हुए थे। उनमे बीच-बीच मे रत्नो की प्रभा से अपूर्व ज्योति निकल रही थी।

क्रमश लोगो का आना-जाना आरम्भ हुआ। आज सभी पौर-जानपदो को राजसभा मे आने के लिये निमन्त्रित किया गया था। जनता को भी आज राजसभा मे आने की पूरी छूट दे दी गई थी। अस्तु सबसे प्रथम राजसभा में दर्शको का ही आगमन आरम्भ हुआ। बाद मे पौर तथा जानपद लोग आए। उनके बाद राज्याधिकारियो ने आकर अपने-अपने स्थान पर बैठना आरम्भ किया। नागरिको, पौर-जानपदो तथा राज्याधिकारियो के आने के बाद सेनापति भद्रसेन इस अवसर के योग्य उपयुक्त उत्तम वस्त्र पहिने राजसभा मे आकर अपने आसन पर बैठ गए। उनके बाद महामात्य कल्पक भी आकर अपने आसन पर बैठ गए। राजकुमारो के बैठने के लिये नीचे सभा मे एक ओर पृथक् व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार सारी राजसभा के भर जाने पर लोग उत्सुकता से राजा तथा राजकुमार चिलाती के आने की प्रतीक्षा करने लगे। तब तक राजमहल से तुरही के बजने का शब्द आया। इसके साथ ही साथ अनेक राज्याधिकारियो से घिरे हुए महाराज भट्टिय उपश्रेणिक तथा राजकुमार चिलाती भडकीले वस्त्र पहिने आते हुए दिखलाई दिये। उनको देखते ही

जनता ने "महाराज उपश्रेणिक की जय", "राजकुमार चिलाती की जय" के शब्दो से सारी राजसभा को भर दिया।

राजा उपश्रेणिक आकर अपने सिहासन पर बैठ गए। राजकुमार चिलाती उनके पास एक दूसरे उत्तम आसन पर बैठे। सबके बैठ जाने पर महाराज ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया.

"सभासदो, पौर जानपदो, राज्याधिकारियो तथा सामत वर्ग! हमको राज्य करते हुए अब वृद्धावस्था आ गई है। राज्य-सिहासन पर बैठ कर कर्तव्य-भावना के कारण राजा को अनेक ऐसे कार्य करने पडते है, जिनका फल उसके लिये इस जन्म अथवा अगले जन्म मे बुरा हो सकता है। अतएव राजा का कर्तव्य है कि वह पचास वर्ष की आयु के पश्चात् राज्य कार्य से अपना हाथ खीच कर वन मे जाकर वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे। हमने महारानी तिलकवती देवी से विवाह करते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि उसके भावी औरस पुत्र को हम अपना उत्तराधिकारी मगध-सम्राट् बनावेगे। अस्तु आज हम आप सबके सामने उसके पुत्र 'राजकुमार चिलाती' का राज्याभिषेक करके उसे मगध-सम्राट् बनाना चाहते है। आशा है आप सब हमारे इस कार्य का समर्थन करेगे।"

राजा के यह कहते ही जनता ने फिर जोर की आवाज मे "सम्राट् उपश्रेणिक की जय"

"राजकुमार चिलाती की जय" बोल कर अपनी सहमति प्रकट की।

इसके पश्चात् वेद मन्त्रो से राजकुमार चिलाती का राज्याभिषेक किया जाकर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने अपने हाथ से उसके सिर पर राज-मुकुट रखा। उस समय फिर जोर से "सम्राट् चिलाती की जय" का घोष किया गया। सम्राट् चिलाती के राज्यसिंहासन पर बैठ जाने पर महामात्य कल्पक ने उठकर तलवार हाथ मे लेकर कहा—

"मै कल्पक ब्राह्मण इस बात की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि मै सम्राट् चिलाती की सदा ही भक्तिपूर्वक सेवा करता हुआ उनकी आज्ञा का पालन करता रहूँगा।"

महामात्य कल्पक के बाद प्रधान सेनापति भद्रसेन तथा अन्य सभी राज्या-

धिकारियो ने सम्राट् चिलाती के प्रति भक्ति की शपथ ली ।

इस शपथ-ग्रहण समारोह के बीच यह किसी ने भी ध्यान नही दिया कि महाराज भट्टिय उपश्रेणिक न जाने कब सभा से उठ कर पास के एक कमरे में चले गए और वहा ही सम्पूर्ण राज्य-चिन्हो का त्याग कर तथा भगवे वस्त्र पहिन कर बाहिर राजसभा मे आए । शपथ-ग्रहण कार्यवाही के हो चुकने पर उन्होने खडे होकर फिर कहा—

"सभासदो तथा नागरिको !

मुझे प्रसन्नता है कि आज मै अपने गृहस्थ कार्यो को समाप्त कर चुका । आज मैंने अपने सब से अन्तिम कर्तव्य उत्तराधिकार-समर्पण के कार्य को भी कर डाला । अब मैं गृहस्थ का त्याग कर भगवे वस्त्र पहिन कर वन जा रहा हूँ । मेरी उस परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह आप सब का कल्याण करे ।"

उनके यह कहते ही जनता ने

"राजर्षि उपश्रेणिक की जय ।"

के शब्द से उनका अभिवादन किया । राजा उपश्रेणिक के जाते समय सम्राट् चिलाती ने सिहासन से उठ कर उनके चरण छुए । उसके पश्चात् वह सारी सभा के देखते-देखते नगे पैरो वन को चले गए । जनता उनको गिरिव्रज के प्राकार तक पहुँचा कर फिर वापिस लौट आई ।

११

नन्दिग्राम में

राजकुमार बिम्बसार जिस समय गिरिव्रज से चले तो लगभग डेढ पहर दिन चढा था। वह भोजन भी नही कर पाए थे कि उनको देशनिर्वासन की आज्ञा सुना दी गई। अस्तु वह बिना भोजन किये ही नगर से निकल चले। जाते समय उन्होने अपने पाच सौ सेवको को भी यह कह कर बिदा कर दिया कि उन्हें अच्छे दिन वापिस आने पर आवश्यकता के समय फिर बुला लिया जावेगा।

बिम्बसार गिरिव्रज से निकल कर प्रथम पश्चिम की ओर को पैदल ही चले। इस समय वह अपने राजसी वेष मे तो थे, किन्तु उस वेष के उपयुक्त उनके पास वाहन या अन्य सामग्री कुछ भी नही थी। मार्ग मे जाते हुए उन्हे एक सेठ जी भी मिल गए, जिनका नाम सेठ इन्द्रदत्त था। वह भी कही और से आकर पश्चिम को जाने वाले मार्ग पर चले जा रहे थे। उनको देखकर राजकुमार बोले—

"मामा, प्रणाम ! अब तो हम मार्ग मे एक से दो हो गए।"

सेठ जी ने मन मे तो राजकुमार के 'मामा' कहने पर कुछ बुरा सा माना, किन्तु प्रकट मे यह उत्तर दिया—

"हा, मार्ग मे एक की अपेक्षा दो सदा ही अच्छे रहते है।"

किन्तु सेठ जी कुछ कम बोलने वाले थे। बिम्बसार को पैदल चलने का अभ्यास नही था। अतएव उसको मार्ग का श्रम अखर रहा था। उसने सेठ जी से कहा—

"मामा ! ऐसे किस प्रकार मार्ग तय होगा। जिह्वारथ पर चढकर चले।"

सेठ जी उसके इस शब्द को सुनकर भी चुप ही रहे। वह मन मे सोचने लगे कि कैसा विचित्र युवक है। जिह्वा तो मुख मे है, भला उसका रथ किस

प्रकार बनाया जा सकता है ।

इस समय चलते-चलते दोपहर हो चुका था । बिम्बसार को भूख जोर से सता रही थी । सेठ जी के मुख से भी भूख तथा प्यास के लक्षण स्पष्ट प्रकट हो रहे थे । अतएव राजकुमार ने उनसे कहा—

"मामा ! जान पडता है कि पाथेय आप भी नही लाए ।"

"नही राजकुमार, मै एक गाव में वसूली के लिये गया था । वहा मार्ग के लिये पाथेय कौन बनाकर देता । अब तो घर चल कर ही भोजन मिलेगा ।"

"नही मामा, यह सामने नन्दिग्राम है । इसमे राज्य की ओर से सभी परदेसियो को भोजन दिये जाने की व्यवस्था है । चलो, वही जाकर भोजन करेगे ।"

"अच्छा चलो, वही चले ।

नन्दिग्राम एक अच्छा कस्बा था । उसमे लगभग एक सहस्र घर थे, जिनमें ब्राह्मणो की सख्या अधिक थी । वही वहा के जमीदार भी थे । नन्दिनाथ नामक एक ब्राह्मण गाव का जमीदार था । नन्दिग्राम मे आगन्तुको के रहने तथा ठहरने के लिये एक बड़ी सुन्दर धर्मशाला थी, जिसमे भोजन भी निःशुल्क दिया जाता था । जिस समय राजकुमार बिम्बसार धर्मशाला मे सेठ जी के साथ पहुँचे तो वहा अतिथियों को भोजन कराया जा रहा था । उन्होने नन्दिनाथ के पास जाकर उससे वार्तालाप किया ।

"महोदय ! यहा के मुख्य प्रबन्धक आप ही है ?"

"क्यो ! कहिये, आपको क्या काम है ?"

"बात यह है कि हम गिरिव्रज से आ रहे है और राज्य-कर्मचारी है । हम यहा भोजन करना चाहते है ।"

"किन्तु राज्य-कर्मचारियो को तो हम जल तक भी नही पिलाया करते, फिर भोजन देना तो किस प्रकार सम्भव हो सकता है ।"

इस प्रकार टका-सा उत्तर पाकर राजकुमार बिम्बसार तथा सेठ जी दोनों ही वहा से भूखे-प्यासे वापिस चल आए ।

१२

मूर्खता अथवा चातुर्य

नन्दिग्राम से बाहिर आने पर बिम्बसार ने सेठ जी से नन्दिग्राम की ओर सकेत करके पूछा—

"मामा! यह गाव बसा हुआ है अथवा ऊजड ?"

सेठ जी राजकुमार के इस प्रश्न को सुनकर आश्चर्य मे पड गए। वह सोचने लगे कि राजकुमार कैसी मूर्खता की बात कह रहा है, जो इसे यह भी दिखलाई नही देता कि यह गाव बसा हुआ है अथवा ऊजड।

अब ये दोनो फिर अपने मार्ग पर आगे चल पडे। थोडी दूर जाने पर उनको एक और छोटा गाव मिला। इस गाव मे सभी झोपडिया थी, जिनसे पता चलता था कि उस गाव मे धनिक कोई नही है। यह लोग गाव के समीप पहुँचे तो इनको एक स्त्री के धाडे मार-मार कर रोने तथा एक पुरुष के कर्कश स्वर मे चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया। आगे बढने पर उन्होने देखा कि एक व्यक्ति अपनी स्त्री को मार रहा है। स्त्री धाडे मार-मार कर रोती जाती थी और पुरुष कर्कश स्वर मे उसको डाटता जाता था। यह दोनो लाचार होकर इस दृश्य को देखते हुए आगे निकल गए। गाव के दूसरे किनारे पर आ जाने पर भी उनके कान मे उस स्त्री के रोने का शब्द आ रहा था। तब उसको सहने मे असमर्थ होकर राजकुमार ने सेठ जी से पूछा—

"मामा! यह अपनी बधी हुई स्त्री को मार रहा है अथवा खुली हुई को ?"

सेठ जी राजकुमार के इस प्रश्न को भी सुनकर चुप हो गए। वह सोचने लगे कि यह युवक कैसा विचित्र है कि इसको यह भी दिखलाई नही देता कि पिटनेवाली स्त्री बधी हुई है अथवा खुली हुई।

इस गाव से आगे बढ़कर यह तीनो गाव के बाहिर खेतो मे पहुँच गए।

खेत उस समय खाली थे और एक खेत मे एक किसान हल चला रहा था। राजकुमार उस किसान को बहुत समय तक देखता रहा। बाद मे वह सेठ जी से बोला—

"मामा ! यह किसान अपने खेत की उपज को खा चुका है अथवा आगे खावेगा ?"

सेठ जी राजकुमार के इस प्रश्न पर भी चुप हो गए। वह सोचने लगे कि यह कैसा विचित्र युवक है कि इसे यह भी दिखलाई नही देता कि जुतनेवाले खेत की उपज को किसान पहिले से किस प्रकार खा सकता है। यह लोग खेतो को पार करते हुए जब सडक पर आए तो मार्ग मे बालू अधिक थी, जिस पर जूते पहिन कर जाना कठिन था। अतएव राजकुमार ने अपने जूते उतार कर हाथो मे ले लिये। बालू पार करने पर इन लोगो को एक नदी मिली। इसी नदी के पार सेठ जी का अपना ग्राम भी था। सेठ जी ने बालू मे जूते नही उतारे थे। नदी पार करने के लिये उन्होने जूते उतार कर अपने हाथ मे ले लिये, किन्तु राजकुमार ने—जो अभी तक अपने जूतो को हाथो मे लिये हुए था—नदी पार करने के लिये जूतो को पहिन लिया। राजकुमार को पानी मे जूते पहिनते देखकर सेठ जी को कुछ हँसी आ गई। वह सोचने लगे कि अब इसमें सन्देह नही रहा कि यह नवयुवक मूर्ख है। इसने बालू मे तो जूते उतार दिये और नदी मे जहा जूते उतारने चाहिएँ थे, जूते पहिन लिये।

नदी मे जल अधिक नही था। अतएव उसको दोनो ने सुगमता से पार कर लिया। नदी पार करके दोनो एक छोटे से बगीचे मे पहुँचे। सेठ जी एक बडे वृक्ष की ओर सकेत कर राजकुमार से बोले—

"राजकुमार ! यह वेणपद्म नगर है। मै इसी मे रहता हूँ। तुम तनिक देर इस आम के वृक्ष के नीचे सुस्ताओ। मै घर जाकर तुमको अभी बुलवा लूगा।"

'बहुत अच्छा' कह कर राजकुमार बिम्बसार उस वृक्ष के नीचे चले गए। वहा जाने पर वह अपना छाता खोलकर और उसे अपने ऊपर तान कर बैठ गए।

सेठ जी वृक्ष के नीचे उनको छाता खोलते देखकर फिर हँसे। वह मन मे कहने लगे "यह नवयुवक वास्तव मे ही मूर्ख है, अन्यथा वृक्ष के नीचे छाता खोलकर क्यो बैठता।"

सेठ जी राजकुमार को वही बैठा हुआ छोडकर गाव की ओर चले गए। उनका गाव कोई बडा गाव नही था। उसमे दो-चार के अतिरिक्त सभी घर छप्परो के थे। जो दो-चार घर पक्के कहे जाते थे वह भी चूने-ईट के न होकर मिट्टी की दीवारो के ही थे। सेठ जी का नाम सेठ इन्द्रदत्त था, उनका घर भी उनमे अपवाद न था। सेठ जी की पत्नी बहुत समय पूर्व मर चुकी थी। सन्तान के नाम पर उनके केवल एक कन्या ही थी, जिसका नाम नन्दिश्री था। उसकी आयु भी लगभग चौदह वर्ष की थी। सेठ जी के घर गृहस्थी के सारे काम-काज को नन्दिश्री ही किया करती थी। वह पढी-लिखी तो थी ही, स्त्रियोचित सभी ललित कलाओ मे भी प्रवीण थी। उसने घर के काम-काज मे सहायता देने के लिये घर मे एक दासी को भी रखा हुआ था। पिता जी को आते देख कर नन्दिश्री ने आगे बढ कर उनकी अभ्यर्थना की और उनसे पूछा—

"पिता जी, अकेले आए अथवा और भी कोई आपके साथ आया है?"

"बेटी, अकेला तो मै नही आया। मेरे साथ एक ऐसा नवयुवक भी आया है, जो अपने वस्त्रो तथा मुख के तेज से तो ऐसा दिखलाई देता है कि जैसे सारे ससार पर राज्य करने के लिये ही विधाता ने उसकी रचना की हो, किंतु उसने मार्ग मे अनेक ऐसी बाते की कि शायद ससार भर मे उससे अधिक मूर्ख कोई भी न हो।"

नन्दिश्री—उसने मूर्खता की ऐसी क्या-क्या बाते की?

सेठ जी—उसने प्रथम तो मुझ अपरिचित को मामा बतलाया। फिर नन्दिग्राम मे भोजन न मिलने पर बाहिर आकर पूछने लगा कि वह गाव बसा हुआ था अथवा ऊजड। इसके पश्चात् जब हम एक गाव से होकर निकले तो वहा एक व्यक्ति अपनी स्त्री को पीट रहा था। उसको देखकर राजकुमार ने पूछा कि वह अपनी बधी हुई स्त्री को मार रहा था अथवा खुली हुई को। वहा से चलकर जब हम एक खेत मे आए तो वह खेत जोतनेवाले एक किसान को

देखकर पूछने लगा कि वह अपने खेत की उपज को खा चुका अथवा आगे चल कर खायेगा। फिर उसने नदी मे जूते पहिन लिये और जब मैंने उससे अपने गाव के पास वाले उस आम के पेड के नीचे बैठने को कहा तो वह अपना छाता खोल कर उसके नीचे बैठ गया। मै उससे कह आया हूँ कि उसे घर पहुँच कर शीघ्र ही बुलवा लूगा।

नन्दिश्री—पिता जी, आपने उसे ठीक नही समझा। वह तो ससार के सबसे अधिक बुद्धिमान् व्यक्तियो मे से है।

सेठ जी—यह तूने किस प्रकार समझा बेटी?

नन्दिश्री—देखिये पिता जी! मामा-भानजे से अधिक निस्वार्थ सम्बन्ध ससार भर मे दूसरा नही होता। अतएव आपके साथ निस्वार्थ प्रीति-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उसने आपको मामा कहा। फिर नन्दिग्राम मे जब आप लोगो को भोजन नही मिला तो वह ग्राम कैसा ही बडा होने पर भी आप लोगो के लिये तो ऊजड ही था। वह गाव वाला जो अपनी स्त्री को मार रहा था सो विवाहित स्त्री को बधी हुई तथा (बिना विवाह के घर मे बिठलाई हुई स्त्री को बिना बधी हुई कहा जाता है।) उसका अभिप्राय यह था कि यदि वह पुरुष अपनी बधी हुई स्त्री को मार रहा है तो वह पिट कर भी घर मे ही बनी रहेगी अथवा यदि वह करी हुई स्त्री को मार रहा है तो वह पिट-छित कर भाग जावेगी। उसने जो किसान के विषय मे पूछा कि वह अपनी उपज को खा चका अथवा आगे खायेगा तो उसका यह अभिप्राय था कि यदि उस पर ऋण है तो वह अपनी उपज को बोने के पूर्व ही खा चुका, क्योकि ऋण की दशा मे महाजन उसकी सारी उपज को उससे अपने ऋण के बदले मे छीन लेगा। किन्तु यदि उसके ऊपर ऋण नही है तो वह अपनी उपज को बाद मे पूरे वर्ष भर मजे मे बैठ कर खावेगा। उसने जो नदी मे जूते पहिने तथा वृक्ष के नीचे छाता लगाया अपने इन कार्यो से उसने यह प्रकट किया कि वह एक उच्च राजवश मे उत्पन्न हुआ है। क्योकि राजा लोग नदी में ककर आदि से पैरो की रक्षा के लिये जूते पहिनते है और पक्षियो की बीट आदि से अपने वस्त्रो की रक्षा करने के लिये वृक्ष के नीचे छाता लगाते है। अच्छा, मै उसे अभी घर बुलवाती हूँ।

१३

प्रणय परीक्षा

नन्दिश्री की दासी का नाम लम्बनखी था। वास्तव मे उसे अपने नाखून बढाकर रखने का व्यसन था। इसीसे उसे सब लम्बनखी कहा करते थे। नन्दिश्री ने उसको अपने पास बुलाकर कहा—

"लम्बनखी! तू जरा अपने नाखून मे तेल भर कर गाव के बाहिर नदी किनारे चली जा। वहा आम के नीचे एक नवयुवक बैठा हुआ है। तू उससे कहना कि आपको नन्दिश्री ने बुलाया है और स्नान करने के लिये यह तेल भेजा है। आते समय उसको तू घर का पता न बतलाकर केवल कान दिखला कर चली आना।"

लम्बनखी ने नन्दिश्री के कहे अनुसार ही सारा कार्य किया। प्रथम उसने अपने हाथो के दसो नखो मे तेल भरा। फिर उनको ऊपर किये हुए वह नदी किनारे आम के वृक्ष के नीचे बैठे हुए राजकुमार बिम्बसार के पास आकर बोली—

"राजकुमार! आपको नन्दिश्री ने बुलाया है और स्नान करने के लिये यह तेल भेजा है।"

बिम्बसार—नन्दिश्री क्या उन्ही सेठ इन्द्रदत्त जी की पुत्री है, जिनके साथ हमारा यहा तक आना हुआ है।

लम्बनखी—जी हॉ, यही बात है।

इस पर राजकुमार ने वही बैठे २ पैर से भूमि मे एक गड्ढा खोद दिया। नदी किनारा होने के कारण उसमे तुरन्त जल भर आया। तब राजकुमार ने लम्बनखी से कहा—

"तू अपने नखो के तेल को इस जल मे डाल कर घर जा। मै भी स्नान कर पीछे से आता हूँ।"

लम्बनखी अपने नखो का तेल उस गड्ढे मे डाल कर राजकुमार को सकेत से कान दिखा कर घर चली गई।

लम्बनखी के जाने के बाद राजकुमार ने देखा कि उस गड्ढे का सारे का सारा जल तेल के कारण चिकना हो गया। उन्होंने उसको अपने बदन मे मल कर प्रथम अच्छी तरह स्नान किया। फिर वह वस्त्र पहिन कर जाने के लिय तैयार हुए। वह सोचने लगे कि दासी जाते समय कान दिखला गई है। कान का अर्थ होता है ताड का वृक्ष। सो उसके मकान के सामने ताड का वृक्ष होना चाहिये। कान मे कीचड भी होता है सो उसके मकान के सामने कीचड़ भी होना चाहिये।

इस प्रकार राजकुमार बिम्बसार वहाँ से स्नान कर गाव मे घुसे। वह गाव मे आगे चलते जाते और ऐसे मकान को खोजते जाते थे, जिसके सामने ताड का पेड हो। अन्त मे आगे बढते-बढते उनको एक ऐसा मकान मिल ही गया। उसके सामने बडा भारी कीचड था और उस के अन्दर से घर मे जाने के लिये एक-एक कदम के अन्तर पर कुछ पत्थर रखे हुए थे। राजकुमार उन पत्थरो पर से न जाकर कीचड के अन्दर पैर धँसा कर चलने लगे। इससे उनके पैर घुटनो तक कीचड मे सन गए। वह उन सने हुए पैरो से ही नन्दिश्री के आगन मे जा पहुँचे। नन्दिश्री ने उनको देखकर एक आधा गिलास जल देते हुए कहा—

"राजकुमार आप प्रथम इस जल से अपने पैर साफ कर ले।"

राजकुमार ने जो घुटनो तक सने हुए अपने पैरो के लिये कुल आधा गिलास जल देखा तो तुरन्त समझ गये कि उनकी बुद्धि की परीक्षा की जा रही है। अस्तु, वह जल लेकर नाली के पास जा बैठे। यहा उन्होंने प्रथम एक खप्पच से अपने पैरो के सारे कीचड को छुडाया और फिर थोडे जल से उनको धोकर अपने पैरो को पूर्णतया साफ करके भी थोडा जल बचा कर नन्दिश्री को दे दिया।

नन्दिश्री राजकुमार के रूप, यौवन, तेज तथा बुद्धिचातुर्य को देखकर न केवल प्रभावित हुई वरन् उन पर आसक्त हो गई। राजकुमार का मुख उसके

हृदय मे बस गया और वह यही सोचने लगी कि किस प्रकार मै प्रत्येक समय उसी को देखती रहूँ। वह जानती थी कि पिता उसकी बात को नही टालते और उसके इच्छा करने से ही वह उसका विवाह किसी भी सत्पात्र के साथ कर देगे। किन्तु वह स्वयं भी कम बुद्धिमती नही थी। वह विवाह का निश्चय करने से पूर्व अपने भावी पति की पात्रता के सम्बन्ध मे सब प्रकार से छानबीन कर लेना चाहती थी। अपने पिता के अनुभव, स्नान-परीक्षा तथा पैर धुलवा कर वह यह देख चुकी थी कि राजकुमार असाधारण रूप से बुद्धिमान् है। किन्तु राजकुमार अपना वश-परिचय नही दे रहे थे। अतएव उसने उनके उच्च कुल का परिचय पाने के लिये उनकी एक अन्य परीक्षा लेने का निश्चय किया। वह सोचने लगी की मोती पिरोने का कार्य केवल उच्चवशीय व्यक्ति ही कर सकते है। अतएव उसने एक टेढा-मेढा मोती हाथ मे लेकर राजकुमार से कहा—

"राजकुमार यह मोती मुझ से नही पिरोया जा सका। क्या आप इसमे डोरा डाल कर इसे पिरो सकेगे ?"

"क्यो नही।"

यह कह कर राजकुमार ने उसके हाथ से मोती तथा डोरा लेकर उसे अल्प परिश्रम से ही पिरो दिया। फिर उसने उसमे तनिक गुड लगा कर उसे चीटियो के बिल के पास रख दिया, जिससे चीटिया उसे लेकर बिल मे घुस गई। किन्तु नन्दिश्री ने उसे अत्यन्त सावधानी से चीटियो के बिल मे से इस प्रकार निकाल लिया कि उससे एक भी चीटी नही मरी।

राजकुमार नन्दिश्री के हाव-भाव से यह समझ गये कि वह उनको प्रेम की दृष्टि से देखने लगी है। इधर नन्दिश्री भी कुछ कम सुन्दरी नही थी। अतएव उसकी दृष्टि से आकर्षित होकर राजकुमार भी उसकी परीक्षा करने लगे थे। इसीलिये उन्होने चीटियो के बिलो द्वारा उसकी परीक्षा की थी।

इस समय भोजन के लिये अतिकाल हो चुका था। अतएव नन्दिश्री ने राजकुमार से कहा—

नन्दिश्री—राजकुमार ! मै आपके लिये क्या भोजन बनाऊँ ।

राजकुमार—मै किसी के यहा भोजन नही किया करता । मेरे पास गाठ में बत्तीस चावल बधे हुए है । यदि तुम इन्ही चावलो का भोजन बना सको तो मैं तुम्हारे यहा आनन्द से भोजन करूँगा ।

नन्दिश्री—आप मुझे अपने बत्तीस चावल दीजिये तो ! मै उन्ही से आपको छत्तीस प्रकार के व्यजन बना कर खिलाऊँगी ।

नन्दिश्री के यह कहने पर राजकुमार ने अपनी गाठ खोलकर उसको चावल दे दिये । नन्दिश्री ने चावलो को लेकर प्रथम उनको भिगोया । फिर उनको पानी मे पीस कर उनके छोटे-छोटे चार-पाच गुलगुले बनाए । वे गुलगुले उसने लम्बनखी को देकर कहा—

"लम्बनखी ! यह जादू के गुलगुले हैं । तू इनको ले जाकर मडी मे बेच आ । खरीदार से कहना कि यह वशीकरण गुलगुले है । इनको जिस स्त्री को अपने हाथ से खिलाया जावेगा वह खिलाने वाले के वश मे हो जावेगी ।"

लम्बनखी जो उन गुलगुलो को लेकर बाजार मे गई तो उसको जाते ही उनके सौ रुपये मिल गए । वह प्रसन्न होती हुई वापिस आई और सौ रुपये उसने नन्दिश्री के हाथ पर रख दिये । अब तो नन्दिश्री ने उन रुपयो की सब वस्तुएँ मोल मँगवा कर राजकुमार बिम्बसार को छत्तीस प्रकार के व्यजन बना कर खिलाये । राजकुमार उसके हाथ का भोजन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

इस प्रकार नन्दिश्री ने राजकुमार की तथा राजकुमार ने नन्दिश्री की प्रच्छन्न रूप से प्रणय परीक्षा कर डाली, जिसमे दोनो ने ही दोनो को शत-प्रतिशत नम्बर दिये । इस परीक्षा की यह विशेषता थी कि सेठ जी को इस का लेशमात्र भी पता नही लगा और वह दोनो एक दूसरे पर पूर्णतया आसक्त हो गए ।

१४

गृह-जामाता

पहर भर रात्रि जा चुकी है। राजकुमार बिम्बसार एक पृथक् कमरे में जाकर लट चुके है। नन्दिश्री तथा उसके पिता सेठ इन्द्रदत्त एक दूसरे कमरे मे लेटे हुए है कि सेठ जी ने मौन भग करते हुए कहा—

"बेटी! बात तो तेरी ठीक थी। राजकुमार वास्तव मे अत्यत तेजस्वी, बुद्धिमान् और पराक्रमी है। जब से मेरा इसका साथ हुआ, मै सदा ही गुप्त रूप से इसका पीछा करके इसकी गतिविधि का समाचार लेता रहा हूँ। परिचय के विषय मे जब कभी भी उससे पूछा गया वह सदा ही कुछ न कुछ बहाना कर टालता रहा है। किन्तु आज पन्द्रह दिन तक प्रयत्न करने के बाद मै इसका यथार्थ परिचय जान पाया हूँ। यह महातेजस्वी व्यक्ति मगध का राजकुमार बिम्बसार है।

नन्दिश्री—अच्छा पिता जी! यह वही तेजस्वी राजकुमार है, जिसकी वीरता तथा बुद्धिमत्ता की कहानिया देश-देशान्तरो तक फैली हुई है!

सेठ जी—हा बेटी, यह वही है। यह हमारे अत्यधिक भाग्य है जो यह आजकल हमारे यहां ठहरा हुआ है।

नन्दिश्री—किंतु पिता जी, आपने इसका परिचय किस प्रकार पाया?

सेठ जी—जिस दिन राजकुमार को मै यहा लाया उससे अगले ही दिन तीन-चार अपरिचित व्यक्ति गाव मे आये। किस प्रकार उन्होन बिम्बसार के यहां होने का पता लगाया और किस प्रकार अपने आने की सूचना उन्होने बिम्बसार को दी यह तो एक रहस्य है, किंतु बिम्बसार को मैने नदी तट के आम्र वन मे उनसे घुलघुल कर बाते करते अचानक देख लिया। तब से मै गुप्त रहता हुआ छाया के समान उसका पीछा करता रहा हूँ। तब से राजकुमार से कुछ लोग हर तीसरे-चौथे दिन मिलने आते है। आज तो मैने बिल्कुल

समीप से उनकी बातें सुनी। उसी वार्तालाप से मुझे यह पता चला कि यह व्यक्ति मगध का भूतपूर्व युवराज बिम्बसार है।

नन्दिश्री—क्यो, भूतपूर्व युवराज क्यो ?

सेठ जी—बात यह है कि इनके पिता महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने तिलकवती नाम की एक भील-कन्या से यह प्रतिज्ञा करके विवाह किया था कि उसके औरस पुत्र को ही वे अपना उत्तराधिकारी बनावेगे। बिम्बसार गुप्त रूप से सदा ही अपने पास पाच सौ सैनिक रखा करते थे। राजा ने उन सैनिकों के बहाने ही इन पर राजद्रोह का आरोप लगा कर इन्हे देशनिर्वासित कर दिया। जो लोग इनके पास यहा आकर छिप-छिप कर मिलने है वह उनके उन्ही पाच सौ सैनिको मे से है। वह इन्हे मगध राज्य के समाचार नियमित रूप से देते रहते हैं।

नन्दिश्री—अच्छा ! इनके सुन्दर मुख के पीछे कभी-कभी दिखलाई देनेवाली चिंतित मुद्रा का अर्थ मेरी समझ मे अब आया।

सेठ जी—किंतु बेटी ! यदि इस समय यह तेरे साथ विवाह कर ले तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।

नन्दिश्री—(लजा कर) कुछ अनुचित तो नही है।

सेठ जी—तू उसके स्वभाव से परिचित तो हो गई है न ? इस सम्बन्ध का कुछ बुरा परिणाम तो नही निकलेगा ?

नन्दिश्री—नही, पिता जी, ऐसी आशका तो मुझे नही है।

सेठ जी—अच्छा मैं इस सम्बन्ध मे राजकुमार के विचार जानने को उनके कमरे मे अभी जाता हूँ।

इतना कह कर सेठ जी ने राजकुमार के कमरे के बाहिर जाकर धीरे से आवाज दी।

सेठ जी—क्या राजकुमार सो गए ?

राजकुमार—नही, अभी तो जग रहा हूँ। आइये।

सेठ जी राजकुमार के बुलाने पर अंदर चले गए और उनकी चारपाई के

पास बिछे एक मूढे पर बैठकर उनके साथ बाते करने लगे ।

सेठ जी—राजकुमार ! यद्यपि आपने अब तक मुझ से अपना परिचय छिपाया, किंतु मुझे आज आपका वास्तविक परिचय मिल गया । मुझे यह जान कर अत्यत प्रसन्नता हुई कि आप मगध के निर्वासित राजकुमार बिम्बसार है ।

राजकुमार—अच्छा, आपको मेरा असली परिचय मिल गया ! तब तो मुझे शीघ्र ही यहा से आगे चल देना चाहिये, क्योकि मेरा परिचय आप पर प्रकट हुआ है तो औरो पर भी यहा प्रकट हो जावेगा ।

सेठ जी—नही राजकुमार, मुझ से इस परिचय का दूसरे को पता नही चल सकता । आप यहा निश्चिन्त होकर रहे । मै आपके कार्य मे सब प्रकार से सहायता दूगा । अच्छा, क्या मै आपसे आपके परिवार के सम्बध मे कुछ और प्रश्न कर सकता हूँ ?

राजकुमार—हा, अब तो आपके प्रश्नो का उत्तर देने मे मुझे कोई आपत्ति नही होनी चाहिये ।

सेठ जी—मै यह जानना चाहता हूँ कि क्या आपका अभी तक कोई विवाह भी हुआ है ।

राजकुमार—मेरा विवाह तो अभी तक नही हुआ किन्तु देश-निर्वासित होने से पूर्व मेरा वाग्दान कोशल देश की राजकुमारी महाकोशल की कन्या कोशलदेवी के साथ हो चुका है । किन्तु राजाओ तथा राजकुमारो को तो कई-कई बार राजनीतिक विवाह भी अपनी इच्छा के विरुद्ध करने पडते है ।

सेठ जी—वह किस प्रकार राजकुमार !

राजकुमार—मान लो किसी देश के साथ हमारा युद्ध होने की सम्भावना है और दोनो पक्ष मे से किसी के पास उसकी अपनी कुमारी पुत्री है तो सधि होने पर दूसरे पक्ष को उस राजकुमारी के साथ विवाह करके सधि की प्रायः गारटी देनी होती है ।

सेठ जी—तब तो राजकुमारो को अनिवार्य रूप से अनेक विवाह करने पडते है ।

राजकुमार—मेरा यही अभिप्राय है ।

सेठ जी—किन्तु मै तो आपका विवाह नन्दिश्री के साथ करना चाहता था।

राजकुमार—आपकी पुत्री कन्या रत्न है। वह विदुषी है, बुद्धिमती है, सुन्दरी है और गृहकार्य मे निपुण है। अस्तु, यदि उसकी भी इसमे सहमति हो तो मै इस प्रस्ताव पर सहानभूतिपूर्वक विचार करूँगा।

सेठ जी—उसकी अनुमति लेकर ही तो मैने आपसे यह प्रस्ताव किया है।

राजकुमार—उसकी सहमति है तो पिता जी, मै भी इस प्रस्ताव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूँ। किन्तु इसमे मेरी एक शर्त होगी।

सेठ जी—कहिये आपकी वह शर्त क्या है ?

राजकुमार—मेरी शर्त यह है कि विवाह बिल्कुल बिना आडम्बर के किया जावे, जिससे इस वेणपद्म नगर के बाहिर उसका समाचार न जावे और न विवाह के अवसर पर मेरा यथार्थ परिचय ही दिया जावे।

सेठ जी—मुझे आपकी यह शर्त पूर्णतया स्वीकार है। किन्तु उसके साथ एक शर्त मेरी भी है।

राजकुमार—वह क्या पिता जी ?

सेठ जी—वह यह कि विवाह के बाद आप मेरे यहाँ से तब तक घर छोड कर न जावे, जब तक आपके मगध की राजगद्दी पर बैठने की स्पष्ट सम्भावना न हो।

राजकुमार—तो इसका यह अर्थ हुआ कि तब तक मुझको गृह-जामाता बन कर रहना होगा ?

सेठ जी—तो इसमे बुराई ही क्या है ? हम सब लोग आपकी सब प्रकार तन, मन, धन से सहायता करेगे। आपको तो अपने भावी सगठन के लिये एक केन्द्र बनाना ही होगा। फिर वह मेरा ही घर क्यो न हो ?

राजकुमार—अच्छा, आपका यह विचार है ?

सेठ जी—निश्चय से।

राजकुमार—अच्छा, मुझे आपकी सब बाते स्वीकार है। आप विवाह की तयारी करे।

१५

पुत्र लाभ

नन्दिश्री के साथ विवाह कर राजकुमार बिम्बसार उसी के घर सुख से रहने लगे। नन्दिश्री अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी। अतएव राजकुमार को सेठ जी पुत्र से भी अधिक प्यार करते थे। इस विवाह का एक परिणाम यह हुआ कि विवाह से पूर्व जहा राजकुमार अपने राजगृह के सेवको से नगर के बाहिर गुप्त रूप से मिला करते थे, वहा अब वह उनसे अपने घर मे ही स्वच्छन्दतापूर्वक मिलने लगे। वह मगध के युवराज थे और अपने सभी भाइयों मे सभी से सब प्रकार से अधिक योग्य थे, फिर भी जो उनका अधिकार छीन कर उन्हे देशनिर्वासित किया गया था, उसका उनके मन मे ऐसा भारी शोक था कि वह उसे एक क्षण के लिये भी नही भूलते थे। यद्यपि आजकल उनका समय नन्दिश्री के साथ आनन्दपूर्वक व्यतीत होता था, किन्तु सुख भोगते हुए भी एक अज्ञात वेदना कभी-कभी उनके मुख पर प्रकट हो जाया करती थी। इन्ही दिनो नन्दिश्री का गर्भ रहा। इस शुभ समाचार से सेठ जी फूले न समाये, किन्तु राजकुमार को इस समाचार से भी अधिक प्रसन्नता न हुई। अन्त मे एक दिन नन्दिश्री ने अवसर देखकर उनसे कहा—

"आर्य पुत्र! मै प्राय आपके अन्दर एक अज्ञात वेदना-सी देखती रहती हूँ, जो आपके हृदय मे इतनी गहराई तक बैठी हुई है कि बडे से बडे सुख-भोग भी उसको भुलाने मे अभी तक असमर्थ रहे है।

बिम्बसार—प्रिये, तुम उसकी कोई चिन्ता न करो। मै बिल्कुल ठीक हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि आनन्दोपभोग करते-करते भी कुछ न कुछ सोचने लग जाया करता हूँ।

नन्दिश्री—प्राणनाथ, मै आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। आप मुझे इस प्रकार की बातो से नही टाल सकते। मै जानती हूँ कि आपको अपना राज्य छिनने

का दु ख है, किन्तु उसको पुन प्राप्त करने का उपाय करना चाहिये। उसके लिये चिन्ता करके शरीर को क्यो क्लेश पहुँचाया जावे।

बिम्बसार—तुम सत्य कहती हो प्राणप्रिये ! मेरे हृदय मे चिन्ता नही, वरन् वेदना है, जिसको मैं किसी समय भी अपने हृदय से नही भुला सकता।

नन्दिश्री—तो उसको मुझे भी बतलाइये प्राणनाथ ! यह नियम है कि हृदय के दु ख को प्रकाशित कर देने से उसका वेग कुछ हल्का हो जाता है। फिर मै तो आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। आपके सुख-दु ख को आधा बाट लेना मेरा अधिकार एव धर्म है।

बिम्बसार—मै तुमसे छिपाना नही चाहता, केवल यही सोचता हूँ कि मै तो दु खी हूँ ही, फिर उसको सुनाकर तुमको भी क्यो दु खी करूँ।

नन्दिश्री—तो इसका यह अभिप्राय हुआ स्वामी, कि आप मुझे मेरे अधिकार से वचित करते है।

बिम्बसार—नही प्रिये, ऐसा तुम्हे नही समझना चाहिये।

नन्दिश्री—ऐसा तभी तो नही समझूगी जब आप अपना हृदय खोल कर मेरे सामने रखेगे।

बिम्बसार—अच्छा, तुम्हे आग्रह है तो लो सुनो।

नन्दिश्री—हा, भगवन् सुनाइये। मै उसे सुनने को अत्यधिक उत्सुक हूँ।

बिम्बसार—बात यह है प्रिये ! कि मुझे मेरे पिता ने पहिले से ही युवराज बना दिया था। इससे न केवल मुझे राज्य मिलने की पूर्ण आशा हो गई थी, वरन् मेरे सभी भाइयो और नगरनिवासियो तक की उसमें पूर्ण सहमति थी। किन्तु एक भील-कन्या तिलकवती से विवाह करते समय पिता यह वचन दे बैठे कि राज्य उसी के औरस पुत्र को दिया जावेगा। यदि पिता मुझ से यह स्पष्ट कह देते तब तो मै तिलकवती के पुत्र के पक्ष मे अपने राज्याधिकार का उसी प्रकार त्याग कर देता, जिस प्रकार राजा शतनु के पुत्र देवव्रत (भीष्म पितामह) ने किया था, किन्तु उन्होने यह न कह कर मुझे झूठा आरोप लगा कर घर से निकाल दिया।

नन्दिश्री—झूठा आरोप क्यो लगाया गया प्राणनाथ !

बिम्बसार—जब पिता ने देखा कि अब राज्य-परिवर्तन करना ही पडेगा तो उन्होने हम पाच सौ भाइयो की राज्य-प्राप्ति के लिये तीन परीक्षाएँ नियत की। यद्यपि मै युवराज था, अतएव राज्य प्राप्ति के लिये किसी और परीक्षा की आवश्यकता नही थी, फिर भी मैने उन परीक्षाओ मे गम्भीरता से भाग लिया। उन तीनो ही परीक्षाओ मे मै सर्वप्रथम आया।

नन्दिश्री—वह परीक्षाएँ क्या थी भगवन् ?

बिम्बसार—प्रथम परीक्षा मे हम सब राजकुमारो को एक बडे भारी दालान मे एक साथ भोजन करने के लिये बिठला कर हम को खीर का भोजन परोसा गया। फिर हमारे ऊपर एक भयकर शिकारी कुत्ता छोडा गया। वह देखना चाहते थे कि ऐसी विषम परिस्थिति मे कौन सा राजकुमार असीम धैर्य का परिचय देकर पेट भर कर भोजन करके उठे।

नन्दिश्री—तो उस कुत्ते को देखकर तो सभी राजकुमारो मे भग्गी पड गई होगी !

बिम्बसार—अजी कुछ-न पूछो। वह दृश्य देखने ही योग्य था। रसोई के प्रधान द्वार से कुत्ता भौ भौ करता हुआ आ रहा था। उधर से तो भागना सभव न था। अतएव जिस राजकुमार को जो मार्ग मिला वह उसी से भाग खडा हुआ। कुछ तो खिडकियो के मार्ग से भागे। उस समय का दृश्य वास्तव मे देखने ही योग्य था। उनके चेहरे पर भय के लक्षण थे। घबराहट के मारे उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये थे। कई एक के तो खिडकी से कूदने मे चोट भी लग गई।

नन्दिश्री—क्या आप उस समय बिल्कुल नही घबराए ?

बिम्बसार—मै क्यो घबराता। मैने मनुष्य, पक्षी तथा पशुओ सभी के स्वभाव का अध्ययन जो किया है। मै जानता था कि कुत्ता कितना ही भयकर होने पर भी भोजन पर प्राण देता है और वह निश्चय से अपने मार्ग मे पडने-वाली प्रथम थाली मे मुह मार कर उसकी खीर को खाना आरम्भ कर देगा। मै उनके भागने के दृश्य का आनन्द लेता हुआ बिल्कुल शान्ति से बैठा हुआ भोजन करता रहा। कुत्ते ने आते ही प्रथम थाली की खीर को खाना

आरम्भ किया। जब तक उस थाली की खीर को उसने पूर्णतया समाप्त न कर लिया, उसने दूसरी थाली की ओर को मुख भी नही किया। प्रथम थाली को समाप्त कर वह दूसरी थाली की ओर बढा, दूसरी थाली समाप्त होने पर एक तीसरी थाली मैंने उसके सामने फेक दी। यह देख कर उसने कृतज्ञता-स्वरूप मुझे देखकर अपनी पूछ हिला दी। फिर मैंने दो-तीन थालिया उसकी ओर और भी फेकी। यहा तक कि वह और मै दोनो ही पेट भर कर रसोई घर से साथ-साथ निकले। वह पूछ हिलाता हुआ मेरे पीछे-पीछे आ रहा था।

नन्दिश्री—दूसरी परीक्षा क्या थी ?

बिम्बसार—वह बुद्धि की सबसे कठिन परीक्षा थी। पिता जी ने हम सब भाइयो को एक-एक कोरा घडा देकर उसे ओस से भर कर लाने को कहा।

नन्दिश्री—अरे, कही ओस से भी घडे भरा करते है ?

बिम्बसार—यही तो तमाशा था। सभी राजकुमार अपने-अपने घडो को लेकर जगल मे पहुँचे और ओस की एक-एक बूद को घास से उठा कर घड़े मे डालते, किन्तु वह बूद घडे मे जाते ही सूख जाती।

नन्दिश्री—वह तो सूख ही जाती। इससे तो वह घडे को वैसे ही लाकर वापिस कर देते तो अच्छा था। आपने उस अवसर पर क्या किया ?

बिम्बसार—मैंने उस घडे को अपने एक सेवक से उठवा कर प्रथम तो उसको जल मे कुछ देर डुबोये रखा, जिससे कोरेपन के कारण जितना जल उसे अपने अन्दर सोखना हो उतना सोख ले। घडे के साथ जगल मे मै एक सूती चादर भी ले गया था। उस सूती चादर को घास पर बिछाने से वह ऐसी भीग जाती थी जैसे उसे जल मे भिगोया गया हो। फिर मै उस चादर को अपने घडे मे निचुडवा लता था। चालीस-पचास बार इस प्रकार करने पर मैंने उस घडे को ओस से भर लिया।

नन्दिश्री—यह तो वास्तव मे ही बुद्धि का चमत्कार था। आपकी तीसरी परीक्षा क्या थी ?

बिम्बसार—राजमहल मे आग लगा कर यह देखना था कि कौन सा राजकुमार छत्र, चमर, सिहासन आदि राज्य-चिन्हो को बिना बतलाए हुए

आग मे से बचा लाता है। सो उनको भी मैने बचाया। मै अपने दो सेवको को लेकर आग मे घुस गया और इन वस्तुओ को बाहिर सुरक्षित निकाल लाया।

नन्दिश्री—किन्तु आपको यह बात सूझी किस प्रकार कि इन्ही वस्तुओ को आग से निकालना चाहिये ?

बिम्बसार—उसके दो कारण थे। एक तो यह कि मै जानता था कि राजा मुझी को बनना है, दूसरे, राज्य-चिन्हो की रक्षा करना सबसे बडी राज-भक्ति है।

नन्दिश्री—तो इन तीनो परीक्षाओ मे सर्वप्रथम आने का आपको क्या पारितोषिक मिला ?

बिम्बसार—यही तो मेरे दु ख का वास्तविक कारण है। किसी को तो परीक्षा पास करने का पुरस्कार मिलता है, किन्तु मुझे परीक्षा पास करने का दण्ड ग्रहण करना पडा।

नन्दिश्री—वह किस प्रकार ?

बिम्बसार—पिता ने मुझ पर यह कह कर राजद्रोह करने का दोष लगाया कि मै अपने पास पॉच सौ सैनिक गुप्त रूप से रखता हूँ। यद्यपि मेरे वह पाच सौ सैनिक गुप्त नही थे, फिर भी यह दोष लगा कर मुझे देशनिकाला दे दिया गया।

नन्दिश्री—अच्छा तो आपके हृदय मे यह वेदना है कि आपको बिना अपराध अधिकार-वचित करके दण्ड क्यो दिया गया।

बिम्बसार—हा, अब तुम मेरे हृदय की बात समझी। राज्य तो मै ले ही लू गा, किन्तु इस दु ख का ध्यान मुझे बराबर बना रहता है।

नन्दिश्री—राज्य आप किस प्रकार ले लेगे ?

बिम्बसार—मेरा भाई चिलाती स्वभाव का क्रूर है। वह प्रजा पर बहुत अत्याचार कर रहा है। इधर मेरे गुप्तचर तथा मित्र प्रजा मे उसके दुर्गुणो तथा मेरे गुणो का बराबर प्रचार कर रहे है। वह समय दूर नही है जब मै गिरिव्रज पर सैनिक अभियान करके राजसिहासन पर अधिकार कर लू गा।

नन्दिश्री—तो उसके लिये तो सेना चाहिये।

बिम्बसार—सेना तथा सेनापति लोग भी उसके विरोधी हो रहे हैं। मैं ऐसा प्रबन्ध कर रहा हूँ कि राज्य-क्राति के समय वह सब मेरी सहायता करें; अन्यथा मगध की अनन्त सैनिक सख्या का मुकाबला सैनिक बल से कौन कर सकता है ? उनको तो नीति द्वारा ही वश मे किया जा सकता है।

नन्दिश्री इस प्रकार वार्तालाप कर ही रही थी कि उसके पेट में जोर से दर्द उठा। तब बिम्बसार बोला—

"प्रिये ! यह तो प्रसव वेदना जान पडती है ?"

नन्दिश्री ने लजा कर सम्मतिसूचक सिर हिलाया। बिम्बसार यह जानकर कमरे से बाहिर चले गये। उनके कमरे से निकलते ही लम्बनखी ने नन्दिश्री की दशा को देखा तो वह सब कुछ समझ गई। उसने तुरन्त दाई को बुला कर नन्दिश्री को सौरिगृह मे पहुँचा दिया। थोडी देर में ही सारा घर एक सुन्दर बालक के रुदन के उल्लास से भर गया।

सेठ जी दौहित्र के जन्म का समाचार पाकर फूले न समाये। उन्होंने अपने कुल पुरोहित को बुलाकर तुरन्त ही बालक का जातकर्म सस्कार किया। उन्होने इस प्रसन्नता मे अपना खजाना खोल दिया और जी भर दान किया।

ग्यारहवे दिन बालक का नामकरण सस्कार करके उसका नाम अभयकुमार रखा गया। अब वह बालक द्वितीया के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढने लगा। यह शीघ्र ही पता चल गया कि बालक असाधारण प्रतिभावाला है। नन्दिश्री स्वय शिक्षिता तथा सस्कारी महिला थी। उसने पालने में ही अभयकुमार को उत्तम सस्कार देने आरम्भ किये। अभयकुमार जब तीन वर्ष का हुआ तो उसके बालसुलभ आग्रह पर उसको अक्षरारभ कराया गया। समझा तो यह गया था कि उसका अक्षराभ्यास केवल एक बालक्रीडा है और वह समय पाकर आप छूट जावेगा, किंतु उसने तो उसे आरम्भ करके छोडने का नाम ही नही लिया। क्रमश वह भली प्रकार लिखना-पढना सीख गया।

अब बिम्बसार उसको शस्त्र-सचालन तथा नीति-शास्त्र की शिक्षा भी देने लगे। सात वर्ष की आयु मे अभयकुमार शस्त्र तथा शास्त्र सबन्धी सभी विद्याओ मे कुशल बन गया।

१६

चिलाती के अत्याचार

"क्यों शालिभद्र ! आज इतने उदास क्यो हो ?"

"क्या कल के राज्यसभा के दृश्य को देखकर भी तुम प्रश्न करते हो, गुणभद्र !"

शालिभद्र—भाई सम्राट् सम्राट् है। उनके गुण-दोषो की आलोचना करना अपना कार्य नही है।

गुण—तुम भी शालिभद्र निरे बुद्धू ही रहे। क्या तुम अपने गुरु जी आचार्य कल्पक के अपमान को इस प्रकार सहन कर सकते हो ?

शालिभद्र—गुरु जी का अपमान करनेवाले का तो मैं तुरन्त ही गला काट लू गा, किन्तु सम्राट् का तो हम कुछ भी नही बिगाड सकते।

गुणभद्र—यह सोचना भी तुम्हारी भूल है। एक छोटी सी चीटी अपने से सहस्रो गुने हाथी को जान से मार देती है। धूल पर जब पैर रखा जाता है तो वह भी एक बार उडकर पैर रखने वाले के सिर पर सवार हो जाती है। ससार मे छोटे, बडे सब परिस्थितिवश ही बने हुए है। परिस्थिति बदलने पर छोटा बडा हो सकता है और बडा छोटा हो सकता है। जो राजा अपने गुरु-तुल्य महामात्य का भरी राजसभा मे अपमान कर सकता है वह निश्चय से विनाश के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अब तुम सम्राट् चिलाती के राज्य की समाप्ति ही समझो।

शालिभद्र—क्या गुरु जी के भी वही विचार होगे जो तुम्हारे है।

तभी वहा पर एक तीसरे युवक ने आकर कहा—

"उनके विचार यदि ऐसे नही होगे तो उनको अपने विचार बदलने को विवश होना पडेगा और यदि वे अपने यह विचार नही बदलेगे तो भी उनका यह पुत्र वर्षकार अपने पिता का इस प्रकार भरी सभा मे अपमान सहन करने को तैयार नही है। चिलाती के अत्याचार अब सीमा को अतिक्रमण कर चुके है। वह बडो का मान नहीं करता और उनसे अपमानपूर्ण व्यवहार करता है।

गुणभद्र—इतना ही नही, उसके आचरण भी अत्यन्त निन्दित है। किसी

सुन्दरी कन्या को देखकर उसको जबर्दस्ती अपने महल मे बुलवा लना उसके लिये सामान्य बात है। न्यायासन पर बैठ कर भी वह केवल स्वार्थ बुद्धि से न्याय करता है। उसके पास कचन तथा कामिनी की घूस पहुँचाना कुछ अधिक कठिन नही है।

शालिभद्र—अरे हा, तुमने अच्छी याद दिलाई। एक दिन जो मै राजमाता तिलकवती के यहा नित्य पाठ कर रहा था तो राज्यमाता सम्राट् से अपने आचरण सुधारने का अनुरोध कर रही थी, किन्तु उन्होने अपनी माता की भी अवज्ञा की थी।

वर्षकार—उसकी अविनय यहा तक बढ जावेगी इसका मुझे पता नही था। आप लोग मेरे घनिष्ठ मित्र है, इसीसे मै आपको अपनी योजना मे सम्मिलित करने को तैयार हूँ। बोलो, आप दोनो मेरा सब प्रकार से साथ दोगे या नही ?

गुणभद्र—मै तो भाई आज्ञा पालन मे अपने प्राणो का भी उत्सर्ग कर दूगा।

शालिभद्र—मेरी तो इन बातो से ऑखे खुल गई। मै भी तुम्हारा सब प्रकार से साथ देने को तथा तुम्हारी आज्ञा पालन करने को तैयार हूँ, फिर भले ही इस कार्य मे प्राणो का सकट क्यो न हो।

वर्षकार—अपने निश्चय का साक्षी हम जल तथा अग्नि को बनावे।

इस पर शालिभद्र तथा गुणभद्र ने हाथ मे जल लेकर तथा हवनकुण्ड का अग्नि की साक्षी करके यह शपथ ली—

"हम (शालिभद्र तथा गुणभद्र) दोनो इस बात की प्रतिज्ञा करते है कि मगध की राज्य-क्रान्ति के लिये वयस्य वर्षकार की आज्ञा का सब प्रकार से पालन करेगे, भले ही उसमे प्राणो का भी सकट क्यो न हो और उनकी प्रत्येक बात को गुप्त रखेगे।"

इसके पश्चात् उन तीनो ने एक दूसरे का आलिगन किया। तब वर्षकार बोला,—"अच्छा मित्रो, तो अव मै आप दोनो को अपनी राज्य-क्रान्ति की योजना बतलाता हूँ जिसके अनुसार आप दोनो को कार्य करना है।"

दोनों—हम सुनने को सहर्ष प्रस्तुत है।

वर्षकार—उसके लिये मैने तीन चार निश्चय किये है। प्रथम तुमको उन

पर विचार करना है।

प्रथम, आचार्य कल्पक के इस गिरिव्रज विश्व-विद्यालय को मगध की भावी राज्यक्रान्ति का गुप्त केन्द्र बनाया जावे।

द्वितीय, यह कि चिलाती को पदच्युत किया जावे और

तृतीय, यह कि उसके वास्तविक अधिकारी श्रेणिक बिम्बसार को बुला कर उसे मगध के शासन की बागडोर सौप दी जावे। क्या आप दोनो को यह प्रस्ताव स्वीकार है ?

दोनों—इससे अच्छा दूसरा निश्चय नही किया जा सकता।

वर्षकार—तो मित्रो, हम तीनो को अपने-अपने कार्य का विभाजन कर लना चाहिये।

गुणभद्र—यही मेरी भी इच्छा है।

वर्षकार—तुम मित्र, सेनाओ मे प्रचार का कार्य अपने ऊपर लो। प्रत्यक सैनिक के मन मे चिलाती के अत्याचार का नक्शा जम जाना चाहिये। सैनिक अधिकारियो के मन मे भी यह धारणा घर कर जानी चाहिये कि वह अन्याय का पोषण करने के लिये नौकरी कर रहे है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना कि इस सारे प्रचार मे तुम्हारे नाम का किसी को पता न लँग।

गुणभद्र—इस बात से आप निश्चित रहे मि॰ !

वर्षकार—और तुमको शालिभद्र मै राजमहल के प्रचार का कार्य देता हूँ। तुम वहा पूजा-पाठ करने दैनिक जाते हो। अतएव तुम अन्त पुर के प्रत्येक व्यक्ति से सुगमता से मिल सकते हो। तुम को भी स्वय अलग रहते हुए इसी प्रकार का प्रचार अन्त.पुर मे करना है।

शालिभद्र—मै इस कार्य को सुगमता से कर सकू गा मित्र।

वर्षकार—यदि आप दोनो इन कार्यो को सभाल लेगे तो शेष राज्याधिकारियो के मन पर मै सुगमता से अधिकार कर लूगा। इस बात का ध्यान रहे कि पिता जी के कान मे अपनी योजना की भनक भी न पडने पावे। उन से तो मै समय पर पूर्ण कार्य स्वय ही सहमत कर के लूगा।

गुणभद्र—अच्छा, वह गुरु जी आ रहे है। इस वार्तालाप को अभी यही समाप्त कर दिया जावे।

१७

गिरिव्रज की पुकार

इस प्रकार चिलाती के अत्याचार ज्यो-ज्यों उग्र से उग्रतर होते जाते थे त्यो-त्यो गिरिव्रज निवासियो का असन्तोष भी अधिकाधिक बढता जाता था। सेना मे प्रत्येक व्यक्ति चिलाती से घृणा करने लगा। सैनिक तथा सेनाधिकारी सब यह मना रहे थे कि कब श्रेणिक बिम्बसार आवें और वह उसे अपना सम्राट् स्वीकार करे। इस निश्चय के लिये वह सामूहिक रूप से गुणभद्र तथा वर्षकार के सम्मुख शपथबद्ध हो चुके थे।

राजमहल मे भी चिलाती के लिये कोमल भावनाओ का अभाव था। वहां कोई रानी ऐसी नही थी, जिसे उसके हाथो अपमानित न होना पडा हो। अतएव वहा भी सब की इच्छा यही थी कि यह आफत उनके सिर से किसी प्रकार टले। किन्तु राजमहल मे श्रेणिक बिम्बसार के पक्ष मे कुछ भी प्रचार नही किया गया, क्योकि वहा चिलाती की माता से यह आशा नही की जा सकती थी कि वह अपने पुत्र को गद्दी से उतारने मे किसी प्रकार का सहयोग देगी।

नगर-निवासियो मे इस आन्दोलन का निश्चय ही सेना से भी अधिक प्रचार हुआ। उन पर तो चिलाती के अत्याचार सीमा को लाघ चुके थे। नगर के बडे-बडे श्रेष्ठी चिलाती को सिहासन-च्युत करने के लिये बडी-बडी धन-राशि भी खर्चने को तैयार थे।

इस प्रकार सब ओर से आन्दोलन को सफलता प्राप्त होने पर आन्दोलकों की एक बैठक गिरिव्रज विश्व-विद्यालय मे की गई। उसमे निश्चित किया गया कि पाच व्यक्तियो का एक प्रतिनिधि मण्डल वेणपद्म नगर जाकर राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार को गिरिव्रज आने का निमन्त्रण दे और उनके आने पर उनको साम्राज्य का शासन सौप दिया जावे। महामात्य कल्पक तथा सेनापति

भद्रसेन भी चिलाती के विरुद्ध हो चुके थे। अतएव इस बैठक मे उन्होने भी भाग लिया। बिम्बसार के पास भेजने के लिये निम्नलिखित पाच व्यक्तियो का इस बैठक मे निर्वाचन किया गया—

१. महामात्य कल्पर्क,
२ सेनापति भद्रसेन,
३ ब्रह्मचारी वर्षकार,
४ नगरसेठ धनञ्जय तथा
५ नगराध्यक्ष कुसुमकान्त।

ये पाचो व्यक्ति अपने-अपने रथो पर बैठकर भिन्न-भिन्न मार्ग से एक ही दिन गिरिव्रज से निकले। आगे चल कर नन्दिग्राम के बाद वे पाचो एक साथ हो गए। उन्होने नदी को पार करके वेणपद्म नगर मे प्रवेश किया।

उधर इस सारे आन्दोलन का रत्ती-रत्ती भर समाचार राजकुमार को भी मिलता रहता था। वे जानते थे कि उनको गिरिव्रज पर निकट भविष्य मे ही चढाई करनी होगी। अतएव उन्होने अपने गुप्तचरो द्वारा अपने अग-रक्षक पाच सौ सैनिको को अपने पास बुलवा लिया था। गिरिव्रज के प्रतिनिधि-मण्डल ने नन्दिश्री के द्वार को सैनिक प्रहरियो से रक्षित पाकर रक्षको से अनुरोध किया कि वह गिरिव्रज से एक प्रतिनिधि-मण्डल के आने का समाचार राजकुमार के पास पहुँचा दे।

राजकुमार ने जो उनके आने का समाचार सुना तो उनको बडे आदर से अन्दर बुलवाया। मार्ग तो लम्बा था ही, अतएव सेठ जी ने उनका अतिथिसत्कार भी किया। उनके रथो को भी यथास्थान ठहरा दिया। मार्गश्रम दूर होने पर राजकुमार ने उन पाचो व्यक्तियो के साथ अपने कमरे मे भेट की।

राजकुमार का अभिवादन करने के बाद उनमे इस प्रकार वार्तालाप हुआ ?

सेठ धनञ्जय—राजकुमार! आपके आने के बाद मगध राज्य अनाथ हो गया। चिलाती उस पर इतनी क्रूरता से शासन कर रहा है कि नगर मे कोई व्यक्ति अपने सम्मान, धन तथा जीवन को सुरक्षित नही समझता। अब आपकी सहायता के बिना हमारा काम नही चल सकता।

राजकुमार—तो आप मुझे आज्ञा दे कि मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

कल्पक—राजकुमार ! नगर का पूर्णतया सगठन कर लिया गया है। आप अविलम्ब गिरिव्रज पर चढाई करके वहा के शासन को हस्तगत कर लीजिये।

राजकुमार—किन्तु मेरे पास तो पाच सौ सैनिक ही है। इतने थोड़े सैनिको को लेकर मै चिलाती पर किस प्रकार चढाई कर दू ?

भद्रसेन—सेना की चिन्ता आप न करे, राजकुमार !

राजकुमार—उसकी चिन्ता क्यो न की जावे ?

भद्रसेन—सेना का एक-एक व्यक्ति यह शपथ ले चुका है कि वह राजकुमार बिम्बसार के विरुद्ध शस्त्र उठाना तो दूर, उनके आते ही उनकी आधीनता स्वीकार कर लेगा।

कुसुमकान्त—नागरिक तथा शासन-अधिकारी भी इसी प्रकार की शपथ ले चुके है।

वर्षकार—राजकुमार ! आपके पास तो पाच सौ सैनिक है। यदि आपके पास इतने सैनिक भी न होते तब भी आपको गिरिव्रज का शासन हस्तगत करने मे किसी कठिनाई का सामना करना न पडता। आप तो केवल यह 'हा' भर कर ले कि आप वहा आक्रामक के रूप मे आकर शासनभार ग्रहण करने के लिये तैयार है। आप यह निश्चय रखे कि आपको रक्त की एक बूद बहाए बिना ही मगध का राज-सिहासन मिल जावेगा।

राजकुमार—आप लोग स्वय ही सोच लीजिये। वैसे मगध का समस्त राजकुल नाम को तो आपका शासक है, किन्तु व्यवहार मे आपका सेवक है। मुझे आपकी सेवा करने मे कोई आपत्ति नही है, किन्तु आप मेरी अल्पशक्ति, अपनी सगठन-कुशलता तथा चिलाती की सामर्थ्य तीनो की तुलना करके यह देख ले कि क्या चढाई करने का यही सबसे अधिक उपयुक्त समय है।

वर्षकार—निश्चय से राजकुमार ! चढाई करने के लिये इससे अधिक उपयुक्त अवसर आपको नही मिल सकता।

राजकुमार—यदि आप सबकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे भी आपकी बात स्वीकार है।

इस पर सबके सब हर्ष से एक साथ बोल पडे —

'सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय !'

तब वर्षकार बोला—

"अच्छा, अब हम जाते है और जाकर आपके उपयुक्त स्वागत का प्रबन्ध करते है। आप अपने सैनिको को लेकर आज रात को ही गिरिव्रज के लिये इस प्रकार प्रस्थान कर दे कि दिन निकलने से पूर्व गिरिव्रज मे प्रवेश करे। आपको नगर के सभी द्वार खुले मिलेगे। आप जाते ही नगर, राजसभा तथा राजमहल पर अधिकार कर ले। चिलाती आपके आते ही भागने का यत्न कर सकता है। वह यदि भागे तो उसे गिरफ्तार करने का यत्न न किया जावे। क्योकि हमारी योजना उसके भागने पर और भी अच्छी तरह सफल होगी।"

राजकुमार—मेरा विचार भी चिलाती को गिरफ्तार करने का नही है। उसको तो तभी गिरफ्तार करना चाहिये जब उसका नाना उसको मगध के विरुद्ध सहायता देता हुआ पाया जावे।

भद्रसेन—जी हा, हम सबका भी ऐसा ही विचार है।

कल्पक—अच्छा, अब हमको गिरिव्रज जाने की अनुमति दी जावे।

राजकुमार—तो आप लोग मेरा अभिवादन स्वीकार करे।

सब—सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय हो!

इसके पश्चात् वे पाचो अपने-अपने रथो पर बैठकर गिरिव्रज को चले गए।

१८

गिरिव्रज पर आक्रमण

गिरिव्रज के प्रतिनिधि-मण्डल के चले जाने के बाद राजकुसार ने अपनी अग-रक्षक सेना को आज्ञा दी कि चलने की तैयारी इस प्रकार की जावे कि पहर भर रात बीतने पर गिरिव्रज को प्रस्थान कर दिया जावे। अभयकुमार इस समय सात वर्ष का हो चुका था। उन्होने उसको यह आदेश दिया कि वह माता सहित अभी वही ठहरे और कुछ दिन बाद गिरिव्रज आवे।

इस प्रकार पूर्ण प्रबन्ध करके राजकुमार ने पहर भर रात बीतने पर अपने पाच सौ सैनिको को लेकर गिरिव्रज के लिये प्रस्थान किया। उनके सैनिको मे इस समय बडा भारी उत्साह था। उन्होने राजकुमार के निर्वासन काल भर बडा कष्ट उठाया था। उनको आशा थी कि गिरिव्रज पर अधिकार होने पर उनको अच्छे से अच्छा जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलेगा। यद्यपि राजकुमार जानते थे कि गिरिव्रज पर अधिकार करते समय उनको विशेष कठिनाई न होगी, किन्तु उनके सैनिक यह निश्चय किए हुए थे कि वह अपने से दसगुनी सेना का मुकाबला करने मे भी पीछे नही हटेगे।

वह लोग नदी, खेतो तथा नन्दिग्राम का पीछे छोडते हुए पहर भर रात रहते गिरिव्रज के द्वार पर जा पहुँचे। वहा उन्होने द्वारपाल से द्वार खोलने को कहा, तो उसने पूर्व निश्चय के अनुसार तुरन्त फाटक खोल दिया। राजकुमार ने नगर मे प्रवेश करके सर्वप्रथम राज्यसभा तथा राजमहल पर अधिकार किया। नगर के सब फाटको पर उनके अपने विश्वासी रक्षक रखे गए। दिन निकलने से पूर्व उनका रक्त की एक भी बूद बहाए बिना सारे नगर पर अधिकार हो गया।

इस गडबड मे चिलाती की आख खुली तो उसने महल की सारी व्यवस्था का बदली हुई पाया। उसने तुरन्त एक दासी को बुलाकर उससे पूछा—

"यह गोलमाल कैसा हो रहा है ?"

"महाराज ! राजकुमार बिम्बसार ने आक्रमण करके सारे नगर पर अधिकार कर लिया ।"

"उसने अधिकार भी कर लिया और मैं सोता ही रह गया ।"

"ऐसा ही है महाराज !"

'राजमहल के प्रधान रक्षक को बुला ।"

"राजमहल तथा राज्यसभा पर भी उनका अधिकार हो गया है । अभी कुछ सैनिक आपको गिरफ्तार करने के सम्बन्ध मे आपस मे परामर्श कर रहे हैं ।"

"सेना ने उनका मुकाबला नही किया ।"

"राज्य की सारी सेना ने राजकुमार बिम्बसार की आधीनता स्वीकार कर ली, सम्राट् !"

"अरी, तो फिर मै सम्राट् कैसा ? तब तो यहा से तुरन्त भागना चाहिये, अन्यथा गिरफ्तार होकर कुत्तो की मौत मरना होगा ।"

तब तक द्वार पर कुछ लोगो के आने का शब्द हुआ । वे लोग जोर-जोर से चिल्ला रहे थे—'चिलाती को पकड कर फासी पर लटका दो' इत्यादि-इत्यादि ।

चिलाती ने जो यह सुना तो उसने शीघ्रता से भाग कर अपने वस्त्र लेकर गुप्त द्वार मे प्रवेश किया । वहा जाकर उसने प्रथम तो उस द्वार को अन्दर से बन्द किया और फिर अपने वस्त्र पहिन तथा शस्त्र लगा कर उसी गुप्त मार्ग से गिरिव्रज के बाहिर चला गया ।

इस समय प्रकाश अच्छी तरह फैल गया था और नगर-निवासी बाहिर नित्य-कर्म के लिये जा रहे थे । चार युवको की एक टोली भी उस समय शस्त्र बाधे नगर से बाहिर टहलने को जा रही थी । उनमे से एक बोला—

"यार, यह तो बडे आश्चर्य की बात रही । रात-रात मे नगर मे एक ऐसी जबर्दस्त राज्य-क्रान्ति हो गई कि राज्य-परिवर्तन हो गया और हम नागरिको को पता तक भी न चला ।"

दूसरा—आश्चर्य तो यह है कि हम चिलाती के राज्य मे सोये थे और

बिम्बसार के राज्य मे सोकर उठे।

तीसरा—किन्तु यह पता नही चला कि चिलाती का क्या हुआ ? वह मेरे सम्बन्धी की एक विधवा देवी का सतीत्व भग कर चुका है। मुझे यदि वह कही मिल जावे तो मै तो उसके शरीर की बोटी-बोटी काट दूँ।

चौथा—अरे भाई, नगर मे ऐसा कौन है, जिसको उसके हाथो कष्ट उठाना नहीं पडा। उससे तो सभी बदला लेने पर तुले हुए है।

पहला—भाई, चिलाती अभी तक पकडा तो गया नही। यदि वह पकडा जाता तो नगर मे शोर मच जाता। निश्चय ही वह गुप्त मार्ग के द्वारा गिरिव्रज से भागेगा।

तीसरा—तब तो भाई उसे तलाश करना चाहिये। क्या तुममे से किसी को किसी गुप्त मार्ग का पता है ?

दूसरा—अरे, पता तो नही, किन्तु यह सुना है कि एक गुप्त मार्ग कहीं यही मैदान मे आकर खुलता है।

चौथा—(एक ओर सकेत करके) अरे वह देखो, वह एक आदमी धीरे धीरे जमीन मे से निकल रहा है। कही वही तो चिलाती नही है ?

पहला—हा, भाई वही है। चलो, उसे पकडकर उसका काम तमाम कर दे।

उसके यह कहते ही वे चारो उसकी ओर को दौड पडे। उनमे से एक ने जाते ही तलवार का ऐसा हाथ मारा कि चिलाती का सिर धड से अलग हो गया। उसकी लाश को वही छोडकर वे चारो अपने खून के धब्बे साफ करके वहा से नगर मे लौट आए। यहा आने पर उन्होने यह समाचार नगर मे फैला दिया कि चिलाती का मृत शरीर नगर के बाहिर मैदान मे पडा हुआ है। महामात्य कल्पक ने इस सवाद को सुनकर उसकी लाश को मँगवाकर उसे सार्वजनिक प्रदर्शन के लिये नगर के मुख्य द्वार पर रखवा दिया। इस प्रकार मगध मे कुछ ही घटो मे एक ऐसी क्रान्ति हो गई, जैसी इतिहास मे बहुत कम सुनने मे आती है।

१९

राज्यारोहण

गिरिव्रज की राज्यक्राति के पूर्णतया सफल होने पर श्रेणिक बिम्बसार का राज्याभिषेक उसी दिन करने का निश्चय किया गया। इस कार्य के लिये राज्य-महल तथा राज्यसभा सभी को आनन-फानन में सजाया गया। उसमे सभी योग्य आसनो के लग जाने पर मगध के गिरिव्रज स्थित अनुगत राजा, क्षत्रप, माण्डलिक, गणपति, निगम, श्रेष्ठी, गृहपति, सामन्त, जानपद और पौर सभी एकत्रित हो गए। राज्यसभा का विशाल प्रागण ठसाठस भर गया और वहा तिल धरने को भी स्थान शेष न रहा।

अचानक रनवास की ओर का फाटक खुला और राजकुमार श्रेणिक-बिम्बसार राज्यसभा के योग्य भडकीले वस्त्र पहिने वहा से आते हुए दिखलाई दिये। उनके दाहिनी ओर महामात्य कल्पक, बाई ओर प्रधान सेनापति भद्रसेन तथा पीछे ब्रह्मचारी वर्षकार, शालिभद्र तथा गुणभद्र चल रहे थे। राजकुमार के आते ही जनता ने उच्चस्वर से

"राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार की जय"

बोल कर सारे सभा-भवन को अपने शब्द से गुजा दिया। इन लोगो के बैठ जाने पर महामात्य कल्पक ने खडे होकर कहा—

"राज-सभासद, राज्याधिकारी, ब्राह्मण, पौर तथा जानपद मेरे निवेदन को ध्यान पूर्वक सुने। यह राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार आज हमारे सौभाग्य-वश यहा उपस्थित है। चिलाती के अत्याचारो से जब सारा राज्य त्राहि-त्राहि कर रहा था तब आपके प्रतिनिधियो ने राजकुमार की सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना की कि वे चिलाती से मगध के राज्य-सिहासन को छीन ले। आप जानते है कि राज्य-सिहासन पर वास्तव मे इनका ही अधिकार होना चाहिये था। महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने प्रथम तो इनके अधिकार को मान-

फिर इन्हे युवराज बनाया, किन्तु बाद मे चिलाती की माता से वचनबद्ध होने के कारण इनको देश-निकाला दे दिया। इन महानुभाव का हृदय इतना विशाल है कि इन्होंने मगध के पिछले अपराध पर फिर भी ध्यान न देकर उसकी आर्त पुकार पर तुरन्त ध्यान दिया। इनकी सगठन-शक्ति तथा प्रजा-पालन मे तत्परता का यह ज्वलत प्रमाण है कि इन्होने रक्त की एक भी बूद बहाए बिना रातोरात मगध के शासन-तन्त्र पर अधिकार कर लिया। इन्होने यह पहिले ही निश्चय कर लिया था कि चिलाती को न तो जान से मारा जावे और न गिरफ्तार किया जावे, वरन् उसे भाग जाने का पूरा अवसर दिया जावे। किन्तु उसने अपने अत्याचारो से अपने अनेक शत्रु बना लिये थे। इसी-लिये जब चोर दरवाजे से निकल कर वह नगर के बाहिर मैदान में पहुँचा तो किसी ने उसकी गर्दन काट दी। इस समय उसका भी अन्त्येष्टि सस्कार किया जा रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार से अधिक योग्य मगध को दूसरा शासक नही मिल सकता। अस्तु, यदि आपकी सहमति हो तो इनको मगध का राजमुकुट पहिनाया जावे।"

महामात्य के इस कथन पर सब ओर से

"राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार की जय' का गगनभेदी शब्द हुआ। इस पर महामात्य कल्पक ने खडे होकर प्रश्न किया—

"यदि मेरे इस प्रस्ताव का कोई विरोधी हो तो वह अपना हाथ खड़ा कर दे।"

एक भी हाथ विरोध मे खडा न होने पर महामात्य ने उठकर फिर कहा—

"इस का अभिप्राय यह है कि आप सब सर्व-सम्मति से राजकुमार श्रेणिक को मगध समृाट् बनाना चाहते है। अतएव मै महर्षि मेधातिथि गौतम से प्रार्थना करता हूँ कि वे राज्याभिषेक की विधि को आरम्भ करें।"

महर्षि गौतम एक अत्यन्त वृद्ध तपस्वी थे। उनकी आयु कई सौ वर्ष की कही जाती थी। लोग कई पीढियो से उनको इसी आकार में देखते आते थे। वह खड़े होकर बोले—

की यह सभा आर्य वर्षकार की नियुक्ति को स्वीकार करे तो मुझे उनको कार्य-मुक्त करके आर्य वर्षकार को महामात्य पद देने मे कोई आपत्ति नही है।"

इस पर कल्पक बोले—

"मेरी इच्छा है कि मै शीघ्र ही सन्यास लेकर वन को चला जाऊँ, किन्तु जब तक मैं सन्यास नही लूगा तब तक सम्राट् के निमन्त्रण पर अथवा वर्षकार क सम्मति पूछने पर मै साम्राज्य सेवा क लिये सदा उपस्थित रहने का वचन देता हूँ।"

यह कहकर उन्होने महामात्य पद की तलवार सम्राट् के चरणो में रख दी।

"सम्राट् ! अब मै यहा उपस्थित पौरजानपदो तथा सभी सभासदो से यह प्रश्न करता हूँ कि क्या वह आर्य वर्षकार की महामात्य पद पर नियुक्ति को स्वीकार करते है।"

इस पर बहुत सी आवाजे एक साथ आई—'हम को स्वीकार है। हम को स्वीकार है।'

तब सम्राट् फिर बोले—"यदि किसी व्यक्ति को इस नियुक्ति पर आपत्ति हो तो वह अपना हाथ ऊँचा कर दे।"

इस पर किसी ने भी अपना हाथ ऊँचा नही किया। सम्राट् फिर बोले—

"पौरजानपद सर्व-सम्मति से आर्य वर्षकार की महामात्य पद पर नियुक्ति को स्वीकार करते है। आर्य वर्षकार ! मै आपको इस विशाल मगध साम्राज्य का महामात्य नियुक्त करता हूँ। आप महामात्य पद की इस तलवार को ग्रहण करे।"

यह कहकर सम्राट् ने रत्नजटित कोषवाली तलवार अपने हाथ से वर्षकार क हाथ मे दे दी। वर्षकार ने उस तलवार को हाथ मे लेकर कहा—

"मै आर्य कल्पक का पुत्र वर्षकार सूर्य, अग्नि तथा इस शस्त्र की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, उनके उत्तराधिकारियों तथा मगध साम्राज्य की मै सदा ही महामात्य के रूप मे सब प्रकार से भक्ति-

पूर्वक सेवा करता रहूँगा ।"

इसके पश्चात् प्रधान सेनापति भद्रसेन ने शस्त्र हाथ मे लेकर कहा—

"मे भद्रसेन सूर्य, अग्नि तथा शस्त्र की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, उनके उत्तराधिकारियों तथा मगध साम्राज्य की मै सदा प्रधान सेनापति के रूप मे सब प्रकार से भक्तिपूर्वक सेवा करूँगा ।"

उनके पश्चात् राज्य के अन्य सभी अधिकारियो ने सम्राट् के प्रति राजभक्ति की शपथ ली ।

इस प्रकार राज्यारोहण विधि के समाप्त होने पर सम्राट् एक विशाल जुलूस के साथ हाथी पर बैठकर सारे गिरिव्रज मे घूमे । उस समय उनके सिर पर राजमुकुट लगा हुआ था । एक सामत उनके सिर पर छत्र लगा रहा था तथा अन्य दो सामत उनके पीछे बैठे हुए उन पर चॅवर डुला रहे थे । नगर की परिक्रमा करके सम्राट् उसी जुलूस के रूप में नगर के उत्तर की ओर के मैदान मे पहुँचे । यहा मगध की सारी सेनाएँ एकत्रित खडी हुई थी । इस समय तक उनका प्रत्येक सैनिक तथा सेनाधिकारी सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के प्रति राजभक्ति की शपथ ले चुका था । सम्राट् के मैदान मे पहुँचने पर शाही सेनाओ ने सम्राट् का जय-जयकार करके उनको सैनिक रूप से अभिवादन किया । इसके पश्चात् सम्राट् उसी प्रकार के जुलूस मे वापिस राजमहल आए ।

२०

नन्दिग्राम पर कोप

गिरिव्रज के इस सारे वृत्तान्त को उसी दिन सम्राज्ञी नन्दिश्री के पास भिजवा दिया गया। इस सवाद को सुनकर सेठ जी ने भारी प्रसन्नता मनाई। रात को यहा तथा गिरिव्रज मे प्रत्येक घर मे असख्य दीपक जलाकर खुशी मनाई गई।

अगले दिन सम्राट् ने राज्यसभा मे बैठकर सारे साम्राज्य के कार्य का हिसाब पदाधिकारियो से लिया। उसी हिसाब मे वह धन भी लिखा हुआ था, जो राज्य की ओर से नन्दिग्राम के ब्राह्मणो को अतिथि-सेवा के लिये दिया जाता था। तब सम्राट् बोले--

"मै निर्वासित अवस्था मे नन्दिग्राम जाकर स्वय यह देख आया हूँ कि वहा के ब्राह्मण इस धन का सदुपयोग नही करते। इस धन के दिये जाने का प्रयोजन यह है कि उस ग्राम मे जाने वाले प्रत्येक अतिथि को इस धन से नि शुल्क भोजन दिया जावे। किन्तु वहा के ब्राह्मण इस धन का उपयोग केवल अपने आदमियो के लिये करते है और बाहिर के अतिथियो को इससे भोजन नही दिया जाता, यहा तक कि उन्होने हमको भी भोजन देने से इन्कार कर दिया था। अतएव इन ब्राह्मणो को पकड कर राजदण्ड देना चाहिये।"

इस पर वर्षकार बोले--

"सम्राट् का कथन बिल्कुल ठीक है। किन्तु महाराज स्वय विचार करे कि कल ही सिहासन पर बैठकर आज अगले ही दिन आपका किसी पर कोप करना उचित नही है। यदि आप नन्दिग्राम के ब्राह्मणो को दण्ड ही देना चाहते है तो उन पर कुछ और अपराध लगा कर उन्हे दण्ड दे।"

बिम्बसार--हा, वर्षकार! तुम्हारी बात ठीक है। अच्छा, उनके पास एक बकरा तोल कर भेज दो और कहला दो कि इसको खूब खिलाया-पिलाया जावे।

उसको एक सप्ताह बाद वापिस मँगवाया जावेगा। यदि तनिक भी वह बकरा घटा या बढा तो ग्राम के सभी ब्राह्मणो को राज-दण्ड देकर उनसे गाव छीन लियो जावेगा।

वर्षकार ने एक बकरे को तुलवाकर इसी राज्याज्ञा के साथ नन्दिग्राम भिजवा दिया। नन्दिग्राम में उस समय एक उत्सव मनाया जा रहा था। राज-सेवको के साथ एक बकरा आने के समाचार से ग्राम भर मे खलबली मच गई। राज-सेवक सीधे गाव के मुखिया तथा धर्मशाला के प्रबन्धक नन्दिनाथ के घर पर गए। उन्होने वहा जाकर उससे कहा—

"विप्रवर नन्दिनाथ ! सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने आपके पास यह बकरा तोल कर भेजा है और आज्ञा दी है कि आपको जो राज्य की ओर से अतिथि-दान के लिये द्रव्य मिलता है उसी में से इस बकरे को प्रतिदिन खूब खिलाया-पिलाया जावे। इसको लेने के लिये हम एक सप्ताह बाद आवेगे। उस समय इस बकरे को फिर तोला जावेगा। यदि तोल मे उस समय यह तनिक भी घटा या बढा तो आपसे नन्दिग्राम छीन कर देयद्रव्य का देना भी आपको बन्द कर दिया जावेगा।"

नन्दिनाथ राजसेवको के इस कथन को सुनकर एकदम घबरा गए। वह उनकी बहुत खुशामद करके कहने लगे—

"राजपुरुषो, हम ब्राह्मण है। ब्राह्मण सभी की सहायता का पात्र होता है। अतएव आप हमको कम से कम यह तो बतला दो कि इस आपत्तिसे छूटने का क्या उपाय है ?"

इस पर राजपुरुष बोले—

"विप्रवर ! हम इसमे आपकी कुछ भी सहायता नही कर सकते और न कोई सम्मति ही दे सकते है। क्योकि यह आज्ञा किसी सामान्य अधिकारी की न होकर स्वय सम्राट् द्वारा दी गई है। यदि आप इस आपत्ति से छुटकारा चाहते है तो किसी प्रकार सम्राट् को प्रसन्न करें। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय सभव नही है।"

राजपुरुष यह कह कर गिरिव्रज लौट गए। इस घटना से नन्दिग्राम का

उत्सव शोक-सभा के रूप मे परिणत हो गया। अब तो ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का पता लग गया कि नन्दिग्राम पर सम्राट् का काप हुआ है। सभी के चेहरो पर हवाइया उडने लगी। सारे गाव मे शोक छा गया, किन्तु सब जानते थे कि जब ग्राम पर राजा का कोप हुआ है तो वह न जाने किस रूप मे प्रकट होवे।

इधर नन्दिग्राम मे शोक मनाया जा रहा था उधर सेठ इन्द्रदत्त वेणपद्म नगर से अपनी पुत्री नन्दिश्री तथा दौहित्र अभयकुमार को साथ लेकर गिरिव्रज जा रहे थे। उनके साथ अनेक दासी-दास थे और लगभग पचास सैनिक भी रक्षक के रूप मे थे। सेठ इन्द्रदत्त तथा नन्दिश्री रथ मे बैठे हुए थे और राजकुमार अभय घोडे पर बैठा हुआ चल रहा था। वेणपद्म नगर से चलते-चलते जब ये लोग नन्दिग्राम आए तो दिन छिपने लगा। सेठ इन्द्रदत्त ने आज्ञा दी कि आज की रात यही विश्राम किया जावे। नगर के बाहिर एक मैदान मे इन्होने अपनी सवारियो को उतार कर तम्बू लगा दिय। सैनिक भी अपनी-अपनी कमर खोलकर भोजन-पानी का प्रबन्ध करने लगे। दासियो ने सेठ इन्द्रदत्त तथा महारानी नन्दिश्री के लिये सब प्रबन्ध कर दिया। तब राजकुमार अभय दो चरो को साथ लेकर गाव की शोभा देखने को निकला। किन्तु गाव मे घुसते ही उसको प्रत्येक गाववाले का मुख उदास दिखलाई दिया। अभयकुमार सारे गाव मे घूम कर गाव की चौपाल पर भी गया। वहा नन्दिनाथ बैठा हुआ अत्यन्त करुण स्वर मे इस प्रकार विलाप कर रहा था ·

"सारे भारत मे ब्राह्मणो का मान है। उनको किसी प्रकार का भी दण्ड नही दिया जाता। किन्तु मगध ही एक ऐसा देश है, जहा निरपराध ब्राह्मणों को भी दण्ड दिया जाता है।"

राजकुमार अभय उसके यह शब्द सुनकर तुरन्त उसके पास जाकर बोला—

"तुमको क्या कष्ट है विप्रवर! तुम्हारे ऊपर किस प्रकार का राज-दण्ड आ रहा है। तनिक मै भी तो सुनू।"

नन्दिनाथ अभयकुमार के रूप-रग तथा वस्त्रो से यह समझ गए कि वह एक राजकुमार है। अतएव उन्होने उनसे विनय-पूर्वक यह कहना आरभ किया।

"राजकुमार ! अभी-अभी कुछ समय पूर्व गिरिव्रज से दो राजसेवक मुझ को यह बकरा देकर सम्राट् की यह आज्ञा सुना गए है कि इस बकरे को प्रति-दिन खूब खिलाया-पिलाया जावे। इसे तोल कर दिया जाता है और तोल कर ही इसे सात दिन बाद लिया जावेगा। यदि यह तोल मे लेशमात्र भी घट या बढ गया तो हम लोगो से गाव छीन कर हमको राजदण्ड दिया जावेगा। राजकुमार ! इस गाव के हम समस्त ब्राह्मण आपकी शरण है। आप हमारी राज-कोप से रक्षा करे।"

अभयकुमार—ब्राह्मण ! मै आपको अभय देता हूँ। आप चिन्ता न करे। मै आपको एक ऐसी युक्ति बतलाता हूँ जिससे आप राजकोप से इस बकरे के विषय मे बच जावेगे। आप इस बकरे को दैनिक खूब खिलाया तथा पिलाया करे। केवल सायकाल के समय इसको केवल दो घडी के लिये एक भेडिये के सामने बाध दिया करे। इससे उसका खाया-पिया सब बराबर हो जाया करेगा।

यह सुनकर ब्राह्मण लोग हाथ जोडकर अभयकुमार के सामने खडे हो गए और बोले—

"यदि राजकुमार ! आपने हमको अभयदान दिया है तो आप हमारी इतनी प्रार्थना और स्वीकार करले कि जब तक हमारे ऊपर सम्राट् का कोप शान्त न हो जाव तब तक आप इस गाव से न जावे।"

अभयकुमार—ब्राह्मणो ! आप को म अभय कर चुका। आपकी इच्छानुसार आपकी आपत्ति का निवारण होने तक मै आपके गाव क बाहिर अपने शिविर मे ही रहूँगा। आप निश्चिन्त रहे।

इस पर ब्राह्मणो ने राजकुमार की बडी प्रशसा की। उन्होने राजकुमार के बतलाए अनुसार बकरे को खूब खिलाया-पिलाया और यत्न-पूर्वक एक भेडिये को पकडवाकर दो घडी के लिये बकरे को उसके सामने बाध दिया।

अभयकुमार वहा से चलकर सीधा अपने शिविर मे आया। वह आकर अपनी माता से बोला—

"माता ! हम लोगो को अभी कुछ समय तक इसी नन्दिग्राम मे रहना होगा। पिता का इस ग्राम पर कोप हुआ है। उन्होने इस ग्राम मे तोल कर

एक बकरा भेजा है और आज्ञा दी है कि उसको खूब खिलाया-पिलाया जावे। यदि सात दिन बाद वह बकरा तोल मे तनिक भी घट या बढ गया तो सारे गाव को दण्ड दिया जावेगा।

नन्दिश्री—तो तुमने गाववालो की क्या सहायता की बेटा !

अभय—माता, मै उनको बतला आया हूँ कि वह बकरे को खूब खिला-पिला कर केवल दो घडी के लिये प्रतिदिन एक भेडिये के सामने बाध दिया करे।

नन्दिश्री—वाह-वाह पुत्र ! तुमको यह युक्ति अच्छी सूझी।

अभय—माता ! यह सब आपकी ही तो दी हुई है। हा, उन्होने एक प्रार्थना मुझसे यह की है कि जब राजा का हमको दण्ड देन का यह उपाय व्यर्थ जावेगा तो सभव है वह कोई और युक्ति दण्ड देने की निकाले। अतएव जब तक राजकोप शान्त न हो जावे मै इसी गाव मे रहूँ।

नन्दिश्री—तो तुमने उसका क्या उत्तर दिया पुत्र ?

अभय—माता, मैने उनको वचन दिया है कि जब तक उन पर राजकोप शान्त नही होगा, मै इसी गाव मे रहूँगा।

नन्दिश्री—तब तो बेटा, हम सबको भी यही ठहरना पडेगा और न जाने इसमे कितना समय लग जावे।

अभय—किन्तु माता अब तो मै उनको वचन दे चुका। मेरे दिये हुए वचन की तो रक्षा होनी ही चाहिये।

नन्दिश्री—तेरे दिये हुए वचन की बेटा, मै निश्चय से रक्षा करूँगी। तू चिन्ता न कर। जब तक इस गाव का विपत्ति से उद्धार न हो जावेगा मै भी तेरे साथ यही रहूँगी।

नन्दिनाथ को जब पता चला कि अभयकुमार वास्तव मे सम्राट् का पुत्र है तो उसकी उन पर और भी भक्ति हो गई। उसने गाव की सारी विशाल धर्मशाला को खाली करवा कर उनसे उसमे आ जाने की प्रार्थना की। सेठ इन्द्रदत्त ने अभयकुमार की इच्छा के अनुसार अपने शिविर को मैदान से हटा-कर ग्राम की धर्मशाला मे डेरा लगाया। अब वे लोग धर्मशाला मे कुछ अधिक सुविधा-पूर्वक रहने लगे।

२१

बुद्धि-चातुर्य

अभयकुमार की युक्ति के अनुसार नन्दिनाथ ने एक सप्ताह बाद बकरा तोल कर राजगृह भेज दिया। सम्राट् को यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि वह तोल मे न तो लेशमात्र घटा और न लेशमात्र बढा ही।

किन्तु सम्राट् को तो नन्दिनाथ आदि ब्राह्मणो को दण्ड देना ही था। उन्होने तुरन्त आज्ञा दी कि वह अपने यहा से एक वावडी उठाकर गिरिव्रज लावे, अन्यथा उनको गाव से निकाल दिया जावेगा।

सम्राट् की आज्ञा पाते ही एक दूत चला। उसन नन्दिग्राम पहुँच कर ब्राह्मणो से कहा—

"हे विप्रो! महाराज ने नन्दिग्राम से एक बावडी गिरिव्रज मगवाई है। आप लोग बावडी भेजने का प्रबन्ध शीघ्र करे, अन्यथा आप लोगो को नगर से जाना पडेगा।" दूत के मुख से महाराज की इस कठोर आज्ञा को सुनकर नन्दिग्राम के ब्राह्मण फिर बेहद घबरा गए। वह सोचने लगे कि 'अब की बार तो बडी कठिन समस्या है। बावडी का जाना तो दूर, उठाना ही असभव है। जान पडता है कि महाराज का कोप अनिवार्य है। नन्दिग्राम को तो अब हमे छोडना ही पडेगा।'

ब्राह्मण लोग इस प्रकार विचार करते हुए कुमार अभय के पास आए। उन्होंने उनसे सारा समाचार सुनाकर प्रार्थना की कि वह उनका इस आपत्ति से उद्धार करे। कुमार अभय ने उनसे कहा—

"हे ब्राह्मणो! आप घबराते क्यो हो? आप किसी बात की चिंता न करो। यह विघ्न अभी दूर हुआ जाता है। आप एक काम करे। आपके गाव मे जितने भी बैल एव भैसे हो उन सबको एकत्रित करो और उन सभी के कंधो पर जुवे रखवा दो। ऐसा करो कि उनकी सख्या इतनी अधिक हो कि

नन्दिग्राम से गिरिव्रज तक उनकी कतार की कतार बध जावे। तुम गिरिव्रज उस समय पहुँचो, जिस समय महाराज गाढ निद्रा मे सोते हो। तुम बेधड़क हल्ला मचाते हुए राज-मन्दिर मे घुस जाना और खूब जोर से पुकार कर कहना कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावडी लाए है। जो आज्ञा हो किया जावे। बस, महाराज के उत्तर से ही आपका यह विघ्न दूर होगा।"

कुमार की यह बात सुनकर ब्राह्मणो की जान मे जान आई। अब उन्होने गाव भर के सब बैलो तथा भैसो को एकत्र किया। उनके ऊपर जुवा रखकर उनमे मोटी-मोटी रस्सियाँ बांधी। प्रत्येक अगली रस्सी को पिछली रस्सी में बाध दिया गया। भैसो तथा बैलो की यह बाधी हुई श्रृखला इतनी लम्बी बनाई गई कि उसका अगला भाग गिरिव्रज मे था तो पिछला भाग नन्दिग्राम में रहा। राज-भवन मे लगभग सौ सवासौ जोडी बैल, भैसे प्रातःकाल चार बजे के लगभग जा पहुंचे। उस समय वह लोग बैलो को जोर-जोर से निम्नलिखित शब्दो मे हाकते जाते थे।

"अबे बच! अबे दिखलाई नही देता! तत्ते! आहा! नन्दिग्राम से बावडी आई है, इसे सभालो! आदि आदि।"

शोर करनेवाले भी कई सौ आदमी थे। उनके शोर के कारण राजमहल में इतना अधिक शोर मच गया कि सभी सोनेवाले जाग गए। ब्राह्मणो को तो महाराज की आज्ञा थी, वह भला क्यो रुकते। वह महाराज के सोने के कमरे तक जाकर उसके सामने खडे होकर शोर मचाने लगे। उनका भारी शोर सुन कर महाराज की नीद भी खुल गई।

महाराज उस समय गाढनिद्रा मे थे। निद्रा के नशे मे उनको अपने तन-बदन का लेशमात्र भी होशहवास नही था। उन्होने नीद टूटते ही दरबान से पूछा—

"यह शोर कैसा है?"

"महाराज नन्दिग्राम के ब्राह्मण आपकी आज्ञानुसार बावड़ी लाए है। उसे कहा रखवा दिया जावे?"

महाराज पर अभी तक भी नीद का नशा था। वह शब्दो के महत्व का लेशमात्र भी न समझकर बोल उठे—

"उनसे कह दो कि वह जहा से बावडी लाये है, वही लेजाकर उसे रख दें और राजमन्दिर से शीघ्र चले जावे।"

राजा की इस आज्ञा को सुनकर ब्राह्मण बडे प्रसन्न हो गए। उन्होने एक बार फिर जोर से कहा "सम्राट् श्रणिक बिम्बसार की जय" आर वहा से एक दम चले गए। वह उछलते-कूदते नन्दिग्राम लौट गए और वहा पहुँचकर खुशी मनाने तथा अभयकुमार के बुद्धि-चातुर्य की प्रशसा करने लगे।

उधर गिरिव्रज के राजमहल मे जब महाराज श्रेणिक की नीद खुली तो उन्होने दौवारिक से पूछा—नन्दिग्राम के ब्राह्मण जो बावडी लाए थे, वह कहा है ? उसे शीघ्र ही मेरे पास लाओ।

दौवारिक—महाराज उसे तो वह आपकी आज्ञानुसार वापिस नन्दिग्राम ले गए। आपने आज्ञा दी थी कि बावडी को जहा से लाए हो वही ले जाकर उसे रख दो और शीघ्र ही राजमन्दिर से चले जाओ। इसीलिये वह उस बावडी को लौटा कर वापिस नन्दिग्राम चले गए।

दौवारिक के यह शब्द सुन कर राजा श्रेणिक को मन ही मन बड़ी निराशा हुई। उनको अपनी निद्रा के सम्बन्ध मे मन ही मन पश्चात्ताप होने लगा। वह अपने मन मे विचार करने लगे—

"ससार मे जितने भयकर काम निद्रा करती है, इतने कोई नही करता। यह पिशाचिनी निद्रा जीवो के मुख पर पानी फेरनेवाली है। महर्षियो का यह कहना ठीक है कि जो मनुष्य अपना हित चाहता हो उसे निद्रा पर विजय प्राप्त करनी चाहिये, क्योकि जिस समय मनुष्य सोया होता है उस समय वह निद्रा के वश मे होकर अपने कर्मो पर से अधिकार को खो देता है। वास्तव में निद्रा को उसी प्रकार जीतना कठिन है जिस प्रकार क्षुधा को। जिस प्रकार क्षुधा के विषय में नीतिकार ने कहा है कि—

'बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्।'

भूखा आदमी किस पाप को नही करता, उसी प्रकार निद्रापीडित मनुष्य को भी उचित-अनुचित, हेय-उपादेय अथवा पुण्य-पाप का ध्यान नही रहता। निद्रा वास्तव मे एक प्रकार का भयकर मरण है, क्योंकि जिस प्रकार मरते समय कठ मे कफ रुक जाने से घर्र-घर्र शब्द होने लगता है उसी प्रकार का शब्द निद्रा के समय भी होता है। जिस प्रकार मनुष्य मरण काल मे खाट आदि पर सोता है, उसी प्रकार निद्रा की बेहोशी मे भी खाट पर सोता है। जिस प्रकार मरण काल मे शरीर के अङ्गो पर पसीना झमक आता है, उसी प्रकार निद्रा के समय भी अङ्ग पर पसीना आ जाता है। जिस प्रकार मनुष्य मरणकाल मे शान्त पड जाता है, उसी प्रकार निद्रा के समय भी काठ की पुतली के समान बेहोश पडा रहता है।"

इस प्रकार मन ही मन विचार करके सम्राट् ने सेवकों को फिर बुलवाकर उनसे कहा—

"तुम लोग शीघ्र ही नन्दिग्राम जाओ और वहा के ब्राह्मणो से कहो कि वह एक हाथी का वजन करके शीघ्र ही मेरे पास भेज दे।"

महाराज की आज्ञा पाते ही सेवक चला गया। उसने नन्दिग्राम जाकर नन्दिनाथ के घर जाकर उससे कहा—

"आपको सम्राट् ने आज्ञा दी है कि आप गाव के हाथी का वजन कर शीघ्र ही उनके पास भेजें, अन्यथा आपको नन्दिग्राम खाली करना पडेगा।"

राजसेवक के मुख से यह शब्द सुनते ही नन्दिनाथ का मुख फीका पड गया। गाव के अन्य ब्राह्मण भी इस सवाद से एकदम घबरा गए। वह सोचने लगे कि बावडी का विघ्न बडी कठिनता से दूर हुआ था कि यह नई बला कहा से सिर पर आ टूटी। अन्त मे कुछ देर इस प्रकार आपस मे विचार करके वे कुमार अभय के पास गए। उन्होने उनसे विनयपूर्वक कहा—

"माननीय कुमार! अबकी बार तो सम्राट् ने बडी कठिन समस्या उत्पन्न कर दी है। उन्होने हाथी का वजन मागा है। भला हाथी को कैसे तोला जा सकता है? ससार मे कौन सी तराजू मे हाथी को चढाया जा सकता है और

फिर उसकी बराबर बाट भी कौन सा हो सकता है ? इस प्रश्न को सुनकर हमारी तो बुद्धि ही चकरा गई। जान पडता है, अब महाराज हम लोगो को नही छोडेगे।"

ब्राह्मणो के इस प्रकार दीन वचन सुनकर कुमार ने उनको सात्वना देते हुए कहा—

"आप लोग इस तनिक सी बात के लिये इतना क्यो घबराते है ? मै अभी आपके द्वारा हाथी को तुलवाए देता हूँ।"

ब्राह्मणो को इस प्रकार आश्वासन देकर कुमार अभय गॉव के एक तलाब के किनारे गए। यह तालाब अत्यधिक लम्बा-चौडा होने के अतिरिक्त बहुत अधिक गहरा भी था। उसमे गाववालो के विहार के लिये एक नाव बराबर पडी रहती थी। उन्होने वहा अपने साथ का एक हाथी मगवाकर उसे नाव मे उतरवा दिया। नाव उस हाथी को लेकर तालाब के गहरे पानी मे चली गई। नाव पानी के अन्दर हाथी के बोझ से जितनी डूबी, उसी स्थल पर उसमें निशान लगाकर हाथी को उसमे से निकाल लिया गया। बाद मे नाव को जल मे फिर ले जाकर उसमें इतने पत्थर भरे गए, जब तक नाव उस निशान तक जल मे न डूब गई। अब उन पत्थरो को नाव से निकाल कर उनको बाटो से तोल कर उनका वजन मनों मे निकाल लिया गया। अब उन पत्थरो को उनकी तोल के परिमाण सहित सम्राट् के पास गिरिव्रज भेज दिया गया। नन्दिग्राम के ब्राह्मणो की ओर से यह कहला दिया गया कि—

"महाराज ! आपने जो हाथी का वजन मागा था सो यह लीजिये।"

महाराज श्रेणिक बिम्बसार को हाथी के वजन के पत्थरो को देखकर बडा आश्चर्य हुआ। अब की बार उन्होने खैर की एक लकडी हाथ मे लेकर सेवको से कहा—

"जाओ ! इस लकडी को नन्दिग्राम के ब्राह्मणो को दे आओ। उनसे कहना कि महाराज ने यह लकडी भेजी है। वह बतलावे कि उसका कौन सा भाग अगला है और कौन सा पिछला। यह परीक्षा कर वह शीघ्र ही हमारे पास भेजे, नही तो उन्हे गाँव से निकाल दिया जायेगा।"

दूत महाराज की यह आज्ञा पाते ही गिरिव्रज से चलकर नन्दिग्राम आया। उसने उनको महाराज द्वारा दी हुई लकडी देकर कहा—

"मगध-सम्राट् ने आपके पास यह लकडी भेजी है। आप बतलावे कि इसका कौन सा भाग अगला है और कौन सा पिछला। यह परीक्षा कर शीघ्र भेजे। अन्यथा नन्दिग्राम छोडकर चले जाएँ।"

दूत के मुख से महाराज का यह सदेश पाकर नन्दिग्राम के ब्राह्मणो का मस्तक घूमन लगा। वे सोचने लगे कि सम्राट् के कोप से अब की बार बचना कठिन है। अब हम किसी प्रकार भी नन्दिग्राम मे नही रह सकते। वे दूत को बिदा कर सीधे कुमार के पास गए। उनको महाराज का सदेश सुनाकर उन्होने वह लकडी भी उनके सामने रख दी।

इस पर कुमार बोले—

"आप लोग महाराज की इस आज्ञा से तनिक भी न डरे। मै अभी इसका प्रतीकार करता हूँ।"

इस प्रकार कहकर वह ब्राह्मणो को लेकर फिर तालाब के किनारे गए। वहा जाने पर उन्होने वह लकडी तालाब मे डाल दी। लकडी पानी मे पडकर बहने लगी।

तब कुमार बोले—

"लकडी जब पानी मे बहती है तो उसका मूल भाग आगे को और दूसरा भाग पीछे को रहता है। तुम इस भेद को समझ कर राजा को भी जाकर समझा दो।"

अब तो ब्राह्मण प्रसन्न हो गए। वह उस लकडी को लेकर तुरन्त गिरिव्रज आए और राजा के सामने जाकर उन्हे उसके विषय मे सतुष्ट कर लकडी का ऊँचा तथा नीचा भाग बतला दिया।

महाराज अपने इस प्रश्न का उत्तर भी ठीक-ठीक पाकर क्रोध मे भर गए। उन्होने एक क्षण विचार कर एक सेवक को बुलाकर उसके हाथ में कुछ तिल देकर उससे कहा—

"नन्दिग्राम के ब्राह्मणो से कहना कि महाराज ने यह तिल भेजे है। जितने

यह तिल हैं इनके बराबर इनका तेल शीघ्र ही गिरिव्रज पहुँचा दो।"

महाराज की आज्ञानुसार दूत नन्दिग्राम को चल दिया। उसने वे तिल ब्राह्मणो को देकर उनसे कहा कि जितने ये तिल हैं महाराज ने उतना ही तेल मँगवाया है।

दूत का यह वचन सुनकर ब्राह्मण बडे घबराए। वह सीधे कुमार अभय के पास गए और उनसे कहने लगे—

"महोदय! महाराज ने ये थोडे से तिल भेजे हैं और इनके बराबर इनका तेल मागा है। अब हम क्या करे? यह बात तो बडी कठिन है। तिलो के बराबर तेल कैसे भेजा जा सकता है। जान पडता है कि हम अबकी बार राज-दण्ड से नही बच सकेगे।"

ब्राह्मणो को इस प्रकार हताश देखकर कुमार ने उनको फिर सात्वना देकर समझाया। उन्होने एक दर्पण मगवाकर उस पर तिलो को पूर कर ब्राह्मणो को आज्ञा दी कि जाओ इनका तेल निकलवा लाओ। जिस समय कुमार की आज्ञानुसार ब्राह्मण तेल निकलवा कर लाए तो कुमार ने उस तेल को तिलो के बराबर ही दर्पण पर पूर दिया और उसको उसी दशा में सम्राट् के पास किसी मनुष्य द्वारा भिजवा दिया।

इस प्रकार तिलो के बराबर तेल देखकर महाराज चकित रह गए। वह नन्दिग्राम के ब्राह्मणो की बुद्धिमत्ता की प्रशसा करने लगे। अब उनके मन में प्रतिहिंसा की अपेक्षा परीक्षा का कौतूहल अधिक हो गया। उन्होने फिर एक सेवक को बुलाया और उससे कहा——

"तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहा के ब्राह्मणो से कहो कि महाराज ने भोजन के योग्य दूध मगाया है। उनसे कहना कि वह दूध गाय, भैस आदि चार थन वालो का न हो और न बकरी आदि दो थन वालो का हो। नारियल आदि फलो का भी न हो। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार का हो। मिष्ट हो, उत्तम हो और बहुत सा हो।"

महाराज की आज्ञानुसार दूत फिर नन्दिग्राम गया। महाराज ने जेसा दूध लाने की आज्ञा दी थी उसने वह आज्ञा नन्दिग्राम के ब्राह्मणो को जाकर सुना

दी। दूत के मुख से इस सन्देश को पाकर ब्राह्मण फिर घबरा गए। वह सोचने लगे कि दूध या तो गाय, भैस, बकरी आदि पशुओ का होता है अथवा नारियल आदि फलो का होता है। इनके अतिरिक्त बड, पीपल, अजीर आदि पच उदुम्बर फलो का भी दूध होता है, किन्तु वह मीठा नही होता। इनके अतिरिक्त अन्य किसी का दूध तो आज तक सुनने मे नही आया। महाराज ने जो अन्य किसी प्रकार का दूध मगवाया है यह उनको क्या सूझी है? क्या वह अब हमारा सर्वनाश ही करना चाहते है? इस प्रकार विचारते हुए वह व्याकुल होकर फिर कुमार के पास आए। उन्होने महाराज का सदेश उनको सुनाकर उनसे यह निवेदन किया—

"महानुभाव! महाराज की अब की बार की आज्ञा बडी कठिन है। क्योकि पशुओ तथा फलो के अतिरिक्त और किस प्रकार का दूध हो सकता है। यदि हो भी तो उसे दूध नही कहा जा सकता। अब की बार तो महाराज ने इस दूध के बहाने से हमारे प्राण मागे है।

ब्राह्मणो के वचन सुनकर कुमार ने फिर उनको धीरज बधाया। वह कहन लगे—

"दूध और प्रकार का भी होता है। मै अभी उसे महाराज की सेवा मे भिजवाता हूँ। आप तनिक धैर्य रखकर शीघ्र कच्चे धानो की बाल मगवा ले और उनको मसल कर उनका गौ के दूध के समान उत्तम दूध बनवा ले। फिर उनको उत्तम घडो मे भरवाकर वह घडे सम्राट् की सेवा मे भेज दे।"

ब्राह्मणो को कुमार का यह वचन सुनकर बडी प्रसन्नता हुई। उन्होने तुरन्त ही दस-बीस आदमी धान के हरी बाल काटने के लिये खेतो पर भेज दिये। बालो के आजाने पर यत्नपूर्वक उनके दाने निकालने के लिये चालीस-पचास आदमी बिठला दिये गए। जितने दाने निकलते जाते उनको पीस कर उनका दूध बनवा लिया जाता था। इस प्रकार के दूध के दस घडे भर कर उन्होने राजा श्रेणिक के पास भेज दिये।

महाराज दूध से भरे घडो को देखकर आश्चर्य मे पड गए। नन्दिग्राम के ब्राह्मणो की बुद्धि पर उनको बडा भारी आश्चर्य हुआ। तुरन्त ही उनके मन

मे एक विचार आया और उन्होने दूत को बुलाकर उससे कहा—

"तुम अभी नन्दिग्राम जाकर वहा के विप्रो से कहना कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि वह यहा मेरे सामने आकर एक ही मुर्गे को लडाकर दिखलावे। यदि वह ऐसा न कर सके तो गाव को खाली करके चले जावे।"

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत वहा से चलकर नन्दिग्राम आया। उसने वहा नन्दिनाथ के पास जाकर उससे कहा—

"महाराज ने यह आज्ञा दी है कि आप लोग गिरिव्रज जाकर महाराज के सामने एक अकेले मुर्गे को लडा कर दिखलावे और यदि ऐसा न कर सके तो गाव छोडकर चले जावे।"

दूत तो यह कहकर चला गया, किन्तु ब्राह्मणो के काटो तो बदन मे खून नही। वह बेहद घबराए हुए कुमार के पास आए। उनको उन्होने सम्राट् के सदेश का सारा समाचार सुना दिया। अभयकुमार ने उनको धीरज बधाते हुए कहा—

"आप लोग इस प्रकार क्यो घबराते है ? आप खुशी से गिरिव्रज जावे और राजा के सामने जाकर एक मुर्गे के सामने एक बडा सा दर्पण रख दे। जिस समय मुर्गा दर्पण मे अपनी परछाई देखेगा तो वह उसे दूसरा मुर्गा समझ कर उससे फौरन लडने लगेगा और आपका काम बन जावेगा।"

कुमार का यह वचन सुनकर ब्राह्मण बडे प्रसन्न हुए। वह उसी क्षण गिरिव्रज चले गए और अपने साथ एक बडा दर्पण तथा मुर्गा लेते गए। राजमन्दिर मे पहुँचकर उन्होने विनयपूर्वक सम्राट् को नमस्कार किया। इसके पश्चात् उन्होने उनके सामने एक मुर्गा छोड दिया। फिर उस मुर्गे के सामने एक दर्पण रख दिया। जिस समय असली मुर्गे ने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा तो वह उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी दूसरा मुर्गा समझ कर क्रोध मे भर गया और शीशे पर चोचे मार-मार कर उसके साथ अत्यन्त भयकरता से युद्ध करने लगा।

एक अकेले मुर्गे को युद्ध करते हुए देखकर महाराज चकित रह गए। उन्होने शीघ्र ही मुर्गे के सामने से दर्पण हटवा कर मुर्गे का युद्ध समाप्त करवा

दिया तथा ब्राह्मणो को घर जाने की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मणो के नन्दिग्राम चले जाने पर महाराज भारी सोच मे पड गए। वे विचारने लगे कि ब्राह्मण बड़े बुद्धिमान् है। उनको किस प्रकार दोषी बनाया जावे, यह समझ मे नही आता। थोडी देर इस प्रकार विचार कर उन्होने फिर एक सेवक को बुलाकर उससे कहा—

"तुम नन्दिग्राम चले जाओ और वहा के ब्राह्मणो से कहो कि महाराज ने बालू की रस्सी मगवाई है। उसे शीघ् तैयार करके भेजो, अन्यथा अच्छा न होगा।"

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत नन्दिग्राम की ओर चल दिया। उसने वहा जाकर ब्राह्मणो को सम्राट् की आज्ञा सुना दी।

दूत के द्वारा महाराज की इस आज्ञा को सुनकर ब्राह्मणो के घबराहट के मारे छक्के छूट गए। वे तुरन्त भागते-भागते कुमार अभय के पास पहुँचे और उनको सम्राट् की इस आज्ञा का समाचार दिया। इस पर कुमार बोले—

"विप्रवर ! आप लेशमात्र भी न घबरावे। आप गिरिव्रज चले जावें और सम्राट् से निवेदन करे कि 'राजाधिराज ! आपके भडार मे यदि बालू की कोई दूसरी रस्सी हो तो वह नमूने के तौर पर हमको दिखला देवे, जिससे हम उसे देखकर वैसी ही रस्सी तैयार कर आपको दे देवे।' यदि महाराज कहे कि 'वैसी रस्सी हमारे पास नही है' तो आप उनसे विनयपूर्वक क्षमा मागकर यह प्रार्थना करे कि 'महाराज ! आप कृपा कर ऐसी अलभ्य वस्तु की हमें आज्ञा न दिया करे। हम आपकी दीन प्रजा है।'

कुमार के मुख से यह युक्ति सुनकर ब्राह्मण बडे प्रसन्न हुए। वह मारे आनन्द के उछलते-कूदते शीघ्र ही गिरिव्रज जा पहुँचे। राजमन्दिर मे पहुँच कर उन्होने महाराज को नमस्कार किया और उनसे विनयपूर्वक निवेदन किया—

"श्री महाराज ! आपने हमको बालू की रस्सी लाने की आज्ञा दी है। हमको नही पता कि हम कैसी रस्सी बनाकर आपकी सेवा मे लाकर उपस्थित करें। कृपया हमको एक वैसी ही बालू की रस्सी अपने भडार से नमून के लिये दिलवा दें, जिससे उसे देखकर हम वैसी ही रस्सी तैयार करले। अपराध

क्षमा किया जावे।"

विप्रो के इस वचन को सुनकर सम्राट् बोले—

"हे ब्राह्मणो! वैसी रस्सी तो हमारे यहा नही है।"

महाराज के मुख से इन शब्दो को सुनकर ब्राह्मणो ने उनसे निवेदन किया—

"कृपानाथ! जब वैसी रस्सी आपके भडार मे भी नही है तो हम कहा से बालू की रस्सी बनाकर ला सकते है? प्रभो! कृपा कर हमको ऐसी अलभ्य वस्तु के लिये आज्ञा न दिया करे। हम आपके आज्ञाकारी सेवक तथा दीन प्रजा है और आप हमारे स्वामी है।"

इस पर सम्राट् बोले—

"अच्छा, जाओ। बालू की रस्सी मत बनाना।"

सम्राट् के यह शब्द सुनकर ब्राह्मण बडे खुश होकर नन्दिग्राम लौट गए। किन्तु उनके जाने के बाद महाराज के मन मे प्रतिहिसा की अग्नि फिर जलने लगी। उन्होने तनिक देर विचार कर फिर दूत को बुलाया और कहा—

"तुम अभी नन्दिग्राम चले जाओ और वहा के ब्राह्मणो से कहना कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि वे मेरे पास एक ऐसा कूष्माड (पेठा) लावें जो घडे के अन्दर बन्द हो और घडे के पेट जितना ही बडा हो। कमती अथवा बढती न हो। यदि वह इस आज्ञा का पालन न कर सके तो नन्दिग्राम छोड दे।"

दूत सम्राट् की इस आज्ञा को सुनकर तुरन्त ही नन्दिग्राम चला गया। वहा जाकर उसने राजा की आज्ञा जैसी की तैसी ब्राह्मणो को कह सुनाई। नन्दिग्राम के ब्राह्मण इस समय बडी भारी खुशिया मना रहे थे। किन्तु जब राजा का दूत वहा फिर पहुँचा तो उनका माथा ठनका। उसके मुख से महाराज की नई आज्ञा सुनकर तो उनके पैरो के नीचे की जमीन ही निकल गई। आज्ञा को सुनकर ब्राह्मण एक दम घबराए और भयभीत होकर थरथर कापने लगे, वे अपने मन मे इस प्रकार सोचने लगे—

"हे भगवान्! यह बला हमारे सिर पर कहा से आ टूटी। हम तो महाराज से अभी-अभी अपना अपराध क्षमा करवा कर आ रहे है। क्या हमारे

इतने विनयभाव से भी महाराज का हृदय दया से नहीं पसीजा ? अब हम अपने बचने का और क्या उपाय करे ?"

इस प्रकार विचार करते हुए वे कुमार के पास आये और वहा रो-रोकर इस प्रकार विलाप करने लगे—

"हे वीरो के सिरताज कुमार ! अब की बार तो महाराज ने हमारे पास अत्यन्त कठिन आज्ञा भेजी है। हे कृपानाथ ! आप इस भयकर विघ्न से हमारी शीघ्र रक्षा कीजिये। हे दीनबन्धो ! इस भयकर कष्ट से आप ही हमारी रक्षा कर सकते है। हमारे दुख-पर्वत का नाश करने मे आप ही हमारे लिए अखड वज्र है। महनीय कुमार ! लोक मे जिस प्रकार समुद्र की गम्भीरता, सुमेरु पर्वत का अचलपना, बृहस्पति की विद्वत्ता, सूर्य की तपिश, इन्द्र का स्वामित्व, चन्द्रमा की मनोहरता, राजा रामचन्द्र की न्यायपरायणता, राजा हरिश्चन्द्र की सत्य-वादिता तथा कामदेव का सौन्दर्य प्रसिद्ध है उसी प्रकार आपकी सज्जनता तथा विद्वत्ता भी प्रसिद्ध है। हे स्वामिन् ! हमारे ऊपर प्रसन्न होइये, हमको धैर्य बधाइये और हमारी इस नई आपत्ति से रक्षा कीजिये। भला ऐसा पेठा कहा से आ सकता है, जो घडे के अन्दर बन्द रहते हुए भी घडे के पेट के ठीक बराबर बड़ा हो।"

ब्राह्मणो के इस प्रकार रुदन करने से कुमार अभय का चित्त दया से गदगद हो गया। उन्होने गम्भीरतापूर्वक ब्राह्मणो से कहा—

"ब्राह्मणो ! आप लोग इस जरा सी बात के लिये क्यो घबराते है। मै अभी इसका उपाय करता हूँ। मै जब तक यहा हूँ आप सम्राट् की आज्ञा का किसी प्रकार भय न करे।"

ब्राह्मणो को इस प्रकार समझाकर कुमार अभय ने एक घडा मगवाया और उसमे बेल सहित एक पेठे को रख दिया। बेल की जड को पृथ्वी मे जल देकर पुष्ट किया जाता रहा और पेठा घडे के मुह के द्वारा उसके पेट मे पडा-पड़ा बढने लगा। कई दिन बाद वह पेठा बढकर घडे के पेट के ठीक बराबर हो गया। तब कुमार ने उसको बेल मे से तुडवाकर घडे सहित महाराज की सेवा मे भेज दिया।

२२

अभयकुमार का अन्वेषण

सम्राट् न जैसा पेठा मागा था वैसा ही उनको मिल गया, पेठे को देखकर महाराज बडे सोच मे पड गये। वह सोचते लगे—

"यह बात क्या है ? क्या नन्दिग्राम के ब्राह्मण वास्तव मे इतने बुद्धिमान् हैं ? अथवा उनके पास कोई और बुद्धिमान् पुरुष रहता है ? नन्दिग्राम के ब्राह्मणो मे इतना पाडित्य किसी प्रकार नही हो सकता, क्योकि जब से उन लोगो को राज्य की ओर से स्थिर आजीविका मिली है, तब से वह लोग आलसी तथा अज्ञानी हो गये है। उनकी समझ मे तो साधारण बात भी नहीं आती फिर मेरे कठिन प्रश्नो को तो भला वह किस प्रकार सुलझा सकते थे ? मैंने नन्दिग्राम के ब्राह्मणो को जो-जो काम सौपे उन सबका उत्तर मुझे अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक मिला है। इसलिये निश्चय ही नन्दिग्राम में कोई असाधारण बुद्धि वाला अन्य पुरुष है। जिस पाडित्य से मेरी बातो का उत्तर दिया गया है, वह पाडित्य देवो मे भी दुर्लभ है। नदिग्राम के ब्राह्मणो मे यह बुद्धिबल किसी प्रकार भी नही हो सकता। अच्छा, मै नदिग्राम कुछ व्यक्तियो को भेजकर उस बुद्धिमान् व्यक्ति का पता चलाऊ।"

महाराज ने यह सोचकर कुछ चतुर व्यक्तियो को बुला कर उनसे कहा—

"आप लोग अभी नन्दिग्राम चले जावे। वहा आप गुप्त रूप से इस बात का पता लगावे कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण किसकी बुद्धि की सहायता लेकर हमारे प्रश्नो का उत्तर दिया करते है।"

वह लोग राजा की आज्ञा पाकर सीधे नन्दिग्राम पहुँचे। उस समय दोपहर ढल चुका था। धप मे तेजी नही रही थी और अनेको लड़के नन्दिग्राम के बाहर के बगीचे मे खेल रहे थे। बगीचे मे आम, जामुन, अमरूद, अनार

आदि अनेक प्रकार के फल थे। लडको के साथ आज अभयकुमार भी खेलने आ गये थे। उन्होने खेल के बाद प्रस्ताव किया कि जामुन के वृक्षो पर चढ कर पकी-पकी जामुने खाई जावे। अतएव सभी लडके बात की बात मे जामुनो के वृक्षो पर जा चढे। एक वृक्ष पर अभयकुमार भी जा चढे और पकी-पकी जामुने तोड-तोड कर खाने लगे। जिस समय बालक जामुन क वृक्षो पर चढे जामन खा रहे थे तो सम्राट् के भेजे हुए राज-पुरुष भी वहा पहुँच गए। लडको को वृक्षो पर चढे देखकर उनका मन भी जामुन खाने को ललचाने लगा। मार्ग की थकावट के कारण उस समय उनको भूख भी सता रही थी। अतएव उन्होने सोचा कि कुछ फल खाकर ही भूख को शान्त किया जावे। अभयकुमार ने जो कुछ राजसेवको को आते देखा तो सब लडको को सुना कर कहा—

"देखो भाई! यह राजसेवक अपनी ओर आ रहे है। इनके साथ आप में से कोई भी बातचीत न करे। जो कुछ जवाब-सवाल होगा वह मै ही इनके साथ करूँगा।"

तब तक वह राजसेवक भी उन वृक्षो के नीचे आ पहुँचे। उन्होने लडको से कहा—

"क्यो भाई! आप लोग कुछ जामुन हमको भी देगे?"

अभयकुमार ने कह तो दिया कि—

"क्यो नही?"

किन्तु वह मन मे सोचने लगे कि 'यदि इनको योही फल दे दिये जायेगे तो कुछ भी आनद नही आवेगा। अतएव उनको छका कर फल देना ठीक होगा।' यह सोच कर उन्होने राजसेवको से कहा—

"फल तो आप चाहे जितने खा सकते है, किन्तु यह बतलाइये कि आप गरम फल खायेगे या ठण्डे? क्योकि मेरे पास दोनो प्रकार के फल है।"

इस पर राजपुरुष बोले—

"हम गरम-गरम फल खावेगे।"

अभयकुमार ने अब उनको पकी-पकी जामुने तोड कर तथा मल-मल

कर इस प्रकार देनी आरम्भ की कि वह उनको बालू मे फेक दिया करते थे। राजपुरुष उनको बालू मे से उठा-उठा कर तथा फूक से उनका बालू छुडा-छुडा कर खाने लगे। उनको ऐसा करते देखकर अभयकुमार बोले—

"आप लोग इन फलो को खूब फूक मार-मार कर तथा ठडा करके खावे। कही ऐसा न हो कि इनकी आच से आपकी दाढी-मूँछे जल जावे।"

इस पर उन राजपुरुषो ने लज्जित होकर कहा—

"अच्छा, अब आप हमे ठडे फल दे।"

तब अभयकुमार ने उन्हे कच्ची-कच्ची जामुने देनी आरम्भ की।

अभयकुमार की वाक्चातुरी, तेजस्विता, मुख का सौन्दर्य तथा अन्य बालको से असाधारण उनके बहुमूल्य वस्त्रो को देखकर राजपुरुष यह तुरत समझ गये कि यह कोई असाधारण बुद्धि वाला राजकुमार है। उनको यह समझते भी देर न लगी कि यह राजकुमार नन्दिग्राम का नही है। उन्होने मन मे यह अच्छी तरह अनुमान कर लिया कि सम्राट् के कठिन प्रश्नो का उत्तर इसी राजकुमार ने दिया था, न कि ब्राह्मणो ने। इस प्रकार मन ही मन तर्क करके वह वहा से आगे बढकर ग्राम मे पहुँचे। ग्राम मे जाकर उन्होने पूछ-गछ करके यह पता लगा लिया कि इन दिनो नन्दिग्राम मे राजा श्रेणिक बिम्बसार के पुत्र, उनकी रानी नन्दिश्री तथा श्वशुर सेठ इद्रदत्त अपने सेवको सहित ठहरे हुए है। अतएव वह लज्जित तथा आनदित होकर वहाँ से गिरिव्रज लौट चले। वहा आने पर उन्होने सम्राट् को नमस्कार कर कुमार अभय की जो-जो चेष्टा देखी थी सब कह सुनाई। उन्होने महाराजसे कहा—

"महाराज उस कुमार को देखकर हम प्रथम दृष्टि मे ही समझ गये थे कि यह असाधारण बालक नन्दिग्राम निवासी नही हो सकता। वह सब लड़को से अधिक तेजस्वी, प्रतापी तथा राजलक्षणो से मडित था। उपस्थित बालकों में से उसके जैसा तेज किसी के मुख पर नही था। बाद मे लोगो से बातचीत करने पर तो हमको उसका यथार्थ परिचय भी मिल गया। अब आप जैसा उचित समझे करे।"

२३

पिता-पुत्र की भेंट

मध्याह्न होने मे अभी पर्याप्त विलम्ब है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की राजसभा भरी हुई है। सम्राट् समस्त सभासदो के बीच मे बैठे हुए शोभित हो रहे है जैसे अनेक पर्वतो के बीच मे सुवर्णमय सुमेरु पर्वत शोभित होता है। उन्होने अत्यधिक बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए है, जिनके रत्नो की प्रभा आखो मे चकाचौंध उत्पन्न कर देती है। वह सभी रग के रत्नो की प्रभा, देखने वाले को इन्द्र धनुष का भ्रम उत्पन्न कर रही है। महाराज एक स्फटिक पीठ के ऊपर बैठे हुए है। उनके ऊपर अत्यधिक श्वेत रेशमी वस्त्र का एक चदोवा तना हुआ था। उस चदोवे को चारो कोनो पर चार रत्नमय थम्भो ने उठाया हुआ है। उनको स्वर्ण-शृखलाओ से एक दूसरे के साथ बाँधा हुआ था। चदोवे में चारो ओर मोतियो की झालरे लगी हुई थी। सोने की मूठवाले अनेक चमर सम्राट् के ऊपर ढुलाये जा रहे है।

उनके सिहासन मे लगी हुई पद्मराग मणियो की रत्न-प्रभा उनके वक्ष-स्थल पर पडती हुई मधुकैटभ के वध से रक्त में सने हुए विष्णु का स्मरण करा रही है। उनके वस्त्रो में से चन्दन के इत्र की भीनी-भीनी सुगन्धि आ रही है। उनके गले मे पडे हुए बडे-बडे मोतियो की माला से उनका मुख तारामण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा की समानता कर रहा है। उनके भुजदण्डो में पडे हुए रत्नजटित अनन्त ऐसे जान पडते है, जैसे चन्दन की सुगन्धि से आकर्षित होकर नाग ही उनसे आकर लिपट गए हो। उनके कान मे कमल का फूल लटका हुआ है। उनके नेत्र फूले हुए कमल के समान है। उनके विविध तीर्थों के जल से धोये हुए बाल बडी कुशलता से काढे जाकर पीछे को बधे हुए है। उनका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान अर्धचन्द्राकार है। अपने समस्त सौन्दर्य से वह ऐसे दिखलाई दे रहे है, जैसे शिवजी के तृतीय नेत्र

से जल कर कामदेव ही फिर जी उठा हो। उनके चारो ओर अनेक दासिया अपने हाथो मे चवर लिये हुए ऐसी जान पडती है, जैसे पृथ्वी की देविया कामदेव की पूजा करने आई हो। वहाँ की रत्नमय पृथ्वी मे पडा हुआ सम्राट् का प्रतिविम्ब ऐसा दिखलाई दे रहा है, जैसे पृथ्वी ने उनको उनकी भक्ति के ही कारण अपने हृदय मे स्थान दिया हो। सम्राट् से थोडे नीचे उनके दाहिनी ओर एक सिहासन पर मगध-महामात्य वर्षकार बैठा हुआ है। उसके बाई ओर मगध के प्रधान सेनापति भद्रसेन बैठे हुए है। राजसभा मे अनेक माडलिक राजा, सामत तथा राजदूत बैठे हुए है। इस समय व्यावहारिक महाराज के सम्मुख कुछ आवश्यक पत्र उपस्थित करके उन पर सम्राट् की आज्ञाएँ ले रहा है। इस कार्य के समाप्त हो जाने पर महामात्य वर्षकार ने सम्राट् से कहा—

वर्षकार—राजकुमार अभय की अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा के समाचार मिले है सम्राट्! ऐसी विलक्षण बुद्धि तो बडे-बडे विद्वानो मे भी नही होती। उन्हे शीघ्र ही यहाँ बुलवाना चाहिये।

सम्राट्—तुम्हारा कथन ठीक है, वर्षकार! मै भी कुमार को यहाँ बुलवाने के सम्बन्ध मे ही विचार कर रहा था, किन्तु कुमार के यहाँ बुलाने का ढग भी मै ऐसा विलक्षण रखूगा कि उसमे कुमार को अपनी बुद्धि की एक और परीक्षा देनी होगी। अच्छा, नन्दिग्राम भेजने के लिये एक दूत को बुलवाओ।

महाराज के यह कहते ही एक दूत ने आगे बढकर महाराज से निवेदन किया—

दूत—मै नन्दिग्राम जाने के लिये उपस्थित हूँ महाराज!

सम्राट्—तुम अभी नन्दिग्राम चले जाओ। वहाँ जाकर तुम कुमार अभय से मिल कर उनसे कहना कि आपको महाराज ने बुलाया है, किन्तु उन्होने आपको आज्ञा दी है कि आप न तो मार्ग से आवे और न उन्मार्ग से आवे, न दिन मे आवे, न रात मे आवें, भूखे न आवे, अफरे पेट भी न आवे, न किसी सवारी मे आवे और न पैदल ही आवे, किन्तु गिरिव्रज नगर शीघ्र ही आवे।

"जो आज्ञा सम्राट्"

कह कर दूत वहाँ से तत्काल चला गया। उसने नन्दिग्राम पहुँच कर

अभयकुमार को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर महाराज का सन्देश उनको ज्यो का त्यो कह सुनाया। सम्राट् द्वारा कुमार के बुलाए जाने का समाचार सारे नन्दिग्राम मे फैल गया। इस समाचार को सुन कर वहाँ के समस्त ब्राह्मण फिर घबरा गए। उनके मन मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प उठने लगे। वह यही सोचने लगे कि "अब की बार हमारी रक्षा किसी प्रकार भी नही हो सकती। अब तक तो कुमार ने हमारे जीवन की रक्षा कर भी ली, किन्तु अव कुमार के चले जाने पर हमको सम्राट् के कोपानल मे भस्म होना ही पडेगा। वास्तव मे कुमार को सम्राट् ने गिरिव्रज बुलाकर बडा अनर्थ किया। हे ईश्वर! हम से ऐसा क्या पाप बन गया है, जिसके फलस्वरूप हम दु ख ही दु ख भोग रहे है। प्रभो! हमारी रक्षा करो!" इस प्रकार रोते-चिल्लाते हुए वे सब ब्राह्मण कुमार अभय की सेवा में उपस्थित होकर उच्च स्वर से रोने लगे। उनको ऐसी दु.खी अवस्था मे देखकर कुमार बोले—

"ब्राह्मणो! आप क्यो इतना खेद करते हो? सम्राट् ने मुझे जिस प्रकार आने को आज्ञा दी है, मैं उनके पास उसी प्रकार जाऊँगा। गिरिव्रज मे भी मै आप लोगो का पूरा ध्यान रखू गा। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करे।"

ब्राह्मणो को इस प्रकार धैर्य बधा कर कुमार ने अपने समस्त सेवको को तय्यार करने के लिये अपने नाना सेठ इन्द्रदत्त से कहा। उनकी आज्ञा के साथ उनके सभी अनुचर जाने के लिये तुरन्त तय्यार हो गए। सेठ इन्द्रदत्त एक रथ पर पृथक् बैठे। कुमार ने अपने लिये जो रथ मगवाया उसके बीच मे एक छीका बधवा दिया।

जिस समय दिन समाप्त होने पर सध्या काल हुआ ता कुमार ने गिरिव्रज की ओर को अपने समस्त सेवको तथा अगरक्षको सहित रथ को हकवा दिया। चलते समय रथ का एक पहिया मार्ग मे चलाया गया और दूसरा सडक की बगल मे उन्मार्ग मे डाल दिया गया। कुमार ने चलते समय चने का आधे पेट भोजन किया। उन्होने रथ मे जो छीका बधवाया था उसमे वह स्वय बैठ गए। इस प्रकार अनेक विप्रो के साथ अभयकुमार आनन्दपूर्वक गिरिव्रज पहुँच गए।

कुमार के सायंकाल तक गिरिव्रज पहुँचने का समाचार नगर में पहुँच ही चुका था। अत नगरवासियो की एक बडी भारी भीड़ उनके दर्शन करने को राजमार्ग-पर एकत्रित थी। नगर की स्त्रिया तो मार्ग के प्रत्येक मकान की छत पर जमा हो गई थीं। उनके आगे-आगे बाजा बजता जा रहा था, जिससे उनके मार्ग मे भीड बराबर बढती ही जाती थी। उत्सुक स्त्रियो मे तो उनको देखने की होड सी लग गई। कोई अपना रसोई घर छोडकर अपने छज्जे मे भागी तो कोई अपने बालक की एक आँख में काजल लगाकर दूसरी आँख मे बिना काजल दिये ही बालक को उठाकर भागी। कोई स्त्री अपने ही काजल लगा रही थी कि बाजो के शब्द से वह काजल की सलाई को जल्दी मे आख के स्थान पर, गाल पर ही लगाकर भागती हुई अपने छज्जे पर आई। कोई स्त्री अपने पैर मे लाल मेहदी लगा रही थी। वह मेहदी से अपने घर के सारे फर्श को खराब करती हुई अपने बालाखाने मे जा पहुँची। इस प्रकार स्त्रियो के ठट्ठ के ठट्ठ छज्जो, बालाखानो, अटारियों तथा चौखण्डो पर जमा हो गए और वह बडी उत्सुकता से कुमार को देखने लगी। कोई स्त्री, उनके सुन्दर मुख को, कोई उनकी भुजाओ को, कोई उनके चौड़े वक्षस्थल को तो कोई उनके चरणो को देख रही थीं। बालक, युवा तथा वृद्ध सभी कुमार के दर्शन करने को मार्ग में अत्यन्त उत्साह से जमा हो गए थे।

जनता की भीड के साथ-साथ कुमार की सवारी भी नगर में आगे-आगे बढती जाती थी। बाजो के पीछे-पीछे बंदीजन कुमार की विरुदावली का बखान कर रहे थे। मार्ग मे स्थान-स्थान पर पुरवासी राजकुमार की प्रशसा कर रहे थे। इस प्रकार राजमार्ग से जाते हुए कुमार अभय राजसभा के पास जा पहुँचे। उन्होने रथ से उतर कर अपने नाना सेठ इन्द्रदत्त के साथ राज-सभा मे प्रवेश किया। आज कुमार के आगमन के कारण दिन छिप जाने पर भी राजसभा पूरी तरह भरी हुई थी।

राजकुमार ने सभा में सम्राट् को रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान देखकर अत्यत विनयपूर्वक उनको नमस्कार करके उनके चरण छुए। महाराज ने उनको खेचकर अपनी गोद मे बैठा लिया। स्वागत सत्कार हो चुकने पर

पिता-पुत्र की भेंट

कुमार ने सम्राट् से कहा—

"पिता जी! मेरी आपसे एक प्रार्थना है। यदि आज्ञा हो तो निवेदन करू।"

सम्राट् श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—

"अवश्य कहो बेटा! क्या कहना चाहते हो।"

तब अभयकुमार ने कहा—

"पिता जी! मेरा निवेदन यह है कि यह नन्दिग्राम के विप्र आपकी सेवा मे आये है। यदि उन्होने कभी अनजाने मे कोई अपराध कर भी दिया तो आप अपने बड़प्पन का ध्यान करके इन्हे क्षमा कर दें। मेरी आपसे यह विनय है। मै उनको अभयदान दे चुका हूँ।"

अभयकुमार के यह शब्द कहते ही नन्दिग्राम के ब्राह्मण भी सम्राट् के चरणो मे गिर पडे और उनसे विनयपूर्वक क्षमा माँगने लगे। तब सम्राट् बोले—

"अच्छा, कुमार! जब तुम इनको अभयदान दे चुके हो तो हम भी इनको अभय करते है।"

फिर सम्राट् ने ब्राह्मणो की ओर मुख करके कहा—

"विप्रगण! आप प्रसन्नता से नन्दिगाम चले जावे। अब आपको किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नही। आपके किसी अधिकार मे किसी प्रकार की भी कमी नही की जावेगी।"

महाराज के यह शब्द सुनकर ब्राह्मणो ने कहा—

"सम्राट् की जय हो, कुमार अभय की जय हो। हमे आपने नवीन जीवन दान दिया। आपका कल्याण हो।"

इस प्रकार नन्दिग्राम के ब्राह्मण वहाँ से अत्यन्त प्रसन्न होते हुए अपने गाँव चले गए।

२४

युवराज-पद

मगध की राजसभा को आज विशेष रूप से सजाया गया है। प्रत्येक खभे तथा प्रत्यक दालान मे आज राजपताका आदि लगाकर सजाया गया है। फर्श पर पहिले से अच्छे फर्श बिछाकर आसनो की सख्या पर्याप्त बढा दी गई है। फर्श को भी काफी दूर तक बढा दिया गया है, जिससे उसके ऊपर अधिक व्यक्ति बैठ सके। आज जनता ने प्रात काल से ही राजसभा मे आना आरम्भ कर दिया। नगर मे इस बात का समाचार था कि आज राजसभा मे कोई महत्त्वपूर्ण राज-घोषणा की जानेवाली है। अतएव नगरनिवासी अत्यन्त उत्साहपूर्वक राजसभा मे आ रहे थे। दस बजते-बजते राजसभा का सारा आँगन ठसाठस भर गया। किन्तु आने-जाने वालो का ताँता अब भी लगा हुआ था। दस बजते-बजते राज्याधिकारियो ने भी आना आरम्भ किया। क्रमश सभामण्डप का अन्दर का भाग भी पूर्णतया भर गया। सभी राज्याधिकारियो के आ जाने पर प्रधान सेनापति भद्रसेन तथा महामात्य वर्षकार भी आकर अपने-अपने आसनो पर आ बैठे। इसी समय राजमहल की ओर के द्वार से राजकुमार अभय को साथ लिये सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार आते हुए दिखलाई दिये। उनको देखते ही जनता ने उच्च स्वर से कहा—

"सम्राट् श्रेणिक की जय"

"राजकुमार अभय की जय"

सम्राट् तथा राजकुमार के अपने-अपने आसन पर बैठ जाने पर महामात्य वर्षकार उठकर खडे हुए। वह कहने लगे—

"सम्राट्! राज्याधिकारी! पौर जानपद तथा उपस्थित महानुभाव सुने। मुझको अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज मुझे राजकुमार अभय का आप लोगो की ओर से स्वागत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनमे विलक्षण चातुर्य, अतुल पराक्रम तथा अलौकिक साहस है। सात वर्ष की आयु मे इतन लोकोत्तार गुणो का अस्तित्व बिना पिछले जन्म के पुण्य के सभव नही है। नन्दिग्राम के ब्राह्मणो की रक्षा करने मे इन्होने जिस चातुर्य का परिचय दिया है, उससे तो

इन्होने हमारी श्रद्धा को एकदम जीत लिया है। नगरनिवासी अभी से उनसे इतना प्रेम करते है कि वह जिधर निकलते है, दर्शनार्थियो के ठठ के ठठ लग जाते है। उनकी अलौकिक बुद्धि, जनप्रिय स्वभाव तथा न्यायप्रियता आदि लोकोत्तर गुणो के कारण उचित यही है कि उनको मगध साम्राज्य का युवराज बना दिया जावे। आप लोग मेरे इस प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार करे।"

इस पर सेठ इन्द्रदत्त बोले—

'श्रीमान् राजराजेश्वर सम्राट् महोदय! महामात्य! पौरजानपद! तथा नागरिक मेरा निवेदन सुने। महामात्य ब्राह्मण वर्षकार ने राजकुमार अभय के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है वह हम सभी को अतिशय प्रिय लगने वाला है। मै नगर के समस्त व्यापारी समाज तथा पौरजानपद की ओर से घोषणा करता हूँ कि वह सब इस प्रस्ताव के पक्ष मे है।"

इस पर सम्राट् बोले—

"आप लोगो ने जो कुमार के गुणो का वर्णन करके उनको युवराज पद देने का विचार प्रकट किया है इसे मै कुमार के अतिरिक्त अपना भी सम्मान मानता हूँ। मुझे अभिमान है कि मै ऐसे योग्य पुत्र का पिता हूँ।"

एक नागरिक—केवल योग्य पुत्र के पिता नही, वरन् योग्य पुत्र के योग्य पिता भी।

सम्राट—आपके इस विचार के लिये मै आपका कृतज्ञ हूँ। अब मै आपसे जानना चाहता हूँ कि क्या आप लोग इस प्रस्ताव से सहमत है।

इस पर सभी उपस्थित महानुभाव चुप रहे। तब सम्राट् फिर बोले—

"जो व्यक्ति इस प्रस्ताव के विरुद्ध हो वह अपना हाथ उठा दे।" इस पर किसी ने भी हाथ नही उठाया। सम्राट ने कहा—

"महामात्य वर्षकार का राजकुमार अभय को युवराज बनाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया जाता है।"

इस पर उपस्थित व्यक्तियो ने एक साथ

"युवराज अभयकुमार की जय"।

बडे जोर से बोली। इस पर सम्राट् ने उठकर अभयकुमार के सिर पर युवराज-पद का मुकुट रखा।

श्रमण गौतम

"बधाई है महाराज ! बधाई ! आप के कुमार सिद्धार्थ ने धनुषयज्ञ मे सब कुमारो को नीचा दिखला कर यशोधरा जैसे कन्यारत्न को वरण किया है।"

"महामत्री ! धन्यवाद। यह हमारे परम सौभाग्य की बात है। किन्तु आप जानते है कि मेरी चिन्ता केवल इतने से ही दूर नही हो सकती।" राजा शुद्धोदन ने उत्तर दिया।

"क्यो महाराज ! अब चिता का क्या काम ! अब तो कुमार गृहस्थी के बधन मे पड गये।"

"असित मुनि के उन वचनो को आप भूल गये महामत्री ! जो उन्होंने कुमार के जन्मोत्सव के समय उनके भविष्य के सबध मे कहे थे ? उन्होने बतलाया था कि ससार रूपी गड्ढे मे गिरते हुए प्राणियो का उद्धार करने के लिये ही इस बालक का अवतार हुआ है। यह एक बडा भारी त्यागी महात्मा बनेगा और यदि यह किसी रोगी, वृद्ध तथा मृतक को देख लेगा तो शीघ्र ही घर छोड देगा। अस्तु, मैंने कुमार का पालन-पोषण अभी तक बडी सावधानी से किया है। उसके चारो ओर सासारिक विषयो की इच्छा को भडकाने वाले साधन मै बराबर जुटाता रहता हू। फिर भी उसको मै प्राय कुछ सोचते हुए ही पाता हू। मै जानता हू कि कुमार त्यागी है। उसके मन को बडे से बडे विषय-भोग भी ससार में नही बाध सकते। यशोधरा ने कुमार के जीवन मे प्रवेश अवश्य किया है, किंतु देखना है कि वह कुमार को अभी कितने वर्ष घर में बाध कर रख सकती है।"

महाराज यह बात तो ठीक है। किन्तु हमें अपनी ओर से कसर क्यो करनी चाहिये ?"

"मेरा मतलब बिल्कुल यही था।"

घटना ईसा के जन्म से भी छै सौ तेईस वर्ष पहले की है। आजकल के नेपाल राज्य की इस समय जहा दक्षिणी सीमा है, वहा रोहिणी नदी के पश्चिमी किनारे पर उन दिनो शाक्यवंशीय क्षत्रियो की राजधानी कपिलवस्तु बसा हुआ था। वहा के राजा का नाम शुद्धोदन था। उनकी दो रानिया थी—मायादेवी तथा प्रजावती। राजा की ४५ वर्ष की आयु मे मायादेवी को गर्भ रहा। प्रसवकाल समीप आने पर मायादेवी ने अपने पति से इच्छा प्रकट की कि वह अपने पितृगृह कोलियो की राजधानी देवदह जाना चाहती है। राजा ने कपिलवस्तु से देवदह तक की यात्रा का महारानी के सम्मान के अनुरूप प्रबंध कर दिया। किंतु रानी देवदह पहुँचने भी न पाई थी कि मार्ग मे लुम्बिनी वन मे शाल वृक्ष के नीचे उनके प्रसव हो गया। यह वन भी कपिलवस्तु राज्य मे ही था। रानी की यात्रा समाप्त हो गई और वह वहा से वापिस कपिलवस्तु आई। यहा आने पर मायादेवी का प्रसव के सातवे दिन स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार गौतम बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व सन् ५६३ में हुआ।

राजा शुद्धोदन के अभी तक पुत्र नही हुआ था। अतएव उन्होंने बड़े उत्साह से पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जन्म के पाचवे दिन राजपुरोहित विश्वामित्र ने शिशु का नाम गौतम अथवा सिद्धार्थ रक्खा। सातवे दिन माता का स्वर्गवास होने पर इनकी विमाता प्रजावती ने इनका लालन-पालन किया।

राजकुमार का जन्म वृत्तान्त सुनकर असित महर्षि अपने भागिनेय नारद सहित कपिलवस्तु पहुँचे। उन्होने गौतम के शरीर का भलीभांति निरीक्षण करके उसमे महापुरुष के बत्तीस लक्षण तथा अस्सी अनुव्यंजन पाए। महर्षि ने महाराज के भाग्य की सराहना करके उनसे कहा कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजराजेश्वर होगा अथवा पूर्ण बुद्ध योगेश्वर होगा। उन्होने उसी समय अपने भागिनेय को उपदेश दिया कि यदि यह बालक सन्यास ले तो तुम इसके शिष्य होना।

क्रमश राजकुमार सिद्धार्थ बडा हुआ। वह बचपन से ही दयालु प्रकृति का था। वह प्राय अपने चचेरे भाई देवदत्त के साथ खेला करता था। देवदत्त शिकार का प्रेमी था, किन्तु सिद्धार्थ किसी भी जीव को दुख देने का विरोधी था।

एक बार सिद्धार्थ और देवदत्त अपने महल की छत पर खडे थे कि ऊपर कुछ कबूतर उडे। देवदत्त ने बाण मारकर एक कबूतर को घायल करके गिरा दिया। कबूतर के गिरते ही देवदत्त और सिद्धार्थ दोनो उसे लेने को दौडे। किंतु देवदत्त के पहुचने से पहले सिद्धार्थ उसको उठा चुका था। तब देवदत्त बोला—

"सिद्धार्थ उसे छोड़ दो वह मेरा शिकार है।"

"नही ! मै उसे नही छोडूंगा। मैने उसको शरण दी है।"

देवदत्त सिद्धार्थ के स्वभाव से परिचित था। अतएव उसको कबूतर के विषय में उससे झगड़ा करने का साहस नही पडा। सिद्धार्थ ने उस कबूतर की चिकित्सा की और अच्छा होने पर उसे उडा दिया।

कुमार की आयु आठ वर्ष की होने पर उन्हें शिक्षा के लिये विश्वामित्र को सौंपा गया। उन्होने कुमार को वर्ण तथा लिपि सिखला कर क्रमशः कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद, ज्योतिष तथा वेदो की शिक्षा दी। पच्चीस वर्ष की आयु तक उन्होने सभी विद्याए पढ ली।

राजकुमार सिद्धार्थ का ऊँचा माथा, चौडा सीना, लम्बी भुजाए और बड-बडे कान उनको महापुरुष प्रकट कर रहे थे। वह छोटेपन से ही एकातप्रिय, परम दयालु तथा दूसरे के दुखो से दुखी हो जाने वाले थे। अपने आमोदभवन और क्रीडा के उद्यान मे भी वह प्राय एकात मे बैठ जाया करते थे। उनकी इसी प्रवृत्ति से घबरा कर उनके पिता ने उनका यशोधरा से विवाह किया था। उनकी पत्नी यशोधरा उनके मामा दण्डपाणि की पुत्री थी, जो देवदह के राजा थे। गौतम के अट्ठाईसवें वर्ष मे राजकुमारी यशोधरा ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। इस बच्चे का नाम राहुल रखा गया। अब राजकुमार सिद्धार्थ का समय अधिक आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा।

× × ×

दोपहर ढलने को है। वसत ऋतु होने के कारण धूप मे अभी तेजी नहीं आई है। कपिलवस्तु के बाजार मे अच्छी चहल-पहल है। लोग अपने-अपने घर से निकल-निकल कर बाजारो मे घूम रहे है कि एक ओर से आवाज आई—

"मार्ग से हट जाओ! राजकुमार सिद्धार्थ की सवारी आ रही है।"

इस शब्द को सुनते ही भीड ऐसे छट गई, जैसे तालाब मे डला मारने पर काई फट जाती है। जनता ने राजकुमार की सवारी को आते हुए देखा। राजकुमार एक खुले रथ में बैठे हुए थे। उनके आगे-पीछे कुछ सवार चल रहे थे। गाडी मे आगे-पीछे अगरक्षक थे। उनके बराबर राज्य के एक अमात्य बैठे हुए थे।

राजकुमार अपनी गाडी में बैठे हुए बाजार से निकल कर उपवन के मार्ग पर पहुँचे तो उनके सामने एक वृद्ध पुरुष दिखलाई दिया। वृद्ध पुरुष की कमर पूर्णतया झुक गई थी। उसके गाल पिचक गये थे, और सारे बदन पर झुर्रिया पड गई थी। उसके बाल सन के समान सफेद हो गए थे। रह-रह कर उसको खासी का धसका आता जाता था। उसके नेत्र इतने कमजोर थे कि वह पृथ्वी को टोह-टोह कर बडी सावधानी से एक-एक पग बढाता जाता था। राजकुमार सिद्धार्थ ने जो उसको देखा तो वह उसको देखते के देखते ही रह गए। उन्होने मन में उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार किया किन्तु वह कुछ भी निश्चय न कर पाये। अत मे असमर्थ होकर उन्होने अमात्य से पूछा—

"अमात्य यह कौन है?"

"यह वृद्ध है कुमार?"

"यह वृद्ध किस प्रकार हो गया, अमात्य!"

"एक बार सबको इसी प्रकार स्वाभाविक रूप से वृद्ध होना पडता है। यही जीवन की वास्तविकता है।"

अमात्य की यह बात सुनकर कुमार और भी सोच मे पड गए। अब उनका टहलने में जी नही लग रहा था। उन्होने सेवको को पीछे लौटने की आज्ञा दी और बिना उपवन गए ही लौट कर घर आ गए।

कुमार रात भर उस वृद्ध के विषय में ही विचार करते रहे। वह सोच रहे थे

कि क्या मुझ को भी एक बार इसी प्रकार वृद्ध बनना पडेगा ? तब क्या जीवन मे कोई रस रह जावेगा ? इस प्रकार विचार करते-करते उनको नीद आ गई।

अगले दिन प्रात काल होने पर कुमार को फिर उसी चिन्ता ने आ घेरा। उन्होने भोजन किया, सगीत सुना और दिन के सभी कार्यों को नित्य के समान किया, किन्तु उनके मन मे यह विचार चलता ही रहा।

अपराह्न होने पर नित्य के समान वह अपनी गाडी मे बैठकर फिर घूमने चले। वह सडक को देखते जाते थे और उनके नेत्र उसी वृद्ध को ढूढ रहे थे। वह नगर के बाहिर निकले तो एक गाव वाला अपने रोगी पिता को एक बैलगाडी मे डालकर नगर के किसी वैद्य को दिखलाने जा रहा था। रोगी के शरीर मे असह्य पीड़ा थी और वह इतने जोर से कराह रहा था कि सुनने वालो का ध्यान उसकी ओर बरबस खिंच जाता था। राजकुमार सिद्धार्थ की दृष्टि जो उस रोगी पर गई तो उनके मन मे उसका समाचार जानने की इच्छा प्रबल हो उठी। वह बहुत समय तक उसके सम्बन्ध मे सोचते रहे और जब वह कुछ भी निश्चय न कर पाए तो साथ मे बैठे हुए अमात्य से बोले—

"आर्य ! बैलगाडी मे कराहने वाला यह पुरुष कौन है ?"

'कुमार ! यह रोगी है।"

"इसको रोग किस प्रकार हो गया, अमात्य ?"

"कुमार ! शरीर मे रोग तो हुआ ही करते है। जैसा कि कहा भी है कि **'शरीर व्याधिमन्दिरम्'** अर्थात् शरीर रोगो का घर है।

कुमार इस उत्तर को सुनकर और भी सोच मे पड़ गए। अब उनका जी टहलने से फिर उचट गया और उन्होने अपने सेवको को वापिस लौटने क आज्ञा दी। घर आकर भी उनको उस रोगी का ही ध्यान बना रहा। वह सोचते थे कि "क्या सब प्राणी इसी प्रकार रोगी होते है ? क्या इसी प्रकार मुझको भी कभी रोगी होना पडेगा ? वृद्धावस्था और रोग यही क्या जीवन की वास्तविकता है ? इत्यादि इत्यादि।"

इसी प्रकार के विचारों में उनकी रात निकल गई। प्रात काल हो जाने पर भी उनके मन से वह विचार न निकले। उन्होने भोजन किया, शयन किया

और सगीत सुना। वह राहुल के साथ खेले। यशोधरा के साथ उन्होने प्रेमालाप किया, किन्तु उनके हृदय में यह विचार चलते ही रहे। इसी प्रकार दोपहर ढलने का समय होने पर वह अपने रथ मे बैठ कर फिर टहलने को निकले।

अब की बार जो वह बाजारो मे आये तो उनके नेत्र बराबर उस वृद्ध तथा रोगी को खोज रहे थे। वह बाजार मे चारो ओर अत्यन्त ध्यान से देखते और आगे को बढते जाते थे। उसी समय उनको मार्ग मे कुछ लोग मिले जो एक मुर्दे को श्मशान लिये जा रहे थे।

उस मुर्दे को देखकर कुमार और भी सोच मे पड गये। उनकी यह बिल्कुल समझ मे न आया कि लोग एक आदमी को कधे पर उठाये हुए क्यो ले जा रहे है? फिर उनकी समझ मे यह भी नही आया कि वह आदमी बोलता क्यो नही? फिर वह यह सोचने लग कि वह लोग उसे कहा ले जा रहे है और फिर वह उसका क्या करेगे? उनके मन मे इस प्रकार बहुत से प्रश्न आते रहे और वह किसी भी प्रश्न का उत्तर अपने अन्दर से न निकाल सके। अन्त में उत्सुकता अत्यधिक बढ जाने पर उन्होने साथ मे बैठे हुए अमात्य से पूछा।

"अमात्य! वह व्यक्ति कौन है और यह लोग उसको इस प्रकार क्यों उठाये हुए हैं?"

"कुमार, यह व्यक्ति मर चुका है और अब वह केवल एक मुर्दा या शव है। यह लोग उसे श्मशान ले जाकर वहा फूक देगे।"

"है! क्यो फूक देगे वह उसे?"

"क्योकि अब उसका यह शरीर किसी काम नही आ सकता और यदि उसको जल्दी ही न फूका जावेगा तो उसमें दुर्गन्ध पैदा हो जावेगी, जो बढते-बढते इतनी तेज हो जावेगी कि उसको सहन नही किया जा सकेगा।"

"अच्छा! जीवन की वास्तविकता यही है? मुझको भी क्या एक दिन इसी प्रकार मरना होगा?"

"और क्या कुमार!"

कुमार महामात्य के इस उत्तर से अत्यधिक विचलित हो गए। अब फिर उनके लिये टहलना असभव हो गया और वह सेवको को वापिस लौटने को

आज्ञा देकर वापिस घर आ गये।

एक अन्य अवसर पर उन्होने सन्यासी को भी देखा। उसको देखकर वह सोचने लगे कि हम गृहस्थो से तो यह सन्यासी ही बेहतर है।

अब कुमार के मन मे अन्तर्द्वन्द्व जोर से मचने लगा। खाते पीते, उठते-बैठते उन्हे सोचते ही बीतता था। वह यह सोचा करते थे कि जीवन का स्वभाव ही यह है कि वह वृद्ध होकर रोग से मर जावे। किन्तु उनका मन यह स्वीकार नही करता था कि वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु सब के लिये अवश्यभावी है। उनका अन्तरात्मा कहता था कि यद्यपि उनका शिकार अधिकाश प्राणियो को बनना पडता है, किन्तु उनसे बचे रहना भी सभव है। अतएव वह उनसे बचने का उपाय हर समय सोचते रहते थे। वह सोचते थे कि ससार मे रहकर सासारिक कार्य करते हुए इन तीनो से बचना सभव नही है। इनसे बचने का उपाय केवल घर छोडकर त्यागमय जीवन व्यतीत करके ही किया जा सकता है। अतएव अब वह यह सोचने लगे कि किसी प्रकार गृहस्थी के जजाल से छूटकर घर को छोड दिया जावे। इस सम्बन्ध मे सोच-विचार करते-करते उनको अनेक दिन लग गये। अन्त मे उन्होने घर छोडकर चले जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया।

घर छोडने का निश्चय करने पर भी उनके मन मे अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहा। सबसे प्रथम उनको उस छोटे से बालक राहुल का ध्यान आया, जो उन को देखते ही अपनी छोटी-छोटी बाहे उनकी ओर फैला देता था। फिर उनको अपनी उस प्रेयसी का ध्यान भी आया, जिसको वह स्वयवर से जीत कर लाये थे, जिसका आधार उनके अतिरिक्त और कोई नही था। वह सोचने लगे कि स्त्री तथा बच्चे को बिना अपराध क्यो छोडा जावे। किन्तु फिर उनके मन मे विचार आया कि यह सांसारिक बधन ही तो सिद्धि के मार्ग की बाधाएँ है। इनको तोडे बिना तो वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्यु से बचने का उपाय खोजना असभव है। उस मार्ग पर जाने के लिये तो उनके मोह को छोडना ही पडेगा। इस प्रकार उन्होने उसी समय घर छोडने का निश्चय किया। 'श्रेय' ने 'प्रेय' पर विजय प्राप्त की।

उस समय अढाई पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। राजकुमार ने निश्चय

कर लिय. कि मुझे सभी की मायाममता छोडकर चले जाना चाहिये और आज ही जाना चाहिये। उस समय राजमहल के सभी दास-दासिया सो चुके थे। राजकुमार ने धीरे से वाहिर निकल कर अपने प्रिय सहचर छन्द को जगा कर उसे अपने प्यारे घोडे कन्थक को तैयार करने का आदेश दिया।

अब वह एक बार फिर अपने शयन कक्ष मे गए। उनकी प्रियतमा पत्नी यशोधरा उस समय गाढ निद्रा मे सो रही थी। उनका नन्हा सा पुत्र राहुल भी अपनी माता की बगल मे पडा हुआ सो रहा था। उन दोनो को देख कर एक वार राजकुमार के मन मे यह विचार आया कि वह अपने घर छोडने के विचार को वदल दे। किन्तु फिर वृद्धावस्था, रोग तथा शव का ध्यान हो आया और वह वहा से निकल तथा कन्थक पर सवार हो कर नगर से वाहिर आ गए।

राजकुमार सिद्धार्थ कपिलवस्तु से निकल कर घोडे पर बैठ कर जगल मे पूर्व दिशा की ओर चले। वह बराबर चलते ही गए, क्योकि उनको भय था कि पता चलने पर घरवाले उनको ढूढकर ले जावेगे। वह रोहिणी नदी को पार कर कोलियो के राज्य तथा पावा से भी आगे निकल गए। अन्त मे अनोमा नदी के किनारे जाकर उन्होने अपने राजसी आभूषण उतार दिये। वहा उन्होने अपने सेवक छन्द से कहा—'छन्द! बस मेरा और तुम्हारा यही तक का साथ था। अब तुम इस स्वामिभक्त घोडे को लेकर कपिलवस्तु लौट जाओ। यह अपने आभूषण तथा राज-चिह्न मै तुमको देता हूँ।"

"ऐसा न कीजिये स्वामिन्! यदि आप घर नही चलते तो मुझीको सेवा मे रहने दीजिये।"

"नही छन्द! अब मैने सभी सासारिक नाते तोड दिये है। मै तो इस शरीर से भी ममता छोडना चाहता हू। तुम्हारे रहने से मेरे मार्ग में बाधा आवेगी। तुम यहा से शीघ्र ही चले जाओ।"

अन्त मे अपनी एक भी न चलती देखकर सेवक घोडे को लेकर वहा से चला गया। सेवक और घोडे के चले जाने पर सिद्धार्थ ने अपने शिखा और सूत्र उतार कर अनोमा नदी मे ही बहा दिये।

जब सिद्धार्थ वहाँ से कुछ और दूर चले तो उनको एक निर्धन आदमी मिला।

को पूर्ण करने के लिये एक ओर को एक विशाल दीवार बना कर राजगृह की किलेबदी को सर्वथा अजेय बना दिया गया था। वास्तव मे राजगृह का निर्माण सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की रणविद्यापटुता का एक नमूना था। इस बार गर्म तथा ठडे पानी के बाईसो प्राकृतिक कुण्ड भी राजधानी के अन्दर ही आ गये थे। इससे राजगृह जल के विषय मे इतना अधिक आत्मनिर्भर हो गया था कि शत्रु द्वारा नगर के घेर लिये जाने पर उसे कभी भी जल का अभाव नही हो सकता था। गौतम सिद्धार्थ लिच्छावियो की राजधानी वैशाली से चल कर राजगृह चले गये।

२६

गौतम सिद्धार्थ तथा बिम्बसार

आज राजगृह नगर मे सब ओर लोगो के ठठ्ठ के ठठ्ठ लगे हुए है। राजमार्गों सडको और गलियो सभी मे लोग दो,-दो, चार-चार, बीस-बीस और तीस-तीस की टोलियो मे जमा होकर चर्चा कर रहे है। उनकी चर्चा का मुख्य विषय एक निरीह तथा अकिचन साधु है। उस समय एक स्थान पर इस प्रकार चर्चा हो रही थी।

एक—भाई, कितने आश्चर्य की बात है कि एक राजकुमार इस प्रकार भिखारियो जैसे फटे-पुराने वस्त्र पहिने घर-घर भिक्षा मागे।

दूसरा—अजी ! नालायक होगा। मा-बाप ने घर से निकाल दिया होगा ?

तीसरा—कैसी बात करते हो धनदत्त तुम ! घर वालो ने उसे नही निकाला, वरन् उसने ही घर को अपनी इच्छा से छोडा है।

धनदत्त—तो इस प्रकार फटे हाल घर-घर भिक्षा मॉग कर वह कौनसा अपने मा-बाप का नाम ऊँचा कर रहा है, मित्र यज्ञदत्त !

चौथा—भाई, उसको समझने की कोशिश करो। उसके सम्बन्ध मे इस प्रकार की अनर्गल बाते म्त करो धनदत्त ! वह ससार के सबसे बडे महापुरुषो में से एक है।

यज्ञदत्त—वह किस प्रकार ? मित्र भद्रक !

भद्रक—इसलिये कि एक राजकुमार होते हुए भी उसने अपने तथा ससार के कल्याण का मार्ग तलाश करने के लिये राजसम्पदा, माता-पिता, स्त्री-पुत्र तथा देवोपम भोगोपभोग सभी का त्याग किया है।

धनदत्त—अच्छा ! वह सचमुच मे ही राजवशीय है ? भला कहा का निवासी है वह ?

भद्रक—वह कपिलवस्तु के शाक्यवशीय राजा शुद्धोदन का एक मात्र पुत्र है। घर पर उसकी प्राणप्यारी पत्नी महारानी यशोधरा तथा एक प्यारा पुत्र

राहुल है। वह परा विद्या के साथ-साथ अपरा विद्या का भी विद्वान् है।

यज्ञदत्त—तो क्या फिर भी उसे माता-पिता ने घर से निकाल दिया ?

भद्रक—उसको निकालना तो क्या, वह तो अब भी उनके दर्शन के लिये लालायित है।

धनदत्त—तो फिर उसने घर छोड़ा क्यो ?

भद्रक—इसलिये कि वह भोग की अपेक्षा त्याग को अच्छा समझता है। वह जानता है कि भोगो से नरक तथा त्याग से स्वर्ग मिलता है।

धनदत्त—तो क्या उसने स्वर्ग की इच्छा मे घर छोड़ा ?

भद्रक—स्वर्ग की इच्छा से नही, वरन् मोक्ष की इच्छा से। वह मनुष्य को जन्म, रोग, वृद्धावस्था तथा मरण के दुखो से छुड़ाने का मार्ग खोजता फिर रहा है। वह जानता है कि इस मार्ग का अन्वेषण घर मे रह कर नही किया जा सकता। उसका पता त्यागी जीवन व्यतीत करके ही लगाया जा सकता है।

धनदत्त—तो क्या अभी तक उसको अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिली ?

भद्रक—तभी तो वह उपदेश नही देता। सफलता मिलने पर तो वह सब किसी को उपदेश देकर ससार के उन दुखो से छूटने का मार्ग बतावेगा।

धनदत्त—अच्छा ! अब मै समझा कि राजगृह के घर-घर मे इस निरीह अकिंचन युवक की चर्चा आज क्यो की जा रही है।

यह लोग इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि एक तीस पैतीस वर्ष का मैले वस्त्रो का साधु नगर के प्रधान द्वार से अन्दर घुसता हुआ दिखलाई दिया। उसके नेत्र बडे-बडे, माथा ऊँचा, सीना चौड़ा तथा कधे ऊँचे थे। वह बहुत कम बोलता और पाओ-प्यादे ही चलता था। उसको देखकर भद्रक अपने साथियो से बोला—

"वह देखो, गौतम सिद्धार्थ इधर से ही आ रहे है। सम्भवत वह सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार से मिलने जा रहे है। चले हम भी उनके पीछे चले।"

गौतम सिद्धार्थ के पीछे-पीछे पर्याप्त जन समूह था। वह लोग बीच, मे 'गौतम सिद्धार्थ की जय' 'कपिलवस्तु के राजकुमार की जय' आदि बोल-बोलकर उनका अभिनदन करते जाते थे। किन्तु सिद्धार्थ का ध्यान उनकी ओर नही था। वह

वहाँ से सीधे राजद्वार की ओर चले।

मध्याह्न होने में अभी विलम्ब था। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अभी भोजन के लिये बैठ ही रहे थे कि दौवारिक ने आकर समाचार दिया—

"सम्राट् की जय हो"

"क्या है दौवारिक ?"

"सम्राट् कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन का पुत्र शाक्यवशीय गौतम सिद्धार्थ भिक्षुक के वेष मे राजमहल की ओर चला आ रहा है। उसके पीछे उत्सुक जनता की बडी भारी भीड है। क्या मै उन सबको राजमहल मे आने दूँ !"

"अच्छा ! गौतम सिद्धार्थ भिक्षाटन करता हुआ राजगृह मे आ गया ? तब तो आज उनको भिक्षा देकर ही भोजन करेगे। दौवारिक ! कुमार को राजमहल में आने दे ! हा, उसके पीछे आने वाली जनता को द्वार पर ही रोक देना !"

दौवारिक के वापिस जाते-जाते गौतम सिद्धार्थ राजभवन के द्वार पर आ पहुँचे थे। दौवारिक ने उनको आगे जाने का मार्ग बतलाकर जनता को द्वार पर ही रोक दिया। सिद्धार्थ आगे बढते जाते थे, किन्तु उनकी दृष्टि नीचे थी। राजभवन के दास-दासियो, वहा की सजावट तथा वहा की अन्य वस्तुओ की ओर उनका लेशमात्र भी ध्यान न था। क्रमश वह सम्राट् बिम्बसार के भोजन कक्ष मे पहुँचे। यहा आने पर सम्राट् ने उनकी निम्नलिखित शब्दो मे अभ्यर्थना की—

"शाक्यपुत्र गौतम सिद्धार्थ का अभिनन्दन। श्रमणवर! आहार-पानी शुद्ध है। आप भोजन स्वीकार करे।"

"जैसी आपकी इच्छा। किन्तु मैं एक साधु के समान भोजन करूगा, एक राजकुमार के रूप मे नही।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

यह कह कर सम्राट् ने विविध सोने-चादी के पात्रो मे भोजन परसवा कर उनको अपने साथ आसन पर बिठला कर भोजन कराया। सिद्धार्थ के भोजन आरम्भ करने पर सम्राट् भी भोजन करने लगे। सिद्धार्थ ने अत्यन्त सयमपूर्वक भोजन किया। यद्यपि उनके थाल मे सम्राट ने छत्तीस प्रकार का

भोजन रखवा दिया था, और उन्होने उन सभी को खाया भी, किन्तु उन्होंने किसी खाद्य पदार्थ पर लेशमात्र भी अपनी रुचि अथवा अरुचि को प्रकट न किया। उनके भोजन कर चुकने पर सम्राट् ने उनसे कहा —

सम्राट् —कुमार ! आपने अपने प्यारे माता-पिता, राजसम्पदा, प्राणप्यारी पत्नी और छोटे से दुधमुंहे बच्चे को किस प्रकार छोड दिया ?

गौतम—जिस वस्तु को कभी न कभी विवश होकर अनिवार्य रूप से छोडना पडे उसे स्वय ही अपने आप छोड देने मे बुद्धिमानी है सम्राट् !

सम्राट्—मै आपका अभिप्राय नही समझा कुमार !

गौतम—बात बिल्कुल स्पष्ट है सम्राट् ! सासारिक भोगो से न तो कभी मन भरता है और न कोई उनको सदा ही अपने पास रख सकता है। मृत्यु प्रत्येक वस्तु का वियोग करा देती है। फिर नाशवान् वस्तुओ का त्याग करके ऐसी वस्तु प्राप्त करने का यत्न क्यो न किया जावे जो कभी नष्ट न हो और जिसको कभी भी छीना न जा सके।

सम्राट्—किन्तु क्या आप उस नित्य वस्तु को प्राप्त कर चुके ?

गौतम—नही सम्राट् ! अभी मुझे इसमे सफलता प्राप्त नही हुई। मै बारम्बार यत्न कर रहा हूँ, किन्तु अभी ठीक मार्ग का पता नही चला। यद्यपि मुझे निकट भविष्य मे ही सफलता प्राप्त करने की पूर्ण आशा है।

सम्राट्—किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि आपका समस्त प्रयत्न मृगमरीचिका मात्र सिद्ध न होगा ?

गौतम—इसका प्रमाण तो सफलता के अतिरिक्त और कुछ भी नही हो सकता।

सम्राट्—तब तो कुमार इसका केवल यही अर्थ हुआ कि आप अभी तक भी अधेरे मे ही भटक रहे है।

गौतम—मै आपको ऐसी बात मान लेने से रोक नही सकता।

सम्राट्—किन्तु कुमार ! मुझे आपके सुन्दर रूप, निर्दोष यौवन, अल्प अवस्था तथा अलौकिक गुणो को देखकर बारम्बार हृदय मे वेदना होती है। आप तपश्चरण के इस मार्ग का परित्याग कर दे। मै अपना समस्त

राज्य आपको देने को तैयार हू । आप यहा रहकर चाहे सब सुखो का भोग करे, चाहे घर मे रहते हुए ही साधना करते जावे, किन्तु आप कही न जावे।

गौतम—सम्राट् ! मुझे राज्य जैसे क्षणभगुर पदार्थ की लालसा होती तो मै अपने पिता शुद्धोदन का राज्य ही क्यो छोडता । मुझे तो जब तक पूर्ण बोध की प्राप्ति न हो जावेगी, मै इसी प्रकार प्रयत्न करता रहूगा ।"

गौतम के यह शब्द सुनकर सम्राट् तनिक लज्जित हो गए । उनको गौतम के चरित्र पर अत्यन्त श्रद्धा हुई । उन्होने गौतम से फिर कहा—

"अच्छा, कुमार ! मै आपको इस मार्ग का परित्याग करने को नही कहता किन्तु मेरा एक अनुरोध आप अवश्य स्वीकार करे ।

गौतम—वह क्या सम्राट् ?

सम्राट्—यह कि बुद्धत्व प्राप्त करने पर आप राजगृह अवश्य आने की कृपा करे और इस नगर के निवासियो को भी अपने अनुभव का लाभ पहुँचने दे ।

गौतम—हा, आपके इस अनुरोध को मै स्वीकार करता हू ।

२७

कोशल-राजकुमारी से सम्बन्ध

अर्द्धरात्रि का ममय है। राजगृह के सभी निवासी निद्रादेवी की गोद मे जा चुके है। किन्तु सम्राट् बिम्बसार के शयनकक्ष से प्रकाश की रेखा अभी तक वाहर आ रही है। दो प्रहरी द्वार से लगभग पचास गज की दूरी पर बैठे हुए ऊघ रहे है। कक्ष के भीतर बहुत बढिया सजावट है। दीवारो पर अनेक प्रकार के देवी-देवताओ के हास-विलास के चित्र लगे हुए है। एक ओर एक विस्तृत पलग बिछा हुआ है। बीचो-बीच दो-तीन पीठ पडे हुए है, जिन पर बैठे हुए दो युवक आपस मे वार्तालाप कर रहे है। दोनो की आयु लगभग बीस-पच्चीस वर्ष से अधिक नही है। उनमे से एक बोला—

"मित्र, तुमने कल कोशल के कुल पुरोहित तथा नाई को वापिस श्रावस्ती क्यो नही जाने दिया ? क्या तुम उस समय यह भूल गए थे कि मुझे महाराज प्रसेनजित् से घृणा है ?"

"मुझे सब कुछ स्मरण था सम्राट् ! मैंने उनको जानबूझकर रोका है। मैं मगध तथा कोशल के बीच कई वर्ष से चलने वाले शीतयुद्ध को प्रकट युद्ध का रूप देना नही चाहता था।"

"तो उसको आप किस प्रकार रोक लेगे महामात्य ?"

"सम्राट् ! आप जानते है कि वर्षकार का कोई कार्य गहन राजनीति से शून्य नही होता। मै कोशल तथा मगध की शत्रुता को समाप्त करना चाहता हू।"

"वह किस उद्देश्य से ?"

"सुनिये महाराज ! आप देखते है कि मगध के चारो ओर हमारे शत्रु ही शत्रु है। उत्तर मे हमारा सबसे प्रबल प्रतिद्वद्वी वैशाली गणतन्त्र है। यद्यपि गणतन्त्रो की साम्राज्य बढाने की कामना नही हुआ करती, किन्तु वह एकतत्र शासन प्रणाली के शत्रु होते है और सदा इस बात के लिये यत्नशील रहा करते है कि

उसे समाप्त कर उसके स्थान पर गणतन्त्र शासनप्रणाली स्थापित कर दी जावे। वैशाली के लिच्छावी गण का गणपति राजा चेटक हमारा प्रबल विरोधी है। वह भगवान् पार्श्वनाथ का अनुयायी जैन होने के कारण अपने आचार-व्यवहार मे इतना कट्टर है कि अजैन ससार से कोई सपर्क रखना नही चाहता। मगध पर उसकी सदा से क्रूर दृष्टि है। मुझे अपने चरो द्वारा इस बात के समाचार मिलते रहते है कि लिच्छावी युवको में मगध पर आक्रमण करने का उत्साह है। वैशाली तथा मगध के शीत युद्ध को समाप्त करने के लिए मैंने कई बार अप्रत्यक्ष रूप से यह यत्न किया कि हम दोनो राष्ट्र आपस मे विवाह-बधन मे बध जावे, किन्तु चेटक अपनी कोई कन्या अजैन को नही देना चाहता।"

"क्या राजा चेटक के कई कन्याए है ?"

"अजी क्या पूछना! उसके पूरी सात कन्याए है।"

"क्या सभी अविवाहित है ?"

"नही, उनमे से पाच का विवाह हो चुका है, और शेष दो कुमारी है।"

"उनके विवाह कहाँ-कहाँ हुए है ?"

"राजा चेटक की सबसे बड़ी पुत्री का नाम त्रिशला देवी है। उसको प्रियकारिणी तथा मनोहरा भी कहते है। उसका विवाह वैशाली के उपनगर कुण्डग्राम, कुण्डपुर अथवा कुण्डलपुर के निवासी राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ है। राजा सिद्धार्थ ज्ञातृक क्षत्रियो के गण के गणपति है।"

"क्या राजा सिद्धार्थ के साथ विवाह करने से राजा चेटक की राजनीतिक शक्ति मे वृद्धि हुई ?"

"नहीं, क्योकि राजा सिद्धार्थ के केवल एक पुत्र वर्द्धमान महावीर हुआ, जो राज-काज में चित्त न लगाकर जैन साधु हो गया। कहा जाता है केवल ज्ञान प्राप्त होने पर वह जैनियो का अतिम तीर्थङ्कर होगा।"

"राजा चेटक की अन्य पुत्रियो के विवाह कहा हुए ?"

"उनकी द्वितीय पुत्री मृगावती का विवाह वत्सदेश के राजा शतानीक के साथ कौशाम्बी में हुआ है। शतानीक को सार अथवा महारत्ननाथ भी कहा जाता है। इस विवाह से राजा चेटक की राजनीतिक शक्ति वास्तव मे बहुत

बढ गई है। राजा चेटक की तृतीय पुत्री वसुप्रभा का विवाह दशार्ण (दशासन, देश के हेरकच्छपुर (कमैठपुर) के स्वामी सूर्यवशी राजा दशरथ के साथ तथा चतुर्थ कन्या प्रभावती का विवाह कच्छ देश के रोरुकपुर के स्वामी महातुग के साथ किया गया है। उनकी पाचवी कन्या धारिणी को गाधार देश के महापुर के राजा महीपाल के पुत्र सात्यकि ने राजा चेटक मे मागा था, जिसे उन्होने अस्वीकार करके उसका विवाह चम्पापुर के राजा दधिवाहन के साथ किया। उसकी शेष दो कन्याए ज्येष्ठा तथा चेलना अभी कुमारी है। इनमे सबसे छोटी चेलना के रूप की प्रशसा अधिक सुनी जाती है। मैंने चेलना के साथ आपका विवाह करने का अप्रत्यक्ष प्रस्ताव किया था, किन्तु चेटक किसी अजैन को अपनी कन्या नही देना चाहता।"

"तब तो यह कहना चाहिये कि राजा चेटक का मित्रबल अपनी कन्याओ के विवाह के कारण बहुत अधिक बढ गया है।"

"मै आपको यही बतलाना चाहता था, सम्राट् ! मगध को आज यदि भय है तो केवल तीन राज्यो से।"

"किस-किस से ?"

"हमारा सबसे बडा तथा प्रबल शत्रु वैशाली का गणतत्र है, जो हमारे ठीक उत्तर मे तथा ठीक दम पडौस मे है। हमारा दूसरा विरोधी अवन्ति का राजा चण्ड-प्रद्योत है। वह अत्यत प्रतापी है, किन्तु उससे हमारी मित्रता है। अतएव उसकी ओर से हमको अधिक भय नही है। फिर वह मगध से पर्याप्त दूरी पर भी है। अतएव उससे हमारा युद्ध हो भी जाय तो हम को अधिक भय करने की आवश्यकता नही है। इसलिये हमारा सबसे बडा शत्रु केवल कोशल का राजा प्रसेनजित् ही रह जाता है। उसके साथ हमारा कई वर्ष से शीत-युद्ध चल रहा है। अब जान पडता है कि हमारे साथ दीर्घकाल से चलने वाले शीत-युद्ध को वह भी समाप्त करना चाहता है। यदि उसकी यह भावना न होती तो वह अपनी बहिन क्षेमा के विवाह का प्रस्ताव लेकर अपने राजपुरोहित को हमारे यहाँ कभी न भेजता। उसको दरबार मे देखते ही आपकी त्योरियाँ चढी देख कर मै समझ गया कि आप इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने वाले है, अतएव मैंने आपको उत्तर का

अवकाश न देकर उस बात को उस समय टाल दिया, जिससे इस विषय के ऊच-नीच परिणामो पर आपके साथ विचार-विनिमय किया जा सके।"

"तो इस सम्बन्ध मे आपका क्या विचार है ?"

"मै मगध की शक्ति को आपके विवाहो द्वारा बढाना चाहता हू। इसी लिये मैने आपके राजगद्दी पर बैठते ही अप्रत्यक्ष रीति से यत्न करके आपके लिये केरल के राजा मृगाक की पुत्री वासवी अपरनाम विलासवती के विवाह का यत्न किया था। आशा है कि यह विवाह शीघ्र ही होगा।"

"इस विषय मे तो मुझे आपकी राजनीति की वास्तव मे प्रशसा करनी पडेगी। आपके यत्न से उसने अत्यन्त विनयपूर्वक अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव हमारे पास भेजा था और हमने भी इसीलिये अत्यन्त सम्मानपूर्वक उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। किन्तु स्थान दूर होने के कारण विवाह अभी तक भी टलता ही जा रहा है।"

"इसी प्रकार मै इस विवाह को अस्वीकार करना नही चाहता। आज मगध तथा कोशल दोनो ही महाजनपद साम्राज्य बढाने के मनसूबे बॉध रहे है। दोनो ही एक दूसरे पर आक्रमण करने की योजना बना रहे है। यदि दोनो मे से किसी ने एक दूसरे पर आक्रमण किया तो दोनो के नष्ट हो जाने का अदेशा है, किन्तु इस विवाह के सम्पन्न हो जाने पर दोनो ओर एक-दूसरे पर आक्रमण की सभावना नष्ट हो जावेगी। तब हम दोनो अपने-अपने प्रभावक्षेत्र को बॉटकर उसमे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने २ पैर फैला सकेगे। हित के अतिरिक्त इस विवाह से हमको हानि किसी प्रकार की नही है। अतएव आप इस सम्बन्ध को तुरन्त स्वीकार करले। आप देख चुके है कि विवाह-सम्बन्धो द्वारा राजा चेटक आज कैसी प्रबल शक्ति बन गया है। हमको भी इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिये।"

'अच्छा वर्षकार! मुझे आप की सम्मति स्वीकार है। कल कोशल के राजपुरोहित का राजसभा मे सार्वजनिक सम्मान करके उनसे तिलक लेकर मुझे चढवा दो।"

२८

बौद्ध मत की शरण में

गौतम सिद्धार्थ सम्राट् बिम्बसार से वार्तालाप करके राजगृह के प्रसिद्ध आचार्य रामपुत्र रुद्रक के यहा आए। वह एक ससारप्रसिद्ध विद्वान् थे और अपने यहा ७९९ ब्रह्मचारियों को रखकर उन्हे शिक्षा देते थे। गौतम को अपने हाथो मे समिधाए लेकर आते देख कर आचार्य ने पूछा—

"क्या पढना चाहते हो ?"

"अध्यात्म विद्या"

"कहा के निवासी हो ?"

'मै कपिलवस्तु का निवासी था, किन्तु अब मै गृहत्यागी हूँ।'

"ओह! क्या तुम राजा शुद्धोदन के पुत्र गौतम सिद्धार्थ हो ?"

"ऐसा ही है गुरुदेव !"

इस प्रकार गौतम राजगृह मे आचार्य रुद्रक के गुरुकुल मे रह कर अध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद उनके पास अध्यात्म-शास्त्र का अध्ययन समाप्त करके गौतम बोले—

'आचार्यवर ! मैंने आपकी शिक्षा द्वारा श्रद्धा, वीर्य, समाधि और स्मृति को प्राप्त कर लिया है, किन्तु केवल इन्ही से निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ है। अतएव मै प्रज्ञा का भी साक्षात्कार करना चाहता हूँ। कृपया मुझे उसकी शिक्षा दीजिये।"

रुद्रक—यह विद्या मेरे पास भी नही है कुमार ! इसके लिये तुम किसी और गुरु को खोजो।

सिद्धार्थ—जैसी गुरुदेव की आज्ञा।

यह कहकर सिद्धार्थ वहा से चल दिये। उनके साथ उस आश्रम के पाँच अन्य ब्रह्मचारी भी प्रज्ञा-लाभ के लिये गौतम के साथ चले। बाद मे इन पाँचो

को पच भद्रवर्गीय कहा गया। ये छहो महात्मा भिक्षा ग्रहण करते हुए कई दिनो बाद गया पहुँचे। उन दिनो वहा कोई उत्सव मनाया जा रहा था। गौतम को वहाँ के साधुओ के चरित्र पर श्रद्धा नही हुई। अब उन्होने वहाँ तपस्या के योग्य स्थान ढूढा। गया से थोडी ही दूर उरुविल्व ग्राम मे निरजना नदी के किनारे एक समुचित स्थान पाकर गौतम वहाँ घोर तपस्या करने लगे। इससे उनको अत्यधिक निर्बलता आ गई। यहा तक कि एक बार तो वह मूर्छित होकर गिर पडे। गौतम ने वहा दो वर्ष तक तप किया। किन्तु इतने वर्षो तक तपस्या करन पर भी उन्हे कोई लाभ दिखलाई न दिया। अतएव वह तपस्या को अनावश्यक समझने लगे। अब उन्होने ग्राम मे प्रवश करके शरीर को पुष्ट करने का यत्न आरभ किया। उनके इस आचरण को देखकर पच महावर्गीय उनको समाधि-भीरु तथा पोच समझन लगे। वह गौतम का साथ छोडकर वाराणसी चले गए।

अब गौतम वहा से चल कर निरजना नदी को पार कर एक अश्वत्थ के नीचे बैठकर प्रज्ञा-लाभ करने का विचार करने लगे।

इस वृक्ष को उनके तपश्चरण के कारण बाद मे बोधिवृक्ष नाम दिया गया। उस समय वह तीन दिन से अनशन कर रहे थे और उनको बेहद भूख सता रही थी। अचानक उस समय वहा सुजाता नामक एक महिला खीर का भोजन लिये हुए आ गई। उसने सिद्धार्थ को पेट भर भोजन कराया। भोजन करके गौतम की आखे खुल गई और उनको यह बात जच गई कि शरीर को क्लेश देने से भी आत्मतत्त्व का बोध नही होता। यह विचार करके वह फिर ध्यान करने लगे। उस समय वह उच्चतम कोटि के ध्यान मे पहुच गए, जिससे 'मार' अथवा कामदेव ने उन पर सेना सहित आक्रमण किया। किन्तु गौतम सिद्धार्थ अत्यन्त धीर थे। अप्सराओ के नयन-बाण, उनके नूपुरो की आकर्षक ध्वनि तथा उनकी विविध काम-चेष्टाए उनको लेशमात्र भी विचलित न कर सकी। अन्त मे मार पराजित एवं लज्जित होकर भाग गया। गौतम ने वही 'बोध' प्राप्त किया। वे 'बुद्ध' हो गए।

बुद्ध का मुखमण्डल आत्मिक तेज से चमक उठा। उनको जीवन का

असली तत्त्व मिल गया। उन्होने निश्चय किया कि वास्तविक तत्त्व न तो शरीर को अत्यधिक कष्ट देने मे है और न उसके द्वारा अनेक प्रकार के भोग भोगने में है। व्यक्ति को किसी जीव को दु ख न देते हुए अपने व्यक्तिगत आचरण को सुधारना चाहिये। इसी में उसका कल्याण है। उन्होंने इस ससार को क्षणभगुर भी माना।

बोध प्राप्त करके उनको यह चिंता सवार हुई कि उस ज्ञान का उपदेश किसको दिया जावे। पचवर्गीय भिक्षुओ का ध्यान आने पर वह उनको उपदेश देने काशी चले। उन पाचो के नाम थे—कौडिन्य, वप्र, भद्रिय, महानाम और अश्वजित। उन्होने गौतम को आते देखकर उनको अर्घ्यपाद्य आदि न देने का निश्चय किया। किन्तु गौतम के समीप आने पर उनका यह सकल्प स्थिर न रहा और उन्होने उठकर उनका उचित सम्मान किया। गौतम ने कहा—

"मै बोध प्राप्त कर चुका हू और तुम्हे उपदेश देने आया हू"

पहिले तो उन्होने विश्वास न किया, किन्तु बाद मे अपने से सबसे बड़े कौंडिन्य का मत मानकर उपदेश सुनना आरम्भ किया। महात्मा बुद्ध ने उनको पाच दिन तक उपदेश दिया। पहले दिन कौडिन्य उसे मान गया और फिर क्रम से एक-एक दिन में एक-एक भिक्षु मानता गया। इस प्रकार बुद्ध ने पाच शिष्य बनाकर काशी के समीप सारनाथ मे प्रथम बार धर्मचक्र-प्रवर्तन किया। पचवर्गीय भिक्षुओ के बाद असित देवल का भागिनेय नारद भगवान् का उपदेश प्राप्त कर मौनी हो गया। इसके पश्चात् काशी के समृद्धिशाली सेठ का पुत्र यश तथा उसके चार मित्र परिव्राजक बने। इस पूरे काम मे श्रावण मास निकल गया और बुद्ध को अपना प्रथम चातुर्मास्य काशी मे ही व्यतीत करना पडा। इस प्रथम चातुर्मास्य में उनके कुल ६१ शिष्य बने। ऋषिपत्तनवन (सारनाथ) मे सघ का सगठन किया गया, जिससे बौद्ध मत के बुद्ध, धर्म और सघ तीनो अग विकसित हुए। बौद्धमत मे इन्ही को रत्नत्रय कहते हैं।

काशी का चातुर्मास्य समाप्त कर भगवान् ने उरुवेला जाते समय मार्ग मे कापास्य वन मे तीस भद्रीय कुमारो को शिक्षा देकर धर्मोपदेशार्थ चारों दिशाओं मे भेज दिया। बिल्व काश्यप, नदी काश्यप तथा गय काश्यप नामक तीनों भाई

भारी आचार्य थे । वह तीनो अपने एक सहस्र शिष्यो सहित भगवान् के शिष्य हो गए ।

भगवान् ने दूसरा चातुर्मास्य राजगृह में किया । इस बार सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार तथा बहुत से ब्राह्मणो ने बौद्धमत ग्रहण किया । इसी बीच उन्होने सारि-पुत्र और मौद्गलायन नामक भिक्षुओ को शिष्य बनाकर उन्हे अपने सब शिष्यो मे प्रधानता दी ।

बाद मे उन्होने अनेक विद्वानो, तपस्वियो और राजाओ को अपने मत की दीक्षा दी । दीक्षित भिक्षुओ के लिए 'विहारो' की स्थापना की गई । गौतम बुद्ध ने भिक्षुओ के अलावा बाद मे स्त्रियो को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया । स्त्रियो के लिए पृथक् 'विहार' बनाए गए । इन विहारो के लिए बुद्ध ने विस्तृत नियम स्वय बनाए ।

मगध के उत्तर मे उन दिनो नौ लिच्छावी तथा नौ मल्ल राजाओ का एक गणतन्त्र राज्य था, जिसकी राजधानी वैशाली थी । राजगृह तथा वैशाली दोनो ही बुद्ध के समय बौद्धमत के प्रधान केन्द्र थे । यद्यपि वैशाली लिच्छावी गणतन्त्र के प्रधान राजा चेटक जैनी थे, किन्तु वैशाली मे बुद्ध के मत का प्रचार राजगृह से कम नही था । बुद्ध के समय बौद्धमत की कीर्ति इतनी अधिक फैली कि वह उनकी जन्मभूमि कपिलवस्तु से भी आगे निकल गई । बुद्ध प्रत्येक देश में पैदल घूम-घूम कर अपने मत का प्रचार करने लगे ।

भगवान् बुद्ध ने जिस तत्त्वज्ञान का उपदेश किया, उसको चार आर्य सत्य कहा जाता है । वह यह है—१ सब कुछ क्षणिक तथा दुःख रूप है । २ ससार के क्षणिक पदार्थों की तृष्णा ही दुःखो का कारण है, ३ उपादान सहित तृष्णा का नाश होने से ही दुःखो का नाश होता है । ४ हृदय से अहभाव और राग-द्वेष की सर्वथा निवृत्ति होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है ।

भगवान् बुद्ध ने साधन के आठ अग बतलाए हैं । उनको आर्य अष्टाङ्ग मार्ग कहा जाता है । वह यह है—१ सत्य विश्वास, २ नम्र वचन, ३ उच्च लक्ष्य, ४ सदाचरण, ५ सद्वृत्ति, ६ सद्गुणो मे स्थिति, ७ बुद्धि का सदुपयोग तथा ८ सद्ध्यान । भगवान् बुद्ध ने धर्म-प्रचार के लिये अत्यधिक प्रयत्न किया और कष्ट भी कम नही सहे ।

२६

अभयकुमार की न्याय-बुद्धि

मध्याह्न होने मे अभी कुछ देर है। सम्राट् श्रेणिक की राजसभा पूर्णतया भरी हुई है। महाराज आज का राजकार्य समाप्त करके उठने ही वाले थे कि व्यावहारिक ने आकर निवेदन किया।

"राज-राजश्वर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय"

"क्या है व्यावहारिक ?"

"देव ! एक अभियोग नीचे के न्यायालयो से होता हुआ मेरे पास आया था, किन्तु वह इतना जटिल है कि मै भी उसका न्याय करने मे असमर्थ हूँ। इसलिये उसे सम्राट् की सेवा मे उपस्थित करने की अनुमति चाहता हू।"

"अच्छा, हम अनुमति देते हैं। अभियोग उपस्थित किया जावे।"

इसी समय व्यावहारिक ने राजसभा के एक कक्ष मे बिठलाई हुई दो भद्र-महिलाओं को राजसभा मे उपस्थित किया। दोनो महिलाओ की आयु लगभग तेईस-चौबीस वर्ष की थी। जिस समय वह दोनो महिलाए सम्राट् के सम्मुख उपस्थित हुई तो उनके अत्यन्त गौर वदन तथा अलौकिक सौंदर्य से सम्राट् सहित समस्त सभा के नेत्र चौंधिया गए। उनके समस्त शरीर पर रत्नजटित स्वर्णा-भूषण थे। सम्राट् इन अतिशय रूप वाली महिलाओं को राजसभा में लाए जाने पर आश्चर्य कर ही रहे थे कि व्यावहारिक बोला—

"अभियोग इन दो महिलाओं का है। इनमें बाईं ओर वाली महिला का नाम वसुमित्रा तथा दाहिनी ओर वाली का वसुदत्ता है। यह दोनो सेठ सुभद्रदत्त की पत्निया है।"

सम्राट्—सेठ सुभद्रदत्त का तो अभी-अभी देहान्त हुआ है न ? वह मगध के एक ग्राम के निवासी थे और विदेशो मे अपार धन-सम्पत्ति कमाकर अभी-अभी राजगृह मे आकर बसे थे।

व्यावहारिक—जी अन्नदाता ! यह दोनो उन्ही सेठ सुभद्रदत्त की पत्निया है।

सम्राट्—इन दोनो मे यह छ. मास का बालक किसका है ?

व्यावहारिक—इसी पर तो सारा झगडा है। यह दोनो ही उसे अपना-अपना बतलाती है।

सम्राट्—साक्षियो से किसका पक्ष अधिक पुष्ट प्रमाणित होता है ?

व्यावहारिक—सेठ सुभद्रदत्त राजगृह मे कुल दो मास से आया था। अतएव जो कुछ साक्षिया मिलती है वह केवल दो मास के अन्दर की है। साक्षियो से यही प्रमाणित होता है कि लडके पर इन दोनो का समान प्यार रहा है। लडके को ऊपरी दूध पिलाया जाता है, इसलिए दूध की साक्षी का तो एक दम अभाव है। दोनो उसे अपने-अपने पेट से उत्पन्न लडका कहती है। देखने वालो का कहना है कि बच्चे पर इन दोनो का समान प्यार था।

सम्राट्—सेठ सुभद्रदत्त तो राजगृह के एक गाव का ही निवासी था। उसके गाव से कुछ साक्षिया नही मगवाई गई ?

व्यावहारिक—गाव से भी साक्षिया मगवाई गई थी देव ! किन्तु वह तो और भी असतोषजनक सिद्ध हुई। उनसे केवल इतना ही सिद्ध हुआ कि सेठ सुभद्रदत्त उस गाव का निवासी था और दोनो सेठानिया उसकी परिणीता पत्नियाँ थी। वह इन दोनो को साथ लेकर सार्थवाह के साथ अपना एक निजी पात लेकर सुवर्णद्वीप व्यापार करने गया था और फिर वापस गाव नही गया।

सम्राट्—तो इसका यह अर्थ हुआ कि उसके यह बच्चा कही यात्रा मे हुआ और उसने अपनी यात्रा को राजगृह आकर समाप्त किया।

व्यावहारिक—"ऐसा ही है देव !"

सम्राट्—तब तो यह अभियोग बडा पेचीदा है। इसका निर्णय करना कुछ सुगम कार्य नही है।

फिर सम्राट् ने अभयकुमार की ओर देखकर उससे पूछा।

"क्यो अभयकुमार ! क्या तुम इस अभियोग का निर्णय कर सकोगे ?"

अभयकुमार— अवश्य कर सकू गा, श्रीमान् पिताजी।

तब सम्राट् ने व्यावहारिक से कहा—

"अच्छा व्यावहारिक, इस अभियोग को युवराज के सम्मुख उपस्थित करो। इसका वही निर्णय करेंगे।"

व्यावहारिक के उक्त दोनो सेठानियो को अभयकुमार के सामन उपस्थित करने पर अभयकुमार ने उनमें से एक से पूछा—

अभयकुमार—वसुमित्रा देवी! उस परमपिता परमात्मा की साक्षीपूर्वक अपना वक्तव्य दो।

वसुमित्रा—मै उस परमपिता परमात्मा की शपथपूर्वक यह कहती हू कि यह बालक सुमित्र मेरी कोख से उत्पन्न हुआ है। मै ही इसकी माता हूं, वसुदत्ता इसकी माता नही।

अभयकुमार—अब वसुदत्ता देवी तुमको क्या कहना है?

वसुदत्ता—युवराज! मै भी उस परमपिता परमात्मा की शपथपूर्वक यह कहती हू कि यह बालक सुमित्र मेरी कोख से उत्पन्न हुआ है और मै ही इसकी माता हू, वसुमित्रा नही।

अभयकुमार—तो तुम लोग सच्ची बात नही बतलाओगी? यह तो संभव नही है कि बालक दोनो की कोख से उत्पन्न हुआ हो। किन्तु इस पर दावा दोनो करती है, क्योकि जो बच्चे की माता सिद्ध होगी सेठ सुभद्रदत्त की अपार सम्पत्ति पर भी उसी का अधिकार होगा; किन्तु तथ्य का किसी प्रकार पता नही लगता। अस्तु मै तो बच्चे को आधा-आधा काटकर दोनो को दिये देता हू।

यह कहकर अभयकुमार ने बच्चे को लेकर उसके पेट पर नगी तलवार रख दी। वसुमित्रा यह देखकर धाडे मार-मार कर रोने लगी। उसने अभयकुमार की तलवार पकड कर उससे कहा—

"युवराज! बच्चे के दो टुकडे मत करो। इसे आप वसुदत्ता को ही दे दे। मै इस पर से अपने दावे को वापिस लेती हू और वसुदत्ता के पास ही इसका मुख देख लिया करूगी।"

यह कह कर वसुमित्रा अभयकुमार के पावों मे पड गई, किन्तु वसुदत्ता

इस सारे दृश्य को खडी-खडी देखती रही। इस पर अभयकुमार उस बच्चे को छोडकर बोले—

"यह सिद्ध हो गया कि बच्चा वसुमित्रा का है, मै बच्चा वसुमित्रा को देता हू।"

उन्होने वसुदत्ता की ओर देखकर कहा—

"निर्दयी राक्षसी! तू बच्चे की माता बनने का ढोग करती है और उसकी गर्दन पर तलवार देखकर मूर्ति के समान बनी खडी रही। तुझको मै असत्य बोलने के अपराध मे देशनिर्वासन का दण्ड देता हू। सेठ सुभद्रदत्त की समस्त सपत्ति के एकमात्र अधिकारी वसुमित्रा और उसका पुत्र होगे।"

तब व्यावहारिक ने सम्राट् से फिर कहा—

"देव! एक अभियोग और है। वह भी मेरी समझ मे नही आया।"

सम्राट्—अच्छा! उसे भी हमारे सामने उपस्थित करो।

व्यावहारिक ने एक आकृतिवाले दो व्यक्तियो के साथ एक स्त्री को उपस्थित किया। स्त्री अत्यधिक सुन्दर थी। उनको उपस्थित करके व्यावहारिक बोला—

व्यावहारिक—अन्नदाता! यह अभियोग कोशल जनपद के अयोध्या नगर से सम्राट् प्रसेनजित् ने स्वय भेजा है। बहुत कुछ यत्न करने पर भी इस अभियोग का वह निर्णय न कर सके तो उन्होने इसे महाराज के पास भेज दिया।

सम्राट्—अच्छा बोलो क्या अभियोग है?

व्यवहारिक—इस मामले मे वादिनी यह स्त्री है। इसका नाम भद्रा है। यह अपना मामला स्वय उपस्थित करेगी।

इस पर सम्राट् उस महिला से बोले—

सम्राट्—क्यो देवी! तेरा क्या अभियोग है?

भद्रा—देव! इन दोनो मे से एक व्यक्ति मेरा पति है। इनमे एक व्यक्ति नकली है जो मेरे पति का रूप बनाये हुए है। कृपया मुझे नकली व्यक्ति से छुडाकर मुझे मेरा असली पति दिलवा दे।

सम्राट्—यह तो बडा पेचीदा मामला है।

व्यावहारिक—तभी तो महाराज प्रसेनजित् ने उसे आपके पास भेजा है सम्राट्।

सम्राट्—क्या इन तीनो व्यक्तियो के विषय में इनका पिछला वर्णन भी भेजा गया है।

व्यावहारिक—भेजा गया है श्रीमान् !

सम्राट्—अच्छा, उसे पढकर सुनाओ।

व्यावहारिक—जैसी श्रीमान् की आज्ञा ! मै इसे पढकर सुनाता हू।

"इस स्त्री भद्रा का पति बलभद्र अयोध्या निवासी एक सच्चरित्र किसान है। इस स्त्री का अयोध्या के एक धनिक व्यक्ति वसत से गुप्त सम्बन्ध हो गया। बाद मे एक त्यागी महात्मा के उपदेश से इसने शीलव्रत ले लिया और वसन्त का साथ छोड दिया। वसन्त ने उस पर बहुत डोरे डाले, किन्तु यह उसके वश मे न आई। बाद मे वसन्त को इस स्त्री के लिये पागल दशा मे गलियो मे घूमते हुए देखा गया। कुछ समय पश्चात् वसन्त अयोध्या से गायब हो गया और बलभद्र का आकार बनाकर एक अन्य व्यक्ति असली बलभद्र को घर से निकालने लगा। इसके पश्चात् यह पता लगाना असम्भव हो गया कि असली बलभद्र कौन है।"

सम्राट्—यह तो बडा भयानक वर्णन है। यह अभियोग तो पहले से भी अधिक पेचीदा है।

फिर उन्होने अभयकुमार की ओर देखकर उनसे पूछा—

"क्यो कुमार ! तुम इस अधियोग का निर्णय कर सकोगे ?"

कुमार—सम्भवत कर तो सकूँगा।

सम्राट्—अच्छा देवी ! तुम्हारे अभियोग का निर्णय युवराज करेगे।

दोनो बलभद्रो का एक-सा रूपरग देखकर पहले तो अभयकुमार चकरा गए। उन्होने दोनो व्यक्तियो के शरीरो की भद्रा की सहायता से अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक जाच की, किन्तु उनको उन में लेशमात्र भी अन्तर न मिला। अन्त में सोचते-सोचते उनके हृदय मे एक विचार आया। उहोने दोनो बलभद्रो को एक सीखचेदार कोठरी में बन्द कर दिया। फिर उन्होने एक तूबी अपने सामने रखकर दोनो बलभद्रो से कहा—

"सुनो भाई बलभद्रो ! तुम दोनो मे से कोठे के सीखचो में से निकल कर

जो कोई भी इस तूबी के छिद्र से निकल जावेगा उसी को असली बलभद्र समझा जावेगा और उसी को भद्रा मिलेगी।"

कुमार के इन वचनो को सुनकर असली बलभद्र को बडा दुख हुआ। उसे विश्वास हो गया कि अब भद्रा मुझे कभी न मिलेगी, क्योकि मै तूबी के छेद से नही निकल सकता। किन्तु कुमार के इन वचनो से नकली बलभद्र को बडा हर्ष हुआ। उसने अपने शरीर को अत्यन्त पतला करके सीखचो से निकल कर ज्योही तूबी के अन्दर प्रवेश किया कि अभय कुमार ने फौरन तलवार का एक भरपूर हाथ तूबी मे मारकर उस नकली बलभद्र को जान से मार डाला। इसके पश्चात् उसने असली बलभद्र को कोठरी से निकाल कर उसे भद्रा के साथ अयोध्या जाने की अनुमति दे दी। कुमार की इस न्याय बुद्धि को देखकर सारी सभा मे बेहद हर्ष छा गया। तब महामात्य वर्षकार उठ कर बोले—

"युवराज मै आपको इस अनुपम एव विलक्षण बुद्धि के लिये बधाई देता हूं"

इसके पश्चात् सभा विसर्जित कर दी गई और सम्राट् भोजन के लिये उठ गए।

इस प्रकार पक्षपातरहित न्याय करने से अभयकुमार की कीर्ति चारो ओर फैल गई। उनकी न्यायपरायणता देखकर सभी उनकी प्रशसा करते थे। कोशल के पश्चात् अन्य अनेक देशो से भी उनके पास अभियोग आते रहते थे, जिनका वह अपनी विलक्षण प्रतिभा से तुरन्त निर्णय कर दिया करते थे।

३०

चित्रकार भरत

मध्याह्न होने मे अभी आधे पहर का विलम्ब है। क्वार मास होने के कारण धूप की गर्मी बहुत कुछ निकल गई थी, फिर भी वैशाली के सथागार का फर्श धूप से गर्म हो रहा है। उसके मत्स्य देश के उज्ज्वल श्वेत मरमर के सभामण्डप मे पडा हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब आखो मे ऐसी चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है कि उसके फर्श के काले पत्थर को देखने से ही चैन मिलता है। उसकी छत के काले पत्थर के एक सौ आठ खम्भे अभी तक सूर्य के ताप से बचे हुए हैं। सभा-भवन के चारो ओर भीतर की ओर रक्खी हुई हाथी दात की नौ सौ निन्यानवे चौकियो पर आठो कुलो के गण चुपचाप बैठे हुए हैं। सथागार के ठीक बीचो-बीच पत्थर की एक वेदी पर एक स्वर्ण-खचित सिहासन रखा हुआ है, जिस पर गणपति राजा चेटक बैठे हुए हैं। वेदी के ऊपर स्वर्णदण्डो पर एक चदोवा तना हुआ है, जिस पर अनेक प्रकार का तारकशी का काम हो रहा है। वेदी के तीनो ओर कटिनिया थी, जिनके निकट अनेक कर्णिक सन्निपात तथा राजसभा की कार्यवाही लिख रहे थे। राजा चेटक सभा मे आकर बैठे ही थे कि दौवारिक ने आकर निवेदन किया—

"लिच्छावि-कुलसूर्य गणपति महाराज चेटक की जय।"

"क्या है ? दौवारिक ?"

"महाराज ! कोशल देश का एक चित्रकार महाराज के दर्शन करना चाहता है। वह अपना नाम भरत बतलाता है और कहता है कि उसका उद्देश्य वैशाली के समस्त चित्रकारो से आशुचित्राङ्कन मे प्रतियोगिता करना है।"

"इतना आत्मविश्वास है चित्रकार भरत को अपने ऊपर कि उस को वैशाली के सभी चित्रकारो को पराजित करने का विश्वास है ? अच्छा उसको सम्मानपूर्वक अन्दर ले आओ।"

दौवारिक पीछे वापिस चला गया। उसके जाने के बाद कुछ देर मे ही एक युवक ने सथागार मे प्रवेश किया। उसकी आयु लगभग तीस वर्ष की थी, रग गोरा तथा बाल घुघराले थे। उसने सुन्दर वस्त्र पहिने हुए थे। कमर मे बाईं ओर एक सुन्दर म्यानवाली तलवार लटकी हुई थी, दाहिनी ओर एक छोटी-सी पेटी लटकी हुई थी, जो रेशमी वस्त्र मे लिपटी हुई थी। उसने आते ही गणपति राजा चेटक को अभिवादन करके कहा—

"लिच्छावि कुलभानु राजराजेश्वर गणपति महाराज चेटक की जय।"

"आओ चित्रकार! बैठो।"

चित्रकार के अपने निर्दिष्ट आसन पर बैठने पर गणपति न फिर प्रश्न किया—

"आप कहाँ के निवासी हो चित्रकार?"

"देव! मै निवासी तो अयोध्या का हू, किन्तु बाल्यावस्था मे जब से मैंने विद्याध्ययन के लिए जन्मभूमि को छोडा, तब से मुझे वहा फिर जाने का अवसर नही मिला।"

"आप ने कला की शिक्षा कहा पाई है?"

"मैंने शिक्षा तो तक्षशिला मे पाई है। किन्तु चित्रकला के जम्बूद्वीप भर में मुझे जहाँ-जहा भी विशेषज्ञ सुनने को मिले, मैंने उन सबके पास जाकर उनकी सेवा करने का फल लिया है।"

"अच्छा, तो तुमने जम्बूद्वीप भर का भ्रमण भी किया है?"

"देव हाँ, समस्त जम्बूद्वीप का नही तो उसके प्रधान-प्रधान नगरो की यात्रा अवश्य की है। मेरा दावा है कि चित्र बनाने में शीघ्र गति से याथार्थ्य उतारने मे मेरा मुकाबला कोई नही कर सकता।"

"इतना आत्मविश्वास है तुमको अपनी विद्या पर?"

"यह देव के चरणो की कृपा का ही फल है।"

इसके पश्चात् महाराज चेटक ने दौवारिक को बुला कर उससे कुछ कहा।

इसके थोडे समय पश्चात् ही कई चित्रकारो ने सथागार मे प्रवेश किया। उन सभी के पास चित्र बनाने की सभी सामग्री थी। उनके आने पर गणपति बोले—

"वैशाली के समस्त चित्रकार सुने, यह अयोध्यानिवासी कुशल चित्रकार भरत यहा आए हुए है। इनकी इच्छा वैशाली के समस्त चित्रकारो से प्रतिद्वन्द्विता करने की है। उनका दावा है कि शीघ्रतापूर्वक याथार्थ्य प्राप्त करने मे उनकी कोई बराबरी नही कर सकता। आप लोग किस चित्र के बनाने में प्रतियोगिता करेगे ?

"हम तो देव का चित्र ही बनाना अधिक पसद करेगे।"

"अच्छा यही सही। आप लोग अपने-अपने चित्रपट पर एक-एक चित्र शीघ्रतापूर्वक बनावे।"

गणपति राजा चेटक के यह कहते ही सब चित्रकारो ने अपने-अपने चित्रपट पर तूलिका द्वारा चित्र बनाना आरम्भ किया। भरत ने भी अपने चित्रपट पर चित्र बनाना आरम्भ किया, किन्तु उसने आरम्भ करने के बाद कुछ ही क्षणो मे चित्र बनाकर गणपति के सामने उपस्थित कर दिया। उसके इस चातुर्य को देखकर सब के सब चित्रकार अवाक् रह गए।

इसके बाद भरत बोला—

"सब चित्रकार मेरे निवेदन को सुने। वह अपने २ चित्र को पूरा कर ले। तब तक मै उनको दूसरा चमत्कार दिखलाऊँगा।"

यह कहकर उसने उपस्थित सभी चित्रकारो की सख्या पच्चीस के बराबर चित्रपट अपने पास रखकर एक-एक चित्रपट को अपने हाथ में लेकर उस पर तूलिका रख-रख कर उसे एक २ कर सामने के आसन पर रखना आरम्भ किया। फिर उसने सभी चित्रकारो को बुला कर उनमे से प्रत्येक के हाथ मे एक२ चित्रपट दे दिया। चित्रकारो को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि प्रत्येक चित्रकार के हाथ मे उसका अपना चित्रपट था। यह दृश्य देखकर वह सब चित्रकार भरी सभा मे भरत के चरणो मे गिर गए। तब उनमे से सबसे वृद्ध चित्रकार ललितकुमार ने राजा चेटक से कहा—

"देव! इन अयोध्यावासी महोदय से प्रतिद्वन्द्विता हम तो क्या इन्द्र की सभा का भी कोई चित्रकार नही कर सकता। इनको तो निश्चय से किसी देवताकी सिद्धि है, जिसकी सहायता से यह जिस व्यक्ति का मन मे ध्यान करके चित्रपट पर

तूलिका रखते है उस का चित्र तत्काल चित्रपट पर बन जाता है। हम इनके साथ प्रतिद्वन्दिता करने मे असमर्थ है।"

इस पर राजा चेटक बोले—

"अयोध्यानिवासी चित्रकार ! हम तुमको वैशाली के समस्त चित्रकारो को प्रतिद्वद्विता मे पराजित करने पर बधाई देते है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम तुमको वैशाली मे निवास की पूर्ण सुविधा देगे। हमारी इच्छा है कि तुम हमारी सन्तान को चित्रकला की शिक्षा दो।"

इस पर भरत ने उत्तर दिया—

"मै इसको अपना सौभाग्य समझूगा देव ! अभी मैने कही अपना घर बनायाँ भी नही है। यदि महाराज की ऐसी कृपा रही तो मै वैशाली को ही अपनी जन्म-भूमि मानकर यहाँ की नागरिकता प्राप्त करने का यत्न करूगा।"

राजा—हम तुमको अपने राजमहल का वह भवन रहन के लिये देते हैं, जो अभी तक हमारे अतिथि-निवास का काम देता रहा है। तुम को वहा सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुए तैयार मिलेगी।

भरत—मै अनुग्रहीत हुआ देव ! मै अभी उस भवन मे जा रहा हू।

तभी दोपहर के विश्राम का घटा बजा और राजा चेटक सहित अष्ट कुल के सभी नौ सौ निन्यानवे राजा तथा अन्य सभासद अपने-अपने घर चले गए। राजा चेटक भरत को अपने साथ लेकर अपने घर के समीप अतिथिशाला मे ठहरा आए। यहा उन्होने उसके आतिथ्य की सम्पूर्ण व्यवस्था करदी।

राजा चेटक की पटरानी का नाम सुभद्रा था। उससे राजा चेटक की सात कन्याए उत्पन्न हुई थी—

१ त्रिशला देवी का विवाह वैशाली के उपनगर कुण्ड ग्राम कुण्डपुर अथवा कुण्डल पुर के निवासी नाथवशी अथवा ज्ञातृकवशीय राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था। त्रिशला देवी को प्रियकारिणी तथा मनोहरा भी कहा जाता था।

२ द्वितीय कन्या मृगावती का विवाह वत्सदेश के राजा शतानीक के साथ कौशाम्बी मे हुआ था। शतानीक को सार अथवा महाराजनाथ भी कहते थे। इन दोनो का पुत्र उदयन अपने पिता के बाद बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

३. तृतीय कन्या वसुप्रभा का विवाह दशार्ण (दशासन) देश के हेरकच्छपुर (कमैठपुर) के स्वामी सूर्यवशीय राजा दशरथ के साथ हुआ था।

४ चतुर्थ पुत्री प्रभावती का विवाह कच्छदेश के रोरुकपुर के स्वामी महातुर के साथ किया गया था।

५. पाचवी पुत्री धारिणी का विवाह अगदेश के राजा दधिवाहन के साथ चम्पापुर मे किया गया था।

राजा चेटक की शेष दो कन्याए ज्येष्ठा तथा चेलना अभी कुमारी थी। इनमे चेलना अधिक सुन्दर थी। उसके सौन्दर्य की प्रशसा देश-विदेश तक फैल चुकी थी। मगध का महामात्य वर्षकार भी उसको सम्राट बिम्बसार के लिये माग चुका था। किन्तु राजा चेटक जैनी था। वह अपनी पुत्री का विवाह बौद्ध-धर्मावलम्बी बिम्बसार के साथ करने को किसी प्रकार भी तैयार न हुए। भरत जब यहा रहने लगा तो राजा चेटक की दोनो छोटी पुत्रिया भी उसके पास आने जाने लगी। भरत ने उनके भी अनेक चित्र बनाए।

एक बार राजा चेटक ने चित्रकार भरत को अपनी पुत्रियो के साथ अट्टहास करते हुए देख लिया। इससे उनके मन मे सदेह हुआ कि ऐसा न हो कि यह प्रेम बढते-बढते अनुचित रूप धारण कर ले। वह भरत की स्वतत्रता पर अकुश लगाना नही चाहते थे, क्योकि ऐसा करने से यह समाचार नगर की चर्चा का विषय बन जाता। फिर वह अपनी पुत्रियो पर भी पाबदी लगाना नही चाहते थे, क्योकि ऐसा करने पर भी समाचार किसी प्रकार फूट ही निकलता। अतएव उन्होने इस विषय पर मन ही मन विचार करके यह निश्चय किया कि भरत को गुप्त रूप से मरवा दिया जावे।

राजा चेटक ने यह निश्चय करके अपने विश्वासी सेवको को यह कार्य दिया कि वह भरत को नगर के बाहर किसी एकान्त स्थान मे ले जाकर उसकी हत्या करदे, किन्तु उन सेवको मे से एक भरत पर अत्यधिक श्रद्धा रखता था। उसने भरत को उसकी आसन्नमृत्यु का समाचार देकर उसे परामर्श दिया कि वह वैशाली से तत्काल भाग जावे।

भरत ने जो यह समाचार सुना तो वह अत्यन्त घबरा गया। उसने उद्यान

जाने के बहाने से अपना अश्व तैयार कराया और चलने के लिये तैयार हो गया। उसने विचार किया कि यदि अधिक सामान लिया गया तो लोगों को भागने का सदेह हो जावेगा। अतएव वह केवल एक चेलना के चित्र को लेकर वैशाली से भाग चला।

रात्रि के समय जब राजा चेटक उद्यान से घूम कर वापिस लौटे तो उन्होने अपने उन सेवको को एकान्त मे बुलाकर उनमे से भद्राश्व से कहा—

"क्यो भद्राश्व! क्या तुमने भरत को मार डाला ?"

इस पर भद्राश्व बोला—

"देव! भरत आज दोपहर से ही न जाने कहा भाग गया। हमने उसको सब जगह ढूढा, किन्तु हमको उसका कही भी पता नही मिला।"

"तब तो यह समझना चाहिये कि वह वैशाली से भाग गया ?"

"निश्चय से महाराज! क्या उसका पीछा किया जावे ?"

"नही पीछा करने की आवश्यकता नही है। हमको तो उससे अपना पीछा छुडाना था। यदि इस प्रकार यहा से चला गया तो यह और भी अच्छा हुआ।"

३१

भगवान् महावीर की दीक्षा

वैशाली के अष्टकुल मे ज्ञातृक क्षत्रियो का बडा मान था। वैसे लिच्छावियों को अपने कुल का इतना अधिक अभिमान था कि वह अपने रक्त मे अन्य रक्त का सम्मिश्रण नही होने देते थे, किन्तु ज्ञातृक क्षत्रियो को भी उनसे कम खानदानी नही माना जाता था। ज्ञातृको को ज्ञातृकवशीय के अतिरिक्त नाथवशीय भी कहा जाता था। उनकी राजधानी कुण्डपुर वैशाली से लगभग बारह तेरह मील दूर थी। कभी उसको कुण्डग्राम भी कहा जाता था, किन्तु इन दिनो उसे कुण्डपुर अथवा कुण्डलपुर ही कहा जाता था। जब तक वैशाली का गणतन्त्र नही बना था, वह एक छोटी बस्ती थी। किन्तु बाद मे वह बढते-बढते कुण्डपुर से मिल गई और कुण्डपुर को भी उसका ही एक उपनगर माना जाने लगा।

ज्ञातृक गण के गणपति कश्यपगोत्रीय राजा सिद्धार्थ थे। उनका वैशाली के कुलो के राजाओ मे अच्छा मान था। लिच्छावी लोग तो उनका इतना अधिक सम्मान करते थे कि बैशाली के लिच्छावी गणपति राजा चेटक ने अपनी सबसे बडी पुत्रो त्रिशला देवी का उनके साथ विवाह किया था। राजा सिद्धार्थ को इस प्रकार उत्तम कुल, राजप्रतिष्ठा तथा उच्चवशीय अनुकूल पत्नी सभी प्रकार के सुख प्राप्त थे।

प्रात काल का सुन्दर समय था। आषाढ शुक्ल छट होने के कारण ऋतु अत्यन्त सुहावनी थी। रात्रि मे वर्षा हो जाने के कारण इस समय हल्की-हल्की ठड से वसत ऋतु के जैसा दृश्य उपस्थित था। त्रिशला देवी का मन आज बिस्तर छोडते ही इतना अधिक प्रसन्न था कि जैसे कोई अक्षय निधि मिल गई हो। वह मन ही मन प्रसन्न थी, किन्तु उसको यह पता नही था कि यह प्रसन्नता किस बात की थी। उसने शय्या छोडकर प्रथम अपने इष्ट देव का ध्यान किया और फिर शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर उत्तम वस्त्रालकार धारण

किये। इस समय राजा सिद्धार्थ भी नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपनी अध्ययन-शाला मे बैठे थे कि त्रिशला देवी ने वहा जाकर कहा—

"महाराज का कुछ गम्भीर अध्ययन चल रहा है क्या ?"

"नही, ऐसी कोई बात नही। आओ, चली आओ। निश्चय से तुम मेरे अध्ययन कक्ष मे विना विशेष कारण के नही आती। तुम्हारा मुख आज विशेष रूप से प्रसन्न भी है। क्या कोई आनन्ददायक समाचार है।

"आज रात्रि के पिछले पहर मे मैने अनेक स्वप्न देखे। यद्यपि उन स्वप्नो मे मुझे कोई खास बात मालूम नही देती, किन्तु न जाने क्यो मेरा मन उनको देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा है। आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वप्नो की सख्या अनेक होते हुए भी मुझे वह अभी तक अच्छी तरह से याद है।"

"भला तुमने कुल कितने स्वप्न आज रात देखे ?"

"पूरे सोलह।"

"अच्छा, सुने तो तुमने क्या-क्या स्वप्न देखे है ?"

"उन्ही को सुनाने को तो मै आप के पास आई हू। आप निमित्त शास्त्र के एक असाधारण विद्वान् गिने जाते है। मेरे स्वप्नो का फल आप अवश्य कह सकेगे। मेरा विश्वास है कि उनका फल अवश्य ही उत्तम होगा।"

"अच्छा, तुम अपमे स्वप्नो को सुनाओ।"

"सबसे प्रथम महाराज ! मै क्या देखती हू कि १ मेरे सामने एक हाथी खडा हुआ है। उसके गण्डस्थल से मद बह रहा था। वह ऐरावत के समान ऊँचा था। २ फिर मैने एक बैल देखा। वह बैल चन्द्रमा की चादनी के समान सफेद था। ३ बैल के पश्चात् मैने एक भयानक सिह देखा। सिह का रग लाल था और उसको देखने से भय लगता था। ४ उसके पश्चात् मैने लक्ष्मी को देखा। लक्ष्मी कमल के ऊपर बैठी हुई थी और उसके दोनो ओर खडे हुए दो हाथी उसको स्वर्णकलशो से स्नान करा रहे थे। ५ फिर मैने दिव्य फूलो की एक माला देखी। उसके फूलों मे से दिव्य सुगन्ध आ रही थी। ६ इसके पश्चात् मैने सोलहो कलाओं से चमकते हुए पूर्ण चन्द्रमा को देखा। नक्षत्र-मण्डल तथा तारा-गण के बीच में खिला हुआ चन्द्रमा उस समय बड़ा सुन्दर दिखलाई दे रहा

था। ७, चन्द्रमा के पश्चात् मैने उदयाचल पर उदय होते हुए बाल सूर्य को देखा। ८ फिर मैने दो कलशो को देखा। वह दोनो सोने के बने हुए थे। ९ इसके पश्चात् मैने जल के भीतर दो मछलियो को देखा। वह दोनो सरोवर के जल मे बडे आनन्द से क्रीडा कर रही थी। १० फिर मैने एक सुन्दर सरोवर को देखा, जिसमे उत्तम सुगधि वाले कमल फूल रहे थे। ११ इसके पश्चात् मैने उत्ताम समुद्र देखा। समुद्र मे ज्वार-भाटा आ रहा था, जो उसके किनारे को झकझोरे डालता था। १२ फिर मैने एक सुन्दर सिहासन देखा। उसमे स्थान-स्थान पर जडी हुई मणिया अत्यन्त शोभा उत्पन्न कर रही थी। १३ सिहासन के बाद मैने देवताओ के विमानो को आकाश मे आते हुए देखा। विमानो मे लगे हुए अनेक प्रकार के रत्न अपनी प्रभा से दिशाओ को प्रकाशित कर रहे थे। १४ फिर मैने धरणेन्द्र के रथ को देखा, जिसके पहिये पृथ्वी को खोदे देते थे। १५ इसके बाद मैने रत्नो के एक ढेर को देखा, जिसकी ज्योति दशो दिशाओ को प्रकाशित कर रही थी। १६ इसके पश्चात् मैने ऐसी अग्नि-शिखा को देखा, जिसमे धुआ नही था। इन सोलह स्वप्नो के पश्चात् मैने एक हाथी को अपने मुख मे प्रवेश करते देखा। अब आप कृपा कर मुझे इन स्वप्नो का फल बतलावे।

राजा सिद्धार्थ—रानी! तुम्हारे स्वप्न बहुत अच्छे है। तुम ध्यान देकर सुनो। मै तुम्हारे एक-एक स्वप्न का फल कहता हू। समस्त स्वप्नो का फल यह है कि तेरे गर्भ से एक अलौकिक बालक का जन्म होगा। प्रथम स्वप्न हाथी का फल यह है कि तेरा पुत्र धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाला होगा। बैल धर्म का चिन्ह है। इसका फल यह है कि तुझे धर्म से सुख की प्राप्ति होगी और वैसा ही तेरा पुत्र भी होगा। सिह का अर्थ यह है कि तेरा पुत्र अत्यन्त बलशाली होगा और वह अपने तपश्चरण से अपने सभी जन्मो के कर्मफल को नष्ट कर देगा। स्नान करती हुई लक्ष्मी का फल यह है कि तेरे पुत्र को देवता लोग सुमेरु पर्वत पर क्षीर सागर के जल से स्नान करावेगे। सुगधित पुष्पो की माला का फल यह है कि तेरे पुत्र का शरीर अत्यन्त सुगधित होगा। सोलह कलाओ को प्रकाशित करने वाले पूर्ण चन्द्रमा का फल यह है कि तेरा पुत्र अपनी वाणी से धर्म का विस्तार करेगा। सूर्य का फल यह है कि तेरा पुत्र अज्ञान रूपी महान्

तम को नष्ट करने वाला होगा। दो कलश तेरे पुत्र के ज्ञान तथा ध्यान को प्रकट करते है। दो मछलियो का फल यह है कि तेरे पुत्र को सभी सुख प्राप्त होगे। कमलसहित सरोवर का अर्थ यह है कि तेरे पुत्र का शरीर सभी उत्तम लक्षणो सहित सुन्दर होगा। समुद्र का फल यह है कि तेरे पुत्र को समुद्र के समान ज्ञान अथवा केवल ज्ञान प्राप्त होगा। सिहासन का फल यह है कि तेरे पुत्र का पूजन तीनो लोक करेगे। देवताओ के विमान का फल यह है कि तेरा पुत्र देवलोक को छोडकर तेरे गर्भ मे आवेगा। धरणेन्द्र के रथ का फल यह है कि तेरा पुत्र जन्म से ही ज्ञानी होगा। रत्नो की राशि देखने का फल यह होगा कि तेरा पुत्र सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय का धारक होगा। अग्नि-शिखा देखने का फल यह है कि तेरा पुत्र सभी कर्मो को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेगा। तेरे मुख मे जो गज ने प्रवेश किया है उसका फल यह है कि चौबीसवे तीर्थङ्कर ने तेरे गर्भ मे प्रवेश किया है।

"तब तो महाराज मेरे स्वप्न वास्तव मे बहुत अच्छे है।"

रानी यह कहकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने कमरे मे चली आई।

अब उसका गर्भ प्रतिदिन बढने लगा। रानी को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता था कि गर्भ के कारण उसको वमन आदि कोई भी उपद्रव कष्ट नही देते थे। रानी के दस मास देखते-देखते ही व्यतीत हो गए। अन्त मे उसने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन एक अत्यन्त सुन्दर बालक को जन्म दिया। राजा सिद्धार्थ ने पुत्र के जन्म का उत्सव अत्यन्त समारोह से मनाया और याचको को खूब दान दिया। दसवे दिन बच्चे का नाम वर्द्धमान रखा गया। पाच वर्ष की आयु मे उनको पढने बिठला दिया गया। अब वह लडको के साथ खेलने जाने लगे।

वर्द्धमान बचपन से ही बडे बलवान् थे। जब उनकी आयु आठ वर्ष की हुई तो एक बार वह लडको के साथ खेल रहे थे कि एक हाथी पागल होकर अपनी साकल तुडा कर भाग निकला। अचानक वह उधर ही आ गया, जहा वर्द्धमान अन्य लडको के सग खेल रहे थे। हाथी को देखकर अन्य बालक तो भाग गए, किन्तु वर्द्धमान न भाग सके। हाथी ने उनको पकडने के लिये- उनके ऊपर सूड

चलाई, किन्तु वर्द्धमान बड़ी कुशलता से उसकी सू ड के ऊपर से चढकर उसके मस्तक पर पहुँच गए। वहा जाकर उन्होंने उसके मस्तक पर इतने घू से मारे कि हाथी का मद उतर गया और वह पूर्णतया उनके वश मे हो गया। इस घटना से नगर मे बडा भारी आश्चर्य प्रकट किया गया और तब से सब लोग इन्हे महावीर कहने लगे। एक बार यह बालको के साथ वृक्ष पर खेल रहे थे कि एक महाकाय सर्प ने वृक्ष की खोखल मे से निकल कर वृक्ष को घेर लिया। लडके वृक्ष के ऊपर से भय के मारे गिरने लगे, किन्तु यह उस सर्प के सिर पर पैर रख कर उतर आए।

क्रमश वह सभी विद्याओ को पढकर भारी विद्वान् बन गए।

अब कुण्डपुर मे घर-घर बधाइया गाई जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति के मन मे भारी उत्साह है। राजा सिद्धार्थ तथा महारानी त्रिशला देवी के तो पूछने ही क्या। उनको तो अब तीनो लोक की सम्पदा प्राप्त होने जैसा आनन्द आ रहा है। उनके पुत्र वर्द्धमान महावीर आज तीस वर्ष की आयु को पार करके इकतीसवे वर्ष मे प्रवेश कर रहे है और इसीलिये उनको गृहस्थ के बधन मे बाधने की तैयारी की जा रही है। उनके विवाह की तैयारी का उत्साह सारे नगर मे था।

किन्तु एक ओर जहा प्रसन्नता के बाजे बज रहे थे, वहा दूसरी ओर भगवान् महावीर स्वामी के मन पर भारी बोझ सा बढता जाता था। उनको ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उनको कोई बलात् पर्वत के ऊपर घसीट कर इसीलिये ले जा रहा हो कि उन्हे वहा ले जाकर वहा से नीचे धक्का दे दिया जावे। वह अपने अध्ययन-कक्ष मे जाकर इस प्रकार विचार करने लगे।

"समझ मे नही आता यह तमाशा क्यो किया जा रहा है ! मेरे जीवन का लक्ष्य तो गृहस्थ-सुखो का भोग करना नही है। मै पिताजी तथा माताजी दोनो को पर्याप्त सकेत कर चुका हू कि मैंने जन्म भर ब्रह्मचारी रहना है, किन्तु यह लोग मुझ से बिना पूछे ही विवाह की तैयारी कर रहे है। क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आता ? यदि मुँह खोल कर कहता हू तो सब कोई यहीं कहेगें कि लडका निर्लज्ज है और यदि नही कहता हू तो अनन्त ससार-सागर में गिरना पड़ेगा।

यह भी हो सकता है कि मैं इनके कहने से विवाह कर लू और फिर भी ब्रह्मचारी बना रहू। किन्तु ऐसा करने से किसी दूसरे की कन्या के ऊपर अत्याचार होगा। अस्तु, अब लज्जा त्यागे बिना काम न चलेगा। अच्छा, चल कर कहता हू।"

मन ही मन यह सोचकर कुमार महावीर बाहिर वहा आये, जहाँ राजा सिद्धार्थ बडे उत्साह से उनके लग्न की तैयारी करवा रहे थे। उन्होने आकर उनसे कहा—

"पिता जी! मुझे आप से कुछ निवेदन करना है।"

"कहो बेटा! क्या बात है?"

"पिता जी! मै कई दिन से सकोच मे पडा था कि आप से निवेदन करू या न करू। किन्तु जब मैंने देखा कि अब आप से कहे बिना काम न चलेगा तो मुझे अपना मुख खोलना ही पडा, क्योकि लज्जा वही तक करनी चाहिये जहाँ तक आत्मा का सर्वनाश न हो।"

वर्धमान कुमार के गूढ वचन सुनकर राजा सिद्धार्थ का माथा ठनक गया, किन्तु उन्होने थोडा सयत होकर कहा—

"तुम तो पहेली बुझा रहे हो कुमार! खुल कर कहो बात क्या है?"

"आप खुल कर कहने की अनुमति देते हैं, यह जान कर मुझे प्रसन्नता हुई। बात यह है कि मेरे जीवन का लक्ष्य त्याग है, भोग नही, आत्मकल्याण है, आत्मविनाश नही, साधु जीवन है, विवाह बधन नही। फिर मुझे इस प्रकार विवाह-बधन मे बाधने का यह आडम्बर क्यो रचा जा रहा है?"

कुमार जब यह वचन राजा सिद्धार्थ से कह रहे थे तो वहा महारानी त्रिशला देवी भी आ गई थी। उन्होने जो कुमार के यह शब्द सुने तो एकदम घबरा गई। वास्तव मे कुमार के इन शब्दो ने रग मे भग कर दिया। तब राजा सिद्धार्थ बोले—

"बेटा! यदि कोई किसी मकान की छत पर चढना चाहता है तो उसे एक-एक सीढी करके ही छत पर चढना होगा। वह कूदकर छत पर नही जा सकता। यदि तुमको मुनिपद ग्रहण करना है तो तुमको त्याग की क्रमिक सीढी

पर होकर ही जाना होगा। अभी तुम विवाह कर लो। जब तुम्हारे एक सन्तान हो जावेगी तो हम तुम्हारे सयम-मार्ग मे विघ्न न डालेगे।"

"नही पिता जी ! प्रत्येक व्यक्ति के लिए सीढिया एक सी नही होती। बौना आदमी एक-एक सीढी करके भी छत पर नही चढ सकता। किन्तु अधिक लम्बा आदमी दो-दो, तीन-तीन सीढियो को एक साथ लाघ कर ऊपर जा सकता है। मुझ को विवाह न करके दीक्षा लेनी है। मुझे अनुमति दीजिये कि मै घर छोडकर बन को जाऊ।"

कुमार के इन शब्दो ने सबके ऊपर वज्रपात का काम किया। उनको दिखलाई दे गया कि कुमार अब घर मे न रह सकेंगे। महारानी त्रिशला देवी का तो एकदम गला भर आया। वह रुआसी होकर कुमार से बोली—

"बेटा ! क्या मैने तुझे इसी दिन के लिए पाला था कि तू हम लोगो को वृद्धावस्था में दगा देकर चला जाये। जब तेरे सुख देखने तथा सुख दिखाने के दिन आए तो तू वन को जाने की बात कर रहा है।"

"माता ! तुम आज कैसी भोली बाते कर रही हो। तुम तो जानती हो कि यह संसार केवल दु खरूप है। इसमे सुख कहीं भी नहीं है। जो कुछ थोडा बहुत भ्रम के कारण सुख दिखलाई देता है, वह सुख नही वरन् वास्तव में दु ख ही है। वह सुख शहद मे लपेटी हुई तलवार की धार के समान है। उसको चाटते ही जीभ शतखण्ड होकर गिर जावेगी। माता ! तुम मेरी जीवनदायिनी हो। तुमने मुझे यह जीवन दिया है तो मुझे अन्धकार से प्रकाश मे भी आने दो। यह मोह तो ससार मे गिराने वाला है। मै स्वार्थी नही हू। मै आत्म-कल्याण करके ससार का कल्याण करना चाहता हू। मुझे वन को अभी जाना आवश्यक है।"

यह कहकर उन्होने अपने सभी वस्त्र उतार कर दान करने आरम्भ किय। अब माता-पिता को विश्वास हो गया कि हाथी के बाहिर निकले हुए दातों को जबर्दस्ती भीतर को नही किया जा सकता। भगवान् के दृढ वैराग्य के सामने उनको पराजय स्वीकार करनी पडी और उनको भगवान् को दीक्षा लेने की अनुमति देनी पड़ी। अब कुमार ने अपनी सभी वस्तुओ को दान करके अपने

सभी वस्त्र उतार कर दिगम्बर वेष धारण किया। वह पूर्णतया नग्न होकर कुण्डलपुर के बाहिर निकल कर नात्तखड अथवा ज्ञातृखड नामक वन मे पहुच कर एक शिला पर अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उन्होने मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को मुनिपद धारण किया।

अब भगवान् महावीर कठोर तपश्चरण करते हुए घूमने लगे। वह भूख, प्यास आदि को सहन कर लम्बे-लम्बे उपवास किया करते थे। यद्यपि वह अपनी मुनि अवस्था में अनेक स्थानो मे भ्रमण किया करते थे, किंतु वह किसी को उपदेश नही देते थे। वर्षा काल मे वह किसी एक नगर के पास चार मास के लिये ठहर जाते थे, किन्तु वर्ष के शेष आठ मास भर वह तप करते हुए भ्रमण ही करते रहते थे। वह अपने आगे की चार हाथ भूमि को देख कर सावधानी से चलते थे कि कही कोई जीव उनके पैर से दब न जावे। वह अनेक लम्बे-लम्बे उपवास किया करते थे। कई बार तो उन्होने कई-कई मास के लम्बे उपवास किये। जब उनको भोजन करना होता था तो वह नगर मे जाकर चुपचाप भ्रमण कर आते थे। वह किसी से मागते नही थे। यदि कोई उनसे कहता था कि "महाराज पधारिये। आहार पानी शुद्ध है" और वह उसके आचार-व्यवहार को अपने अनुकूल देखते थे तो उसके यहा जाकर खडे हो जाते थे, अन्यथा आगे बढ जाते थे। वह किसी के यहा बैठकर भोजन नही करते थे और न किसी पात्र मे ही भोजन करते थे। जब गृहस्थ उनको आहार दान देने के लिये खाद्य वस्तुए लाता था तो वह खडे-खडे ही अपने दोनों हाथो की अजलि आगे कर देते थे। गृहस्थ ग्रास बना-बना कर उनके हाथ मे दे देता था और वह उसको खाते जाते थे। भोजन के बीच मे प्यास लगने पर भी वह पानी नही मागते थे। गृहस्थ स्वय ही खिलाते-खिलाते बीच-बीच मे थोडा पानी भी उनकी अजलि मे डाल देते थे और वह उसको पी लेते थे। किसी से न मांगते हुए भी कभी-कभी वह अपने मनमें बडे-बडे विचित्र नियम करके अभिग्रह करते थे कि आज मुझे भिक्षा मे अमुक वस्तु मिलेगी तो लूगा, अन्यथा न लूगा। गृहस्थ बेचारो को क्या पता कि उन्होने आज क्या अभिग्रह किया है। प्राय. उनका अभिग्रह पूरा नही होता था

और उनको कई-कई दिन तक नगर से वापिस लौट और निराहार रहना पडता था ।

भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार का कठिन तपश्चरण बारह वर्ष तक किया । इस बीच मे उन्होने अनेक स्थानो पर भ्रमण किया तथा अनेक स्थानो मे चातुर्मास्य किया । उनके बारह चातुर्मास्यो मे से आठ वैशाली मे हुए थे ।

भगवान् जब किसी मार्ग पर चल पडते थे तो वह प्राण पर सकट जान कर भी उस मार्ग से कभी नही लौटते थे । एक बार वह एक स्थान को जाने लगे तो लोगो ने उनको उस मार्ग पर जाने से यह कहकर रोका—

"भगवन् ! इस मार्ग से न जावे, उधर एक भयकर विष वाला सर्प मार्ग मे बैठा रहता है और उधर से जाने वाले किसी भी प्राणी को काटे बिना नही छोडता । हमने उसका नाम चण्डकौशिक रखा हुआ है ।"

किन्तु भगवान् को तो शरीर का मोह नही था । वह उसी मार्ग पर बढते चले गए । अत मे वह उस स्थान पर पहुँच गए, जहाँ मार्ग मे चण्डकौशिक सर्प बैठा हुआ था । भगवान् ने सर्प तथा सर्प ने भगवान् को देखा । सर्प ने भगवान् को देखते ही उन पर आक्रमण किया और उनको काट खाया । किन्तु भगवान् उसके काटने पर भी निश्चल खडे रहे । सर्प आशा कर रहा था कि मेरे काटने पर सभी प्राणियो के समान यह भी मर जावेगे, किन्तु नमक न खाने वाले पर सर्प का विष असर नही करता । यद्यपि भगवान् को अपने आहार मे थोडा बहुत नमक अवश्य मिलता था, किन्तु वह इतना कम होता था कि सर्प विष को रोकने के लिये पर्याप्त था । यदि भगवान् बारह वर्ष तक बिल्कुल नमक न खाते तो उनके शरीर मे इतना विष उत्पन्न हो जाता कि उनको काटने से सर्प ही मर जाता । भगवान के शरीर पर सर्प के विष का प्रभाव लेशमात्र भी न पडा । भगवान् के इस चमत्कार को देखकर सर्प को बडा आश्चर्य हुआ । वास्तव मे वह सर्प एक शापग्रस्त जीव था । भगवान् के स्पर्श से उसका घमड ही चूर नही हुआ, वरन् उसको अपने पिछले जन्मो का भी स्मरण हो आया, अब उसको इस बात का बडा खेद हुआ कि उसने इतने

प्राणियो की हत्या क्यो की। चण्डकौशिक कहा तो अपने फण को चौडा किये भगवान के सामने खडा था, कहा वह उनके चरणो मे पडकर उनको चाटने लगा। जिन लोगो ने भगवान् को उस मार्ग से जाने को मना किया था वह उनका अनुसरण करते हुए बहुत दूर रहते हुए पीछे-पीछे चले आ रहे थे। उन्होने जो चण्डकौशिक को भगवान् के चरण चाटते तथा भगवान् को उसके सिर पर हाथ रखते हुए देखा तो उन्हे बडा भारी आश्चर्य हुआ। अन्त मे भगवान् महावीर उस सर्प को हिसा न करने का उपदेश देकर आगे चले गए और लोगो ने उस वन मे बेखटके आना जाना आरम्भ कर दिया।

एक बार भगवान् परिभ्रमण करते हुए अवन्ती देश की राजधानी उज्जयिनी पहुँचे। वह वहा की अतिमुक्तक नामक श्मशान भूमि मे रात्रि के समय प्रतिमायोग धारण करके खडे हुए थे कि भव नामक एक रुद्र पुरुष ने उनको बडा भारी कष्ट दिया। किन्तु भगवान् अपने ध्यान से न डिगे और समस्त कष्ट को सहन करते हुए उसी प्रकार ध्यान मे लगे रहे। भगवान् के इस प्रकार अविचल ध्यान को देखकर उस अत्याचारी का हृदय बदल गया और उसको अपने किये पर घोर पश्चात्ताप हुआ। अन्त मे वह भगवान् को 'नमस्कार' करके वहा से चला गया।

उज्जयिनी से भगवान् वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी गये। यहा उन दिनो वही राजा शतानीक राज्य करता था, जिसके साथ भगवान् की मौसी मृगावती का विवाह हुआ था। उन्होंने भगवान् का सम्मान करना चाहा, किन्तु भगवान् ने उन दिनो पूर्णतया मौनव्रत लिया हुआ था। अत. राजा शतानीक तथा रानी मृगावती को उनकी कोई भी सेवा करने का अवसर न मिला। इन दिनों भगवान् ने एक कठिन अभिग्रह धारण किया हुआ था, जिससे यद्यपि वह नगर मे आहार के लिये दैनिक जाते थे, किन्तु अभिग्रह पूरा न होने के कारण सदा ही खाली वापिस आते थे। इन दिनो कौशाम्बी मे चम्पा को जीत कर अग देश को अपने राज्य में सम्मिलित करने का विशेष उत्सव मनाया जा रहा था।

३२

महासती चन्दनबाला

"प्रभो ! मुझे अपने कौन-से पाप का दण्ड मिल रहा है ? आप जानते है कि मैंने अपने इस चौदह वर्ष के जीवन मे कभी किसी का जी तक भी नही दुखाया । फिर मुझको किस पाप के कारण इस प्रकार भूखी-प्यासी जेल वास के दारुण दु ख इस भौरे मे भोगने पड रहे हैं ? कहा तो मैं चम्पा के महाराज दधिवाहन की प्राणप्यारी पुत्री और कहा यह जेल जीवन ! कहा मैं वैशाली के नौ लिच्छवि तथा नौ मल्ल राजाओ के अधीश्वर राजा चेटक की प्राणो से भी प्यारी धेवती तथा महारानी धारिणी देवी के गर्भ से उत्पन्न हुई पुत्री और कहा यह दासीपना ? विधि की कैसी विडम्बना है ? विधाता से मेरा लेशमात्र भी सुख नही देखा गया । मेरे बाल्यावस्था के दिन अच्छी तरह बीतने भी न पाए थे कि उस कौशाम्बी के राजा शतानीक ने अपने साढूपने के सम्बन्ध का लेशमात्र भी ध्यान न कर मेरे पिता पर चढाई करके चम्पा के सारे राज्य को नष्ट कर दिया । ओह ! उस समय की निर्मम हत्याओ और नगर की लूट को स्मरण करके अब भी मेरे हृदय मे असीम वेदना उत्पन्न होती है । उस समय यद्यपि मेरी माता धारिणी देवी मुझे लेकर भौरे मे छिप गई थी, किन्तु राजा शतानीक के रथवान ने हम दोनो को वहा से भी ढूंढ निकाला । वह हम दोनो को रथ मे बिठा कर कौशाम्बी अपने घर ले आया । हाय ! आज मुझे अपनी उस माता की याद बहुत सता रही है, जिसने उस रथवान से अपने शील की रक्षा करने के लिए मार्ग मे ही अपने दातो से अपनी जीभ काट कर अपने प्राण दे दिये थे । मेरी माता ने अपने बलिदान से उस समय यह सिद्ध कर दिया था कि आत्म-बलिदान कैसे भी दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव को बदल सकता है । इसलिए उस दुष्ट रथवान ने माता के लिए रोती-कलपती देख कर मुझको पुत्री के

समान सात्वना दी थी। इतना ही नही, उसने मुझे घर लाकर अपनी पत्नी को भी मुझे पुत्री के समान ही रखने का आदेश दिया। किन्तु मेरे दुर्भाग्य का तो अभी आरभ था। अभी तो मुझे न जाने क्या-क्या दु ख देखने बदे थे? रथवान की स्त्री शीघ्र ही मुझ से ईर्ष्या करने लगी। उसने अपने पति को आज्ञा दी कि वह मुझ को बाजार मे दासी के समान बेच कर मेरे मूल्य स्वरूप बीस लाख स्वर्ण मुद्रा उसको लाकर दे। यद्यपि रथवान ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया, किन्तु मुझ से उसका यह कष्ट नही देखा गया। मैने उससे यह अनुरोध किया कि वह मेरी उस नई माता की आज्ञा का पालन करे। अन्त मे हम दोनो बाजार मे आए। मैने अपने को बेचने के लिए स्वय ही आवाज लगानी आरम्भ की। मुझे उस समय अतिशय वेदना हुई, जब एक वेश्या मुझको मोल लेने के लिए आग्रह करने लगी, किन्तु मैने उसके साथ जाने से साफ इन्कार कर दिया। अन्त मे एक धनावा नामक धार्मिक सेठ ने मेरे मूल्य स्वरूप वीस लाख स्वर्ण मुद्रा उस रथवान को देकर मुझे प्राप्त किया। उसने जिस समय मुझे बेटी कह कर सम्बोधित किया तो मुझे अपने पिता राजा दधिवाहन की याद हो आई। यद्यपि मुझको उस समय तो बहुत बुरा लगा, किन्तु जब मैने अपने नवीन पिता के निश्चल नेत्रो मे अहिंसा, दया, सयम तथा सन्तोष की समुज्ज्वल भावना को पाया तो मैने अपने जीवन को एक बार फिर धन्य माना। मै सोचने लगी कि सभवत इसी प्रकार धर्म-ध्यान करते-करते अब मेरा जीवन व्यतीत हो जावेगा। किन्तु मुझे पता नही था कि दुर्भाग्य अभी तक मुझको देखकर खिलखिला कर हँस रहा है। कहा जाता है कि अनुपम स्वर्गीय सौन्दर्य किसी बडे पुण्य से मिलता है, किन्तु मुझ को तो वह सौन्दर्य सम्भवत कोई बडा भारी पाप करने के कारण उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए दिया गया था। एक दिन सेठ धनावा प्यार से मेरे सुन्दर बालो पर हाथ फेरने लगे। बस यही से सेठानी मूलादेवी मेरी भयकर विरोधिनी बन गई। अतएव वह मुझ पर द्वेष-भाव रख कर मुझ से मन ही मन जलने लगी। अब वह प्रतिक्षण यही सोचती रहती थी कि मै किस प्रकार चन्दनबाला को दु खी करूँ। सेठ मुझ से प्राय. पूछ लिया करते थे कि मुझे उस घर मे कोई कष्ट तो नही है, किन्तु मै सदा यही

उत्तर देती कि मुझे जो कुछ मिलता है उसमे सन्तोष है। सेठ जी के इस व्यवहार से सेठानी को और भी अधिक ईर्ष्या होती थी, किन्तु वह उनकी जानकारी मे मुझे ऐसा दु:ख देने का साहस नही करती थी कि जिसका सेठ जी को पता हो जावे। वैसे बात-बात मे झिडकना, खराब भोजन देना आदि तो उसका नित्य का काम था। अन्त मे एक दिन उसको अवसर मिल ही गया। सेठ जी तीन-चार दिन के लिए बाहर गए। उसने सेठ जी के पीठ फेरते ही प्रथम तो मेरे सिर के बाल कटवाए, फिर मुझे वस्त्र के नाम पर यह अकेला कच्छा पहिना कर उसने मुझे भौरे जैसी इस ऐसी अधेरी कोठरी मे हाथ पैरो मे जजीर डाल कर कैद कर दिया कि मेरे कितना ही रोने-पीटने पर भी किसी को मेरी आवाज सुनाई न दे। साथ ही उसने घर की सब दासियो को कठोरता से आज्ञा दे दी कि मेरा भेद सेठ जी को न मिलने पावे। वह घर का ताला बन्द करके अपने पीहर चली गई। आज मुझको उस दशा मे तीसरा दिन है। भूख और प्यास के मारे मेरी आँखो के आगे अधेरा छा रहा है। लोहे की जजीर मेरी कोमल कलाइयो को ऐसी बुरी तरह चाट गई है कि हाथ हिलाए से भी नही हिलते। हा, भगवन्! इस प्रकार कब तक दु:ख मिलता रहेगा! इस दु:ख से तो मेरे प्राण ही निकल जाते तो अच्छा था! यहाँ तो रो-रो कर गला फाडूँगी तो भी किसी को पता नही चलने का। प्रभो! दया करो! मेरे कष्टो को दूर कर मुझे इतनी स्वतन्त्रता दे दो कि मैं इस मायामय ससार के ममत्व का त्याग कर भगवान् महावीर स्वामी के चरणो का सेवन करती हुई अपने परलोक को बना सकूँ।"

यह कहकर चन्दनबाला फूट-फूट कर रोने लगी।

× × ×

इस समय भगवान् महावीर स्वामी को तप करते हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। भगवान् का कौशाम्बी मे पधारने का समाचार सुनकर जनता बडे उत्साह से उनके दर्शन करने पहुँची। वह आशा करती थी कि भगवान् से कुछ उपदेश सुनने को मिलेगा, किन्तु भगवान् तो मौन थे। उन्होने किसी को

भी कुछ उपदेश नही दिया। जनता उनका उपदेश न पाकर उनके दर्शन से ही अपने को कृतकृत्य मानने लगी। यद्यपि अब जनता के मन मे भगवान् का उपदेश श्रवण करने की आशा लेशमात्र भी बाकी नही थी, किन्तु उनको आहार देने की आशा अवश्य थी।

कुछ समय के पश्चात् भगवान् चार हाथ पृथ्वी को आगे देखते हुए आहार के लिए नगर की ओर इस प्रकार यत्नपूर्वक चले कि उनके पैरो से कोई जीव जन्तु न मर जावे। नगर-निवासी राजा और रक, धनी और निर्धन सभी उनसे विनयपूर्वक कहते—

"भगवन्! पधारिये-पधारिये! आहार पानी शुद्ध है"

किन्तु वह किसी की ओर दृष्टि न कर नगर मे वैसे ही घूम कर वापिस चले गए। भगवान् को आहार के लिए नगर मे इस प्रकार आते तथा वापिस जाते तीन दिन हो गए, किन्तु उन्होने किसी के यहाँ आहार ग्रहण न किया। जनता समझ गई कि भगवान् ने अपने मन मे कोई कठिन अभिग्रह किया हुआ है कि उक्त अवस्था वाला प्राणी हम को अमुक प्रकार का आहार देगा तो लेंगे अन्यथा न लेंगे। जनता भगवान् का अभिग्रह जानने के लिए अत्यन्त चिन्तित थी, किन्तु इस गुत्थी को खोलने का कोई उपाय न था। इस प्रकार भगवान् को बिना आहार के विहार करते हुए लगभग पाँच मास बीत गए।

सेठ धनावा जो तीन दिन बाद घर वापिस आए तो चन्दनबाला को घर मे न पाकर उनको बड़ी चिन्ता हुई। वह अपनी पत्नी के स्वभाव को जानते थे, अतएव किसी अनिष्ट की आशका से उनका मन अन्दर ही अन्दर शका-शील हो उठा। उन्होने घर में सब दास-दासियो से पूछा, किंतु सेठानी के भय के कारण किसी ने भी उनको असली बात न बतलाई। अन्त मे एक वृद्धा दासी ने डरते-डरते सेठ को वास्तविक बात बतला ही दी।

सेठजी ने जो सुना तो वह घबराए हुए उस कोठरी में गए। चन्दनबाला को उस दशा में देखकर उनको बडा दुःख हुआ। वह उसको भूखी-प्यासी

चन्दन बाला भौंरे द्वार पर हाथ पैरों में जजीरें बंधी हुई कच्छा पहने सिर मुंडे हुये भगवान महावीर स्वामी को सूप में रक्खे

तथा जजीरो से बँधी देखकर किंकर्तव्यविमूढ हो गए कि पहले क्या करें। पहिले उनको उसके भोजन की चिता हुई। वह घर में दौडे गए, किंतु घर में उस समय भोजन कुछ भी तैयार नही था। केवल थोडी-सी कुलथी उबली हुई एक सूप मे रखी थी। सेठ उस सूप को ही लेकर चन्दनवाला के पास रख आए और हथकडियो और वेडियो को काटने का उपाय करने फिर चले गए।

चन्दनवाला अपने भौंरे के सम्मुख हाथ-पैर बँधी हुई रो रही थी। यद्यपि उसके मुख से कौमार्य्य दमक रहा था, किन्तु रोते-रोते उसके नेत्र सूज गए थे। उसका सिर मुंडा हुआ था। वस्त्र के नाम पर वह केवल एक कच्छा ही पहिने हुई थी। इस समय दोपहर ढल रहा था और उसे निराहार रहते तीन दिन बीत गए थे, फिर भी वह उन उबले हुए कुलथी के दानों को किसी सत्पात्र को आहार-दान दिये विना खाना न चाहती थी। वह एक पैर कमरे के अन्दर तथा दूसरा पैर बाहर रखे किसी अतिथि के आने की प्रतीक्षा कर रही थी कि भगवान् महावीर उधर से पधारे। वह उनको देखकर प्रसन्न हो गई। उसने उनसे कहा—

"भगवन्! आहार पानी शुद्ध है। पधारिये, पधारिये।"

जैसा कि पीछे पता लगा, भगवान् का अभिग्रह यह था कि किसी ऐसी कुमारी राजकन्या के हाथ से सूप में रखी उबली हुई कुलथी का आहार ही लेंगे, जिसके हाथ-पैर जजीर से बँधे हुए हो, जिसका सिर मुडा हुआ हो, वस्त्र के नाम पर जो केवल एक कच्छा ही पहिने हुए हो, उस समय दोपहर ढल चुके और उसे निराहार रहते तीन दिन बीत गए हो। उसका एक पैर कमरे के अन्दर तथा दूसरा पैर कमरे के बाहिर हो। वह पहले हँसे ओर पीछे रो पडे।

भगवान् महावीर स्वामी अपने अभिग्रह की लगभग सभी बाते वहाँ मिलती देख कर रुके, किन्तु उनको वहा फिर भी एक बात की त्रुटि दिखलाई पडी। भगवान् चाहते थे कि आहार देने वाली राजकन्या पहले प्रसन्नवदन हो, किन्तु बाद मे रो पडे। वह चन्दनबाला को प्रसन्न देखकर आगे को बढ गए। किन्तु चन्दनबाला अपनी आशा पूरी न होती देखकर फूट-फूट कर रोने लगी। उसको रोती देखकर भगवान् ने वापिस आकर अपने दोनो हाथ उसके

सामने फैला दिये। उसने बड़े प्रेम से एक-एक ग्रास बनाकर उनके हाथो मे रखते हुए उनको उस उबली हुई कुलथी का आहार कराया। उस समय आकाश मे दुन्दुभि बजने लगी। सब ओर जय-जयकार का शब्द होने लगा और सुमन-वृष्टि होने लगी। इस प्रकार अनेक नगरो मे विहार करने के बाद पाँच मास बाद भगवान् महावीर स्वामी ने आहार ग्रहण किया।

चन्दनबाला के हाथ से भगवान् द्वारा आहार लिये जाने का समाचार बात की बात मे सारे कौशाम्बी भर मे फैल गया। अब तो मूला सेठानी और उस रथवान की पत्नी ने भी आकर उसको सिर झुकाया। समाचार पाकर राजा शतानीक भी अपनी पत्नी महारानी मृगावती सहित उसके दर्शन को आया। महारानी मृगावती भी वैशाली के राजा चेटक की ही कन्या थी। चन्दन-बाला उसकी भानजी थी। उसने चन्दनबाला को तुरन्त पहचान लिया और बोली—

"अच्छा बेटी! तू इस दशा मे और सेठ धनावा के घर?"

"हाँ मौसी! मुझे मेरा भाग्य यही घसीट लाया।"

"मुझे बेटी! चम्पापुर पर तेरे मौसा के चढाई करने का बडा दुःख है। मैंने उस युद्ध को रोकने का बहुत यत्न किया, किन्तु तेरे पिता तथा मौसा के विशेष मनोमालिन्य के कारण युद्ध अनिवार्य हो ही गया। फिर भी मैंने अपने बेटे उदयन से यह वचन ले लिया है कि वह गद्दी पर बैठते ही तेरे भाई दृढवर्मा को फिर अगराज बना कर चम्पापुरी के राजसिंहासन पर बिठलावेगा। किंतु बेटी, तू यहाँ किस प्रकार आ पहुँची और तूने यहाँ आकर मुझे अपने आने का समाचार क्यो नही भिजवाया?"

इस पर चन्दनबाला ने चम्पापुर से अब तक की सारी घटना सुनाकर उससे कहा—

"मौसी, मैं दासी हूँ। दासी को भला स्वतन्त्रतापूर्वक समाचार भेजने की सुविधा कहाँ होती है!"

"नही बेटी! अब तुम दासी नही, अब तो तुम मेरी भानजी हो। तुमको मेरे साथ ही रहना होगा।"

यह कहकर रानी मृगावती चन्दनबाला को अपने साथ अपने राजमहल ले आई।

जैसा कि आगे लिखा जावेगा इस घटना के कुछ ही मास बाद भगवान् महावीर स्वामी को केवल ज्ञान हो गया। चन्दनबाला यह समाचार सुनते ही उनके समीप पहुँची। उसने जाते ही उनसे दीक्षा ले ली। भगवान् महावीर स्वामी की स्त्री-शिष्याओ मे सबसे प्रथम उसने ही दीक्षा ली थी। अतएव बाद मे उनके आर्यासंघ की प्रधान आचार्या महासती चन्दनबाला ही हुई। उनके शासन मे ३६००० जैन-साध्विया थी, जिनको 'आर्यिकाए' कहा जाता था। अन्त मे महासती चन्दनबाला ने वह परम उत्तम पद प्राप्त किया, जहा जाना सभी योगी और मुनि अपना अहोभाग्य मानते है।

३२

वैशाली में साम्राज्यविरोधी भावना

मगध की गद्दी पर बिम्बसार के बैठने तथा मगध द्वारा वैशाली गणतंत्र के गणपति की पुत्री से विवाह की इच्छा प्रदर्शित करने का लिच्छवियो के मन पर अत्यन्त विपरीत प्रभाव पडा । वह बिम्बसार को साम्राज्याकाक्षी तथा गणतन्त्र का शत्रु मानने लगे । राजा शतानीक द्वारा अग के राजा दधिवाहन के राज्य के नाश का भी वह बिम्बसार को ही प्रधान कारण समझते थे । उनका कहना था कि बिना बिम्बसार के उकसाए शतानीक स्वय जैनी होते हुए अपने सगे साढू के राज्य पर कभी आक्रमण न करता । वैशाली का गणतत्र पहिले शतानीक तथा दधिवाहन दोनो से समान प्रेम मानता था, क्योकि वह दोनो ही गणपति राजा चेटक के जामाता थे, किन्तु चम्पा के पतन के बाद उसकी सहानुभूति शतानीक की अपेक्षा दधिवाहन के पुत्र दृढवर्मा की ओर अधिक हो गई । इसके अतिरिक्त उस आपत्ति के समय दृढवर्मा ने चम्पा से भागकर वैशाली ही में अपने नाना के पास शरण भी ली थी । आन्तरिक सम्बध के अतिरिक्त लिच्छवी लोग दृढवर्मा को शरणागत मान कर भी उसकी रक्षा करने के लिये दृढनिश्चय थे । दृढवर्मा के सम्बध मे प्राय परामर्श राजा चेटक के राजमहल मे ही हुआ करता था, जहा उसका अप्रतिहत प्रवेश था । एक बार राजा चेटक अपने महल मे रानी सुभद्रा के पास बैठे हुए कुछ सोच-विचार मे लीन थे कि दृढवर्मा ने आकर उनसे कहा—

"नाना जी ! आपने बहिन चदनबाला तथा मेरी माता जी के विषय मे कुछ सुना ?"

"यह तो पता लग गया बेटा ! कि वह दोनो युद्ध के समय एक भौरे में छिप गई थी, जहा से राजा शतानीक का रथवान उनको ढूँढ कर अपने साथ कौशाम्बी ले गया ।"

"इससे आगे के समाचार का पता मैंने लगा लिया है नाना जी !"

"वह क्या है बेटा !"

"वह बडा करुणाजनक है ।"

"क्या उन पर और भी भारी विपत्ति आई ?"

"जी हाँ ! मेरी माता ने अपने शील की रक्षा करते हुए आत्मघात करके प्राण दे दिये ।"

इस पर राजा चेटक एकदम चौक कर बोले—

"हाय ! क्या प्यारी बेटी धारिणी का प्यारा मुख अब मुझे देखने को नही मिलेगा ?" और यह कहकर राजा चेटक शोक करने लगे। महारानी सुभद्रा तो इस समाचार को सुनकर फूट-फूट कर रोने लगी। दृढवर्मा भी उस समय अपने आँसू न रोक सका। स्वस्थ होने पर राजा चेटक बोले—

"अच्छा फिर चन्दनबाला का कुछ पता चला ?"

"उसके सबन्ध मे मेरे चर अभी-अभी कुछ हर्ष-विषाद मिश्रित सवाद कौशाम्बी से लाये है ।"

"हर्ष विषाद दोनो से ही मिश्रित ?"

"जी नाना जी ! उस रथवान ने बहिन चन्दनबाला को कौशाम्बी के बाजार मे धनावा नामक एक धर्मात्मा सेठ के हाथ दासी के समान बेच दिया।"

"हाय ! मेरी प्यारी धेवती दासी के समान बेची गई !"

यह कहकर महारानी सुभद्रा फिर विलाप करने लगी। राजा चेटक बोले—

"फिर क्या हुआ दृढवर्मा ?"

"सेठ धनावा की सेठानी मूलादेवी चन्दनबाला से बहुत द्वेष करती थी। एक दिन सेठ तीन दिन के लिये बाहिर गया तो मूलादेवी ने उसके केश कटवा कर उसके सारे वस्त्र उतार कर उसे केवल एक कच्छा पहिनाया। फिर उसके हाथो मे हथकडियाँ तथा पैरो मे बेडियाँ डलवा कर उसे एक ऐसे भौरे मे बन्द कर दिया, जहाँ से कितना ही चिल्लाने पर भी उसकी आवाज सुनाई न दे ।"

दृढवर्मा के यह कहने पर रानी सुभद्रा और भी विलाप करके कहने लगी—

"हाय मेरी फूल सी बच्ची को ऐसे-ऐसे कष्ट सहने पड़े !"

तब दृढवर्मा बोला—

"नानी जी कष्टमिश्रित सवाद समाप्त हुआ अब । आप हर्षजनक समाचार सुनिये ।"

राजा—"अच्छा फिर चन्दनबाला के साथ उस भौरे में क्या बीती ?"

दृढ़वर्मा—वह तीन दिन तक उस भौरे मे रही । जब तीसरे दिन सेठ धनावा ने आकर उसे ऐसी दशा मे देखा तो वह बहुत दु खी होकर हक्का-बक्का रह गया । सेठानी मूलादेवी चन्दनबाला को भौरे मे बन्द करके अपने पीहर चली गई थी । अत घर मे न तो खाने-पीने का ही कोई सामान था और न हथकडी-बेडियो की चाबी ही थी । सेठ ने सोचा कि जजीरे कटवाने से पूर्व इसके भोजन का कुछ प्रबन्ध किया जावे । किन्तु उस समय घर मे कुछ कुलथी ही उबली हुई एक सूप मे रखी हुई थी । धनावा उस कुलथी को सूप समेत चन्दनबाला के सामने रख कर किसी लुहार को बुलाने गये, जिससे हाथ पैर की जजीरो को कटवाया जा सके । चन्दनबाला भौरे के दरवाज़े मे खडी-खडी किसी सत्पात्र के आने की प्रतीक्षा करने लगी कि कोई आवे तो उसे दान देकर भोजन करूँ ।"

तब राजा चेटक बोले—

"वाह बेटी चन्दना ! इस भारी आपत्ति के समय तीन दिन भूखी रह कर भी दान दिये विना न खा सकी ?"

दृढ़वर्मा—नाना जी ! चन्दना ने हमारे कुल का उद्धार कर दिया। आप आगे की बात तो सुनिये ।

चेटक—अच्छा ! तो जल्दी कहो बेटा ।

दृढ़वर्मा—उन दिनो भगवान् महावीर स्वामी को किसी अभिग्रह के कारण पाँच मास से आहार नही मिला था और वह विना आहार घूमते-घामते उसी दिन कौशाम्बी पहुँचे, जब चन्दनबाला को भौरे मे डाला गया था ।

कौशाम्बी वाले उनको आहार देने को उत्सुक थे, किन्तु उनके अभिग्रह का पता लगने का कोई साधन न था। अतएव वह नगर मे प्रतिदिन आते तथा वापिस चले जाते थे। जब चन्दनबाला एक पैर भौरे के अन्दर तथा एक पैर बाहिर रखे किसी अतिथि के आने की प्रतीक्षा कर रही थी तो भगवान् महावीर स्वामी उधर से आए। चन्दना ने जोर से कहा—"भगवन् ! आहार पानी शुद्ध है। पधारिये, पधारिये।" भगवान् इस आवाज को सुनकर पहिले तो उसको देखकर रुके किन्तु बाद मे वह कुछ सोचकर फिर आगे बढ गए।

राजा चेटक—उनके अभिग्रह का कुछ पता लगा ?

दृढ़वर्मा—जी हाँ ! उनका निश्चय था कि वह किसी ऐसी कुमारी राज-कन्या के हाथ से ही सूप मे रखी उबली हुई कुलथी के दानो का आहार लेगे, जो तान दिन से भौरे मे भूखी-प्यासी बन्द हो, जिसके हाथ-पैरो मे जजीर हो, जिसका सिर मुँडा हुआ हो और वस्त्र के नाम पर जिसने केवल एक कच्छा पहिना हुआ हो, जिसका एक पैर भौरे के अन्दर तथा दूसरा बाहिर हो तथा जो पहिले हँसकर फिर रोने लगे।

रानी सुभद्रा—यह सारी बाते तो मेरी बच्ची की ही थीं। जान पडता है मेरे धेवते ने अपनी बहिन के उद्धार के लिये ही ऐसा अभिग्रह किया था।

दृढ़वर्मा—नानी जी ! भगवान् के सबन्ध मे ऐसी बात कहकर उनका अपमान मत कीजिये। आप उनको चाहे जो समझे, वह तो राग-द्वेष से बहुत ऊपर है। उनके लिये उनका अपना कोई सबन्धी नही है। उन्होने चन्दना के किसी पिछले जन्म के विशेष पुण्य के कारण ही ऐसा अभिग्रह किया था। किन्तु चन्दना मे अभिग्रह की एक बात की फिर भी कमी थी। वह हँस तो रही थी, किन्तु रो नही रही थी। अतएव भगवान् महावीर स्वामी अभिग्रह की सारी बाते मिलती देखकर तथा एक बात के न मिलने से आगे को चल पडे।"

रानी सुभद्रा—तब तो बेचारी बडी निराश हुई होगी ?

दृढवर्मा—अजी, वह उसी दम फूट-फूट कर रोने लगी।

राजा चेटक—तब तो भगवान् का अभिग्रह उसने अचानक ही पूरा कर दिया।

दृढ़वर्मा—जी, इसीलिये भगवान् फिर लौट आये और उन्होने अपने दोनो हाथ उसके सामने फैला दिये। चन्दनबाला ने उन्ही कुलथी के दानो का एक-एक ग्रास बनाकर उनके हाथ मे दिया और भगवान् ने पाँच मास के बाद अपना अभिग्रह पूरा होने पर कौशाम्बी मे चन्दनबाला के हाथ से आहार लिया।

राजा चेटक—फिर क्या हुआ ?

दृढ़वर्मा—फिर तो इस घटना का शोर सारी कौशाम्बी मे मच गया। आकाश से देवो ने फूल बरसाए और कहा—"धन्य यह पात्र और धन्य यह दान।" कौशाम्बी के सभी स्त्री-पुरुष चन्दनबाला के दर्शन को आने लगे। इस समाचार का पता पाकर राजा शतानीक तथा मौसी मृगावती भी उसके दर्शन को आए मौसी उसे पहचान कर अपने साथ ले गई। तब से चन्दनबाला मौसी के पास कौशाम्बी मे है। मौसी ने अपने पुत्र उदयन से यह प्रतिज्ञा कराई है कि वह मुझे मेरा राज्य वापिस दिला देगा।

वह इस प्रकार बाते कर ही रहे थे कि दौवारिक ने कहा—

"राजाधिराज गणपति राजा चेटक की जय।"

राजा—क्या है दौवारिक ?

दौवारिक—देव ! एक दूत कौशाम्बी से आया है। वह कहता है कि उसे महाराज को एक गुप्त सदेश देना है। अत उसे दरबार मे बुलाने से पूर्व प्रथम राजमहल में मिलने की अनुमति दी जावे।

रानी सुभद्रा—उसे मेरे सामने ही बुलाइये प्राणनाथ ! सभव है वह बेटी चन्दना का कुछ और सदेशा लाया हो।

राजा—अच्छा, दौवारिक ! तुम दूत को यही भेज दो।

दौवारिक यह सुनकर चला गया और थोड़ी देर मे एक दूत को लेकर फिर अन्दर आया। दूत ने आकर महाराज को प्रणाम करके कहा—

"राजाधिराज गणपति राजा चेटक की जय।"

"तुमको किसने भेजा है?"

"देव! मुझे महाराज उदयन ने भेजा है। उन्होने देव के लिये एक पत्र दिया है।"

महाराज—क्या चिरजीव उदयन कौशाम्बी-नरेश बन गया? राजा शतानीक का क्या हुआ?

दूत—देव! महाराज शतानीक के उपासना करते-करते ही प्राण निकल गए। इसलिये महाराज उदयन अब कौशाम्बी-नरेश बन गए हैं। उन्होने राज-गद्दी पर बैठते ही प्रथम आप ही को यह पत्र भेजा हैं।

यह कहकर दूत ने अपने वस्त्रो मे से एक पत्र निकाल कर राजा के हाथ मे दिया। पत्र अच्छी तरह से एक कीमती वस्त्र मे बन्द था। राजा ने उसके बन्द काटकर उसे पढना आरभ किया। तब महारानी सुभद्रा बोली—

"पत्र को जोर से पढ़िये महाराज!"

"अच्छा सुनो, मै पढता हूँ।"

"सिद्ध श्री शुभ स्थान वैशाली नगरी मे महामान्य पूज्य नाना जी राज-राजेश्वर गणपति राजा चेटक को कौशाम्बी से वत्स-नरेश उदयन की सादर चरण-वन्दना। नानाजी! मुझे इस बात का बडा दुख है कि पिताजी ने किसी कुमत्रणा के वश मे पडकर चम्पा पर आक्रमण किया, जिससे मौसा दधिवाहन मारे गये। मैने निश्चय किया है कि पिताजी के इस पाप का मै मार्जन करूँगा। बहिन चन्दनबाला आजकल मेरे पास है। उसने भगवान् महावीर स्वामी के कठिन अभिग्रह को पूर्ण करके जो उन्हे आहार दान दिया है उससे उसने तीनो लोको मे अक्षय कीर्ति का सपादन किया है। उसके सबन्ध में आप निश्चिन्त रहे। आजकल उसको वैराग्य बहुत अधिक बढा हुआ है। उसका निश्चय है कि वह गृहस्थ के चक्कर मे नही पड़ेगी और भगवान् महावीर स्वामी को केवल ज्ञान होते ही उनसे दीक्षा लेकर साध्वी बन जावेगी। उसे आप भगवान् को केवल ज्ञान होने _ यही रहने दे।

"मैंने सुना है कि भाई दृढवर्मा आप के ही पास है। मैंने उनको उनका राज्य वापिस देने का निश्चय किया है। आप उनसे कह दे कि वह अपनी बची-खुची सेना को लेकर चम्पापुरी पर अधिकार करके वहाँ जम कर बैठ जावे। मैंने वहाँ से अपनी सेना को बुलाने का आज्ञापत्र भेज दिया है। कुछ थोडे से सैनिक वहाँ प्रबन्ध के लिये अवश्य है, किन्तु उनको आज्ञा दे दी गई है कि वह दृढवर्मा के सैनिको का कोई प्रतिरोध न कर उनके आने पर उन्हे नगर का शासन सौप दे। पूजनीया नानाजी को मेरी चरण-वन्दना कहे।"

आपका स्नेही दौहित्र
उदयन

रानी सुभद्रा—बेटा उदयन तो सच्चा धार्मिक निकला। बेटे दृढवर्मा! मेरी बधाई।

राजा चेटक—अगराज के रूप मे मै भी बेटा दृढवर्मा तुमको बधाई देता हूँ।

इस पर दृढवर्मा ने नाना तथा नानी के चरण छूकर कहा—

"यह सब सफलता मुझे आपके ही आशीर्वाद से प्राप्त हुई है।"

राजा चेटक—तुम्हारी समस्या के सुलझ जाने से लिच्छवियो की एक इच्छा तो पूरी हो गई।

दृढ़वर्मा—क्या लिच्छवियो की अभी कोई और इच्छा शेष है?

राजा चेटक—लिच्छवियो में आजकल वत्स देश तथा मगध पर आक्रमण करने का आन्दोलन किया जा रहा है। वह दोनो को ही साम्राज्या-कांक्षी मानकर उनके अधिकाधिक विरोधी बनते जा रहे है। अब दृढवर्मा के अपना राज्य प्राप्त कर लेने से वत्स देश के प्रति उनकी विरोधी भावना शान्त हो जावेगी। किन्तु मगध के बिम्बसार की राजनीतिक शक्ति को कुचलना बज्जी गणतन्त्र का प्रत्येक नागरिक अपना कर्तव्य समझता है। मैंने मगध तथा वैशाली के युद्ध को रोकने का बहुत यत्न किया, किन्तु जान पड़ता है कि हमको मगध पर आक्रमण करना ही पड़ेगा।

३४

चित्र पर आसक्ति

अपराह्न का समय है । राजगृह के पाचो पर्वतो के ऊपर सूर्य की ढलती हुई किरणे एक बडा सुन्दर दृश्य उत्पन्न कर रही है । राज दरबार-आगत सज्जनो से ठसाठस भरा हुआ है । सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपने राजसिंहासन पर बैठे ऐसे सुशोभित हो रहे है, जैसे तारागण से घिरा हुआ चन्द्रमा सुशोभित होता है । उनके चारो ओर महिलाएँ उन पर चमर ढुला रही हैं । वदीजन उनका यशोगान कर रहे है । उसी समय द्वारपाल ने आकर सम्राट् से निवेदन किया—

"राजराजेश्वर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय ।"

सम्राट्—क्या है द्वारपाल ?

द्वारपाल—देव ! भरत नामक एक चित्रकार देव के दर्शन की अभिलाषा से द्वार पर खडा हुआ है । वह कहता है कि मुझे आज राजगृह के समस्त चित्रकारो को पराजित करके अपनी कला द्वारा सम्राट् की सेवा करनी है ।

सम्राट्—इतना आत्मविश्वास है उसे अपनी कला पर ! अच्छा, उसे आदरसहित अन्दर ले आओ ।

थोडी देर मे ही भरत ने राजसभा मे उपस्थित होकर अभिवादन किया और कहा—

"राजराजेश्वर मगधराज सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय ।"

सम्राट्—कहो नवयुवक ! कहां से आ रहे हो ?

भरत—वैशाली से आ रहा हू देव ।

सम्राट्—क्या कार्य करते हो ?

भरत—देव ! मै चित्रकार हू । वैशाली मे मैंने वहां के सभी चित्रकारो को राजसभा में बुलाकर अपनी कला के द्वारा पराजित किया था । देव ! अल्पतम

समय मे वास्तविक चित्र बनाने मे आज इस दास से प्रतिद्वन्द्विता करना सुगम कार्य नही है।

सम्राट्—हा, चित्रकार ! वैशाली राजसभा मे की हुई तुम्हारी प्रतिद्वद्विता के सबध मे हम सुन चुके है, किन्तु तुम तो वहाँ गणपति महाराज चेटक के अत्यधिक प्रेमपात्र थे। तुमने वैशाली को क्यो छोडा ?

भरत—प्राणो के सकट से देव !

सम्राट्—क्यो, प्राणो का सकट वहा क्यो आ पडा ?

सम्राट् के यह कहने पर भरत ने अपने रेशमी थैले मे से चेलना का चित्र निकाल कर सम्राट् को देते हुए कहा—

"देव ! यह चित्र महाराजा चेटक की सब से छोटी पुत्री चेलना का है। महाराज ने इस चित्र को देखकर मुझे गुप्त रूप से मारने की आज्ञा दी थी। किन्तु मुझे पता लग गया और मै शीघ्रता में अपना सारा सामान वही छोडकर केवल यह चित्र लेकर वहा से अपने प्राण लेकर भाग खडा हुआ।"

सम्राट् चित्र को देखकर एकदम चकित हो गए और भरत से बोले—

"अच्छा भरत ! तुमको हम आश्रय देते है। तुम्हारी कला आदर पाने योग्य है।"

सम्राट् ने यह कहकर राजसभा विर्सजित कर दी। उपस्थित सभासद् अपने-अपने स्थान को जाने लगे और सम्राट् वहा से उठकर अपने प्रमोदभवन में आए।

महाराज के प्रमोदभवन मे अनेक प्रकार की विलास-सामग्री उपस्थित थी। दीवारो पर अनेक प्रकार के चित्र लगे हुए थे। एक ओर बीचो-बीच कुछ सुन्दर आसन लगे हुए थे। महाराज एक आसन पर आकर बैठ गये और उस चित्र को देखकर मन ही मन विचार करने लगे। वे बड़ी देर तक मन में कुछ विचार करते रहे। उन्होने चित्र को देखकर कहा—

"कैसा सुन्दर रूप है इस राजकुमारी का ! यद्यपि इसके सौंदर्य की ख्याति आज भारत के समस्त देशों मे फैली हुई है, किन्तु मुझे इसके इतनी सुन्दरी होने

का ध्यान तक न था। इसका रूप तो मुझे वरबस अपनी ओर खैंचे लेता है। ऐसा जान पडता है जैसे इसके केशो की माग का जाल कामी पुरुषो के लिये वास्तविक जाल है। उसके सिर का चूडामणि उसकी शोभा को और भी अधिक बढा रहा है। इस चूडामणि से युक्त यह केशराशि तो उत्तम रत्नयुक्त एक काले नाग से प्रतिस्पर्द्धा कर रही है। इसके माथे पर लगी हुई यह चमकदार बिन्दी इसके रूप की शोभा को दुगना बढा रही हे। इससे इसका मुख ऐसा लगता है जैसे आकाश मे पूर्ण चन्द्रमा खिला हुआ हो। इसके भ्रूभग से इसके ललाट पर जो ओकार सा बन गया है वह ओकार न होकर जगद्विजयी कामदेव का बाण जैसा दिखलाई देता है। इसके नेत्र का कटाक्ष कामीजनो को उसी प्रकार वश मे कर लेता है, जैसे सगीत मृगो को अपने वश मे कर लेता है। इसके कानो मे पडे हुए दोनो कुण्डल ऐसे सुन्दर दिखलाई देते है, जैसे सूर्य और चन्द्रमा दोनो उसकी सेवा करने को उसके कान मे आकर लटक गये हो। इसके नेत्र कमल के समान सुन्दर तथा मृगी के समान चचल है। इसका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर दिखलाई देता है। किन्तु जब यह बोलती होगी तो इसका मुख आकाश की शोभा को धारण करता होगा। इसके मुख म पान की लाली बादलो की लालिमा की, दाँतो की चमक चन्द्र-किरण की तथा इसका शब्द मेघध्वनि की समानता करते होगे। इसकी गर्दन मे पडी हुई तीनो रेखाए कैसी सुन्दर है। इसके वक्षस्थल की सुन्दरता का तो वर्णन ही नही किया जा सकता। इसकी नाभि की गहनता एक ऐसे तालाब का भ्रम उत्पन्न करती है, जिसमे कामदेव-रूपी हस्ती गोता लगाकर बैठ गया हो, अन्यथा उसमे रोमावलीरूप भ्रमर-पक्ति कहा से आ जाती। इसके कमल के समान मनोहर कर अति मनोहर दीख पडते है। कटिभाग तो इसका बहुत ही पतला है। इसके कोमल चरणो में पडे हुए नूपुर इसकी शोभा को और भी अधिक बढा रहे है। यदि मुझे इसका परि-चय न मिल गया होता तो इसके मनोहर रूप को देखकर मै यही सोचता कि ऐसी अतिशय शोभायुक्त यह कन्या कोई किन्नरी है अथवा विद्याधरी? यह रोहिणी है अथवा कमलनिवासिनी कमला? यह इन्द्राणी है अथवा कोई

मनोहर देवी ? यह नागकन्या है अथवा कामदेव की प्रिया रति है ? इसका रूप मेरे मन को बरबस अपनी ओर खैंचे लेता है। किंतु यह तो ऐसे व्यक्ति की कन्या है जो मुझ से सब प्रकार से घृणा करता है। यद्यपि मेरा महामात्य वर्षकार संसार के प्रत्येक कार्य को कर सकता है, किन्तु वह इस प्रकार के कार्य मे मुझे सहायता नही देगा। वह देशभक्त है, साम्राज्यकामी है। अतएव मगध के साम्राज्य को बढाना उसके जीवन का व्रत है, किन्तु मेरे भोग-विलासो के विषय मे वह आचारवान् व्यक्ति मुझे तनिक भी सहायता नही देगा। ऐसी स्थिति मे क्या किया जावे ? मेरा हृदय तो अपने वश मे नही रहा। इस महिला-रत्न को प्राप्त किये बिना मेरा सारा साम्राज्य नि सार है।"

इस प्रकार विचार करते-करते सम्राट् अचेत हो गये।

३५

मगध के दो राजनीतिज्ञ

अभयकुमार अब बालक नही था। बह अठारह-उन्नीस वर्ष का युवक
बन चुका था। उसकी उठान अच्छी थी, अत इस अठारह-उन्नीस वर्ष की आ
मे भी वह पच्चीस-तीस वर्ष का युवक दिखलाई देने लगा था। युवराज होने
कारण उसे राज्य के सभी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने पडते थे। उसके कार
महामात्य वर्षकार तथा सम्राट् बिम्बसार दोनो का ही कार्य बहुत हल्का हो ग
था। उसको सदा यह ध्यान रहता था कि पिता को कोई कष्ट न हो। उन
शारीरिक स्थिति पर वह अनेक प्रसिद्ध वैद्यो के होते हुए भी स्वय ध्यान कि
करता था।

इधर कुछ सप्ताह से वह देखता है कि पिता उदास रहते है।
कई बार उनसे इस उदासी का कारण पूछा भी, किन्तु उन्होने सदा ही
टाल दी। अभयकुमार ने कई चिकित्सको से भी उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा क
किन्तु वह भी इस विषय मे कुछ सहायता न कर सके। अन्त मे उसको
चित्रकार द्वारा दिये हुए चित्र का ध्यान आया। यह सोचते ही उसने भ
बुलवा भेजा। भरत आते ही अभिवादन करके उनके सामने खडा हो
अभयकुमार उससे बोले—

"कहो चित्रकार! राजगृह मे आपको किसी प्रकार का कष्ट तो न

भरत—जब सम्राट् तथा युवराज दोनों की मुझ पर कृप
मुझे कष्ट क्यो होने लगा, युवराज!

अभय—तुमको अपने रहने का मकान तो पसद आया?

भरत—वह तो युवराज ऐसा जान पडता है जैसे उसे आपने मे
बनवाया हो। उसमें मेरी सारी आवश्यकताए पूर्ण हो जाती है।
में मैने अपनी चित्रशाला बना ली है, जिसमे राजगृह

गण्यमान्य व्यक्तियो का स्वागत करने का मुझको सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। उसको मैने अपने बनाये चित्रो से खूब सजा रखा।

अभयकुमार—तब तो सम्राट् भी आपकी चित्रशाला मे आते रहते होगे।

भरत—जी युवराज! सम्राट् अभी तक तीन-चार बार कृपा कर चुके है।

अभय—क्या सम्राट् आपसे कुछ चित्र भी बनवा रहे है?

भरत—जी, उनको तो केवल एक ही चित्र पसद है। वह तो उसी को विभिन्न मुद्राओ मे बनवाया करते है।

अभय—वह चित्र किस का है?

भरत—वह बज्जी गणतत्र के गणपति लिच्छवी राजा चेटक की सबसे छोटी पुत्री चेलना का चित्र है युवराज!

अभय—उसी का चित्र तो तुमने अपनी प्रथम भेट के समय सम्राट् को दिया था?

भरत—यही बात है देव!

इस पर अभयकुमार मन ही मन कुछ सोचने लगे। वह तुरत समझ गये कि पिता लिच्छवी राजकुमारी पर आसक्त है। उनकी समझ मे यह तुरत आगया कि सम्राट् की चिन्ता का वास्तविक कारण यही है। उन्होने पिता के कष्ट के वास्तविक कारण का पता लगने पर प्रथम उस सम्बध मे अपने कर्तव्य पर विचार किया। वह सोचने लगे कि पिता का कष्ट तो दूर करना ही चाहिये। अन्त में उन्होने इस विषय मे महामात्य वर्षकार से परामर्श करने का निश्चय किया। उन्होने चित्रकार को बिदा करके अपना रथ मगवाया और उसपर बैठ कर महामात्य से मिलने चले।

उस समय लगभग एक पहर रात्रि गई होगी। महामात्य एक बहुत बडे महल में निवास करते थे। उनके राजमहल के सामने सैनिक पहरा रहता था। किन्तु युवराज के रथ को देखते ही सैनिक उनको सैनिक ढग से अभिवादन करके

एक ओर हट गये। सामने एक बडा सा चत्वर था, जिसमे एक साथ पद्रह-बीस रथ खडे हो सकते थे। चत्वर के बाद एक मजिल का महल था, जिसमे आठ-दस कमरे थे। इनमे से एक मे महामात्य का कार्यालय, एक मे उनका शयनकक्ष तथा एक अन्य कमरे मे उनका मत्रणागृह था। युवराज पहुँचे तो महामात्य अपने कार्यालय मे बैठे कुछ राजपत्रो पर आज्ञाए लिख रहे थे। युवराज को इस असमय आए देखकर महामात्य बोले—

"आइये युवराज! आज इस समय कैसे कष्ट किया?"

"कुछ आवश्यक परामर्श करना था महामात्य!"

"कहिये! मै प्रस्तुत हू।"

"बात यह है कि मै कई सप्ताह से पिता जी को कुछ चिन्तित-सा पाता हूँ। क्या आपने भी इस बात पर लक्ष्य किया है?"

"लक्ष्य क्या करता, उनकी चिन्ता तो बिल्कुल स्पष्ट है, युवराज!"

"तो आपको उनकी चिन्ता के कारण का भी पता होगा?"

"मै समझता हू कि उनकी चिन्ता का कारण वैशाली की राजकुमारी का वह चित्र है जो उनको अयोध्या के चित्रकार भरत ने उस दिन दिया था।"

"तो क्या आपने उनकी चिन्ता के निवारण करने का कुछ उपाय भी सोचा?"

"उपाय तो इसका केवल एक ही है कि सम्राट् के लिये उस राजकुमारी को प्राप्त किया जावे, किन्तु यह कुछ सरल कार्य नही है। इस चित्र के आने के पूर्व भी मै इस राजकुमारी को सम्राट् के लिये प्राप्त करने का यत्न कर चुका हू। क्योकि मेरी नीति यह है कि मगध साम्राज्य और उसकी मित्रता का विस्तार यथासभव बिना युद्ध के किया जावे। मगध के उत्तर मे वैशाली गणतंत्र एक प्रबल राज्य-सगठन है। वह मगध का पूर्णतया विरोधी है। मै सोचता था कि यदि वहा की राजकुमारी से सम्राट् का विवाह हो जाता तो वैशाली का गणतत्र हमारा मित्र राष्ट्र बन जाता। किन्तु लिच्छवी गणतत्र का गणपति राजा चेटक जैनी होने के कारण हमसे घृणा करता है। आज कल तो लिच्छवी

लोगो का उत्साह इतना बढा हुआ है कि वह मगध पर आक्रमण करके हमारे यहा भी गणराज्य की स्थापना करना चाहते है, फिर उनसे विवाह-सबन्ध की बात कैसे चलाई जा सकती है।

अभयकुमार—महामात्य ! मुझे आपकी बुद्धि की प्रशसा करनी ही पडती है। आप बहुत दूर से बात को ताड लेते है। जिस बात का पता मुझे अत्यन्त यत्न करने पर चल सका, आप उसको पहले ही जान चुके थे। इतना ही नही, वरन् आप उद्योग तो उसके लिये उससे भी पूर्व कर चुके थे। किन्तु, महामात्य ! आप जहा अपना उद्योग इस विषय मे सफल होते न देखकर चुप होकर बैठ गये, वहा मै इस विषय मे निराश नही हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि हम तनिक होशियारी से काम ले तो इस विषय मे सफलता निश्चय से प्राप्त की जा सकती है।

वर्षकार—मै आपका आशय नही समझा, युवराज ! वैशाली गणतत्र इस समय मगध पर आक्रमण करने की तैयारी बडे जोर-शोर से कर रहा है। सोन तथा गगा दोनो ही नदियो के उस पार के घाटो पर बडे-बडे युद्धपोत सेनाओ को इस पार उतारने के लिये तैयार खडे है। समस्त बज्जी गणतत्र के युद्ध-कारखानो मे धडाधड शस्त्रास्त्र बनाये जा रहे है। सैनिको की नई भर्ती करके उनको बडे वेग से सैनिक शिक्षा दी जा रही है। फिर अग देश का राजा दृढवर्मा तथा वत्स देश का राजा उदयन भी मगध के विरोधी तथा वैशाली के राजा चेटक के सबधी है। मगध और वैशाली मे युद्ध होने पर वह वैशाली को अवश्य पूरी सहायता देंगे। ऐसी स्थिति मे तुमको आशा की किरण कहा से दिखलाई दी, यह मै नही समझा युवराज !

अभयकुमार—मेरा विचार तो महामात्य यह है कि उस राजकुमारी को वैशाली से उडा कर मगध ले आया जावे।

महामात्य अभयकुमार के मुख से इन शब्दो को सुनकर एकदम चौक पडे और बोले—

"कैसी बात करते हो, युवराज ! क्या सर्प के बिल मे घुस कर

सर्पिणी का अपहरण किया जा सकता है ? क्या सिंह की मांद मे जाकर उसके बच्चे को पकडा जा सकता है ? वैशाली नगर की रक्षा के प्रबंध से मै भली प्रकार परिचित हूँ युवराज ! मै कई बार वेष बदल-बदल कर वहाँ के दुर्ग तथा रक्षा-मार्गो को अपनी आँखो से देख चुका हू । कैसा ही चतुर व्यक्ति भी उनसे बचकर सकुशल बाहर नही निकल सकता युवराज !"

अभयकुमार—किन्तु महामात्य ! मैं तो उनका स्पर्श भी करना नही चाहता। मै तो इस कार्य के लिये नया ही सुरग मार्ग बनवाना चाहता हूं ।

अभयकुमार की इस बात को सुनकर महामात्य बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—

"हाँ, यह आपने वास्तव मे मौलिक सूझ की बात कही। अच्छा, इस कार्य के लिये वैशाली किसको भेजा जावे ?"

अभयकुमार—मैं समझता हू कि इस कार्य को मेरे अतिरिक्त और कोई भी सपादन नही कर सकता।

महामात्य—यह कैसी बात कहते हो युवराज ! इस बात के लिये तुम अपने प्राणो को सकट मे डालोगे ?

अभयकुमार—मेरे प्राणो पर सकट नही आ सकता महामात्य। मैं रत्नो के एक जैन व्यापारी का वेष बनाकर वैशाली जाऊँगा और वहा सबको अपने वश मे करके राजकुमारी को सुरग के मार्ग से ले आऊँगा। आप अभी से एक ऐसी सुरग बनवाना आरंभ कर दे जो गगा के इस पार से होती हुई वैशाली के उस मकान मे समाप्त हो, जिसको मै वैशाली मे अपने रहने के लिये ठीक करूं ।

महामात्य—अब मै समझा। युवराज ! आपकी योजना ठीक है और इस प्रकार इस योजना द्वारा हम न केवल सम्राट् को चिन्तामुक्त कर सकेंगे, वरन् वैशाली की शत्रुता को भी मित्रता के रूप मे परिणत कर सकेंगे। मै आपका इस योजना के लिये बधाई देता हू। किन्तु आपको इस योजना मे अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योकि तनिक सी असावधानी होने पर ही प्राणों पर सकट आ जाना निश्चित है।

अभयकुमार—उसके लिये आप निश्चित रहे महामात्य ! मै लिच्छवियो को इस प्रकार वश मे कर लूँगा, जिस प्रकार सपेरा सापो को वश मे कर लेता है। हाँ, आपको मुझे एक सहायता और देनी होगी।

महामात्य—वह क्या ?

अभयकुमार—श्रीमान् पिता जी से जाने के सबध मे अनुमति की, क्योकि उनकी अनुमति तथा आशीर्वाद के बिना मेरा जाना उचित न होगा।

अभयकुमार—आपका यह कहना यथार्थ है कुमार ! मै सम्राट् से मिल कर तुम्हारी इस विषय की कठिनाई को दूर कर दूँगा। युवराज ! आप जानते है कि सम्राट् पुत्र-प्रेम के कारण तुमको जाने की अनुमति बडी कठिनता से देगे, किन्तु मै उनको राजनीतिक दावपेच समझा कर इस विषय मे उनकी अनुमति ले ही लूँगा। अब मै आपके प्रस्थान करने से पूर्व अनेक गुप्तचरो को वैशाली भेज रहा हू, जिससे उनके द्वारा न केवल वहा के समाचार समय-समय पर मिलते रहें, वरन् उनके द्वारा तुम भी यहा समाचार भेज सको तथा आवश्यकता पडने पर वह वहा आपके काम भी आ सके।

अभयकुमार—आपका वह विचार बडा सुन्दर है महामात्य ! अच्छा अब रात बहुत हो गई है। आप मुझे विश्राम करने की अनुमति दे।

यह कहकर युवराज अपने रथ पर बैठकर अपने निवास-स्थान को चले गए।

३६

रत्नों का व्यापारी

"मुझे आशा नही थी कुमार ! कि आप अपने अभिनय का इस उत्तम रीति से सम्पादन कर सकेंगे।"

"फिर आपने मुझे कुमार कहा ! अभी से अपने पाठ को भूल गये, आप माणिकचन्द जी !"

माणिकचन्द—मैं क्षमा चाहता हूँ सेठ रत्नप्रकाश जी।

रत्नप्रकाश—हा। अब आये आप ठीक मार्ग पर। किन्तु हीरालाल जी का कार्य भी कम अच्छा नही रहा। वास्तव मे रत्न-शास्त्र का जितना सुन्दर ज्ञान उनको है, उतना हममे से किसी को नही है।

हीरालाल—किन्तु रत्नप्रकाश जी ! आपका प्रभाव राजा चेटक पर बहुत ही अच्छा पडा। वह आपको समस्त जबूद्वीप के बडे से बडे धन-कुवेरो मे मानने लगे हैं।

सम्पतलाल—अजी भला, रत्नप्रकाश जी द्वारा भेट की हुई रत्नों की माला में क्या इतना भी प्रताप न होता।

रत्नप्रकाश—किन्तु सम्पतलाल जी ! अब अपनी योजना की अब-तक की सफलता का समाचार भी घर भेज देना चाहिये।

सम्पतलाल—यह बहुत आवश्यक है रत्नप्रकाश जी ! अच्छा प्रथम आप अध्ययन-कक्ष मे जाकर अपना पत्र लिख ले।

रत्नप्रकाश—यह आपने ठीक कहा।

यह कहकर रत्नप्रकाश उन तीनो को वही छोडकर बगल के अध्ययन-कक्ष मे जाकर पत्र लिखने लगे। उन्होने निम्नलिखित पत्र लिखा—

"आदरणीय !

आपकी कृपा से हम लोग रत्नो का व्यापार करने वाले जौहरी तो बन

ही गये थे। हम लोगो ने हीरा, पन्ना, मरकत, मुक्ता, माणिक, पुखराज मणि, नीलमणि, प्रवाल आदि रत्नो को लेकर अपने को व्यापारियो के एक समूह के रूप मे सगठित किया, जिसका नेता-सेठ मुझे बनाया गया। घर से आकर मार्ग मे हम लोग प्रत्येक बडे नगर मे ठहर कर रत्नो का न केवल व्यापार करते थे, वरन् प्रत्येक जैन सस्था का निरीक्षण करके उसकी बडी भक्तिपूर्वक आर्थिक सहायता भी किया करते थे। त्रिकाल सामायिक तथा पच परमेष्ठि स्तोत्र का पाठ करना तो हमने अपना नित्य नियम बना लिया था। इस प्रकार समस्त देश मे अपने जैनत्व को प्रसिद्ध करते हुए कुछ दिन बाद हम वैशाली जा पहुचे। यहा हम प्रथम एक उपवन मे ठहरे। इस उपवन मे एक जैन संस्था भी थी। यहा हमने जैन विधि से बडे ठाठ से उपासना की। इससे यहा के जैनियो मे बात की बात मे यह समाचार फैल गया कि कुछ विदेशी जैन धनकुबेर व्यापार के लिये वैशाली आये हुए है।

कुछ समय उपवन मे विश्राम कर हमने कुछ उत्तमोत्तम रत्नो को चुना। अब हमने गणपति राजा चेटक की सभा मे जाने की तैयारी की। राज-सभा मे साथ जाने के लिये हमको कुछ स्थानीय जैन सेठ भी मिल गये। राजा चेटक की सभा को सघागार कहते है। उनकी राजसभा मगध की राजसभा से कम बडी नही है। उसमे नौ सहस्र नौ सो निन्नानवे राजाओ के बैठने के पृथक्-पृथक् आसन है। गणपति राजा चेटक का आसन उन सबसे अधिक विशाल तथा सुन्दर है। राजा चेटक ने हम लोगो के आने का समाचार पाकर हम लोगो को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अन्दर बुलवाया। हमने भी उनको अपने छाटे हुए रत्नो की एक माला भेट की। यहा के जैन सेठ हमारे साथ थे ही। उन्होने हमको अत्यन्त धार्मिक जैनी के रूप मे राजा से मिलाया। राजा चेटक के साथ कुछ मधुर वार्तालाप करके हमने उनसे कहा—

"राजाधिराज ! हम रत्नो के व्यापारी है। अनेक देशो मे भ्रमण करते हुए हम यहां आ पहुचे है। हमारी इच्छा आपके नगर मे कुछ दिन ठहरकर यहा के स्थान देखने की है। किन्तु हमारे पास निवास-स्थान कोई नही है। हमको

इस राजमन्दिर के समीप किसी मकान मे ठहरने की अनुमति दी जावे।"

इस पर राजा चेटक ने हमको अपने राजभवन के पास उसी हर्म्य मे ठहरने की अनुमति दे दी, जिसमे पहिले भरत चित्रकार रहा करता था। अब हम अपने समस्त सामान तथा सेवको सहित उस मकान मे आ गये है।

हमारा विचार इस स्थान पर एक चैत्यालय बनवाने का है, जिससे हम यहा अत्यन्त समारोहपूर्वक जिनेन्द्र भगवान् का पूजन नित्य कर सके।

सूचनार्थ निवेदन है।

भवदीय
"रत्नप्रकाश"

रत्नप्रकाश ने इस पत्र को एक चर के द्वारा राजगृह के महामात्य वर्षकार के पास भेज दिया।

रत्नप्रकाश ने पाच-सात दिन के अन्दर ही अपने निवास-स्थान मे एक अत्यन्त मनोहर चैत्यालय बनवा लिया। अब वह उसमे अत्यन्त समारोह-पूर्वक जिन भगवान् का पूजन प्रात साय करने लगे। कभी तो वह बडे-बडे मनोहर स्तोत्रो से भगवान् की स्तुति किया करते थे। कभी-कभी वह उन सेठो के साथ जिनेन्द्र भगवान् का पूजन किया करते थे। कभी-कभी तो उनको पूजन करते-करते ऐसा आनन्द आ जाता कि वह कृत्रिम तौर से भगवान् के सामने नृत्य भी करने लगते थे। कभी-कभी वह अपनी स्तुति-प्रार्थना आदि मे उत्तमोत्तम शब्द करने वाले बाजो का प्रयोग भी किया करते थे। कभी वह जैन पुराणों को भी जोर-जोर से बाचा करते थे। जिस समय वह इस प्रकार भजन, पूजन आदि किया करते तो उनका शब्द रनवास मे बराबर जाया करता था। इससे इनके स्तोत्र आदि को राजमहल की महिलाए भी सुना करती और मन ही मन उनकी जिन-भक्ति की प्रशसा किया करती थी।

३७

चेलना से विवाह

अपराह्ण का समय है। मजदूर अपने-अपने कार्य मे लगे हुए है। राजा चेटक की राजसभा पूर्णतया भरी हुई है। नगरनिवासी व्यापारी लोग अपने-अपने कार्य मे लगे हुए है। घरो मे केवल स्त्रिया ही स्त्रिया रह गई है, जो अपने घर के काम-धन्धो से फुर्सत पाकर दो-दो, चार-चार की टोलियो मे बैठी हुई आपस मे गप्पे हाक रही है। राजा चेटक का महल भी सुनसान है। राज-सेवक अपने कार्य को समाप्त कर के सभी जा चुके है। दासिया अपना-अपना कार्य समाप्त करके कोई ऊघ रही है तथा कोई सो रही है। राज-माता स्वाध्याय मे लगी हुई है। केवल एक कमरे मे से कुछ फुसफुस का शब्द सुनाई पड रहा है। उनमे से एक बोली—

"बहिन चेलना ! मैने भगवान् का ऐसे भक्तिभाव से पूजन करने वाले धार्मिक पुरुष अभी तक कभी नही सुने।"

"बहिन ज्येष्ठा ! इनके मधुर कण्ठ से गाये हुए जिनेन्द्र भगवान् के स्तोत्रो को सुनकर मै भी प्राय. ऐसा ही सोचा करती हू।"

ज्येष्ठा—"मेरे मन मे तो कई बार यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मै न केवल उनके चैत्यालय को जाकर स्वय देखू वरन् उनको भगवान् की स्तुति करते हुए भी अपनी आखो से जाकर देखू।"

चेलना—"इच्छा तो मेरी भी ऐमी ही होती है।"

ज्येष्ठा—किन्तु अपरिचित व्यक्तियो के पास जाते कुछ सकोच होता है।

चेलना—ऐसे स्वधर्मी भाइयो के साथ तो सकोच की कोई बात नही।

ज्येष्ठा—अच्छा, तो चल देख आये।

चेलना--अच्छा, चल।

ऐसा कहकर वे दोनो बहिनें बाहिर के वस्त्र पहनकर उठकर बाहिर की ओर चल दी। राजमहल से निकल कर वह अपने सामने के उसी महल मे आईं, जिसमे युवराज-अभयकुमार सेठ रत्नप्रकाश का वेष बनाये हुए रहते थे। राजकुमारियाँ उस महल मे जाकर सीधे एक ओर बने हुए चैत्यालय मे गई। चैत्यालय बहुत छोटा, किन्तु अत्यत कलापूर्ण ढग से बना हुआ था। उसके बीचो-बीच एक छोटी-सी वेदी के ऊपर एक बहुत छोटा सिहासन था, जिसकी लबाई लगभग नौ इच थी। सिहासन सोने का बना हुआ था। सिंहासन पर भगवान् पार्श्वनाथ की एक सोने की रत्नमयी प्रतिमा स्थापित की हुई थी। प्रतिमा पद्मासन थी और उसके दोनो घुटनो की लबाई लगभग आठ इन्च थी। उसके सिर पर शेषनाग के सातो फन अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। प्रतिमा के रत्नो से अत्यधिक प्रकाश निकल रहा था। प्रतिमा के ऊपर एक छोटा-सा बडा सुन्दर छत्र लगा हुआ था और छत्र के दोनो ओर चमर लगे हुए थे। प्रतिमा के दोनो ओर वेदी के दोनो थम्भो पर चमर लिये हुए इन्द्र की मूर्तियाँ लगी हुई थी जो नृत्य करने की मुद्रा मे थी। चैत्यालय के दृश्य को देखकर दोनो राजकुमारियाँ आनन्द से विभोर हो गईं। वह अपने दोनो हाथ जोडकर निम्नलिखित शब्दो मे भगवान् की स्तुति करने लगी——

"णमो अरिहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ॥

चत्तारि मगल, अरिहत मगल, सिद्ध मगल, साहू मगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरण पव्वज्जामि, अरिहत सरण पव्वज्जामि, सिद्ध सरण पव्वज्जामि, साहू सरण पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरण पव्वज्जामि।

श्री ऋषभ ॥१॥ अजित ॥२॥ सभव ॥३॥ अभिनन्दन ॥४॥ सुमति ॥५॥ पद्मप्रभ ॥६॥ सुपार्श्व ॥७॥ चन्द्रप्रभ ॥८॥ पुष्पदन्त ॥९॥ शीतल ॥१०॥ श्रेयास ॥११॥ वासुपूज्यः ॥१२॥ विमल ॥१३॥ अनन्त ॥१४॥ धर्मः ॥१५॥

शान्ति ॥१६॥ कुन्थु ॥१७॥ अर ॥१८॥ मल्लि ॥१९॥ मुनिसुव्रत ॥२०॥ नमि ॥२१॥ नेमि ॥२२॥ पार्श्वनाथ ॥२३॥ महावीर ॥२४॥ इति वर्तमान-कालसवन्धिचतुर्विशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नम ॥

अद्य मे सफल जन्म, नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव, हेतुमक्षयसम्पद ॥१॥
अद्य मे सफलं जन्म, प्रशस्त सर्वमङ्गलम् ।
ससारार्णवतीर्णोऽह, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥
अद्य कर्माष्टकज्वाल, विधूत सकषायकम् ।
दुर्गतेर्विनिवृत्ताऽह, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥
अद्य सौम्या ग्रहा सर्वे, शुभाश्चैकादश स्थिता ।
नष्टानि विघ्नजालानि, जिनेद्र तव दर्शनात् ॥४॥
अद्य मिथ्यान्धकारस्य, हन्ता ज्ञानदिवाकर ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन्, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥
अद्याह सुकृतीभूता, निर्धूताशेषकल्मषा ।
भुवनत्रयपूज्याऽह, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

इस प्रकार स्तुति करके दोनों बहिने चैत्यालय मे भगवान् की प्रदक्षिणा देने लगी ।

अभयकुमार तो राजगृह से आये ही इन राजकुमारियो के लिये थे। वह सदा ही राजमहल के द्वार पर दृष्टि रखने का प्रबन्ध किये रहते थे। जब उनको समाचार मिला कि राजमहल से निकल कर दो राजकुमारियाँ उनकी ओर को ही आ रही है, तो वह भी भगवान् के दर्शन करने को शीघ्र तैयार हो गये। राजकुमारियों के दर्शन करते समय वह भी मन्दिर मे जा पहुँचे और चैत्यालय के बाहिर के बरामदे मे जाकर शास्त्र-स्वाध्याय करने लगे। राज-कुमारियो ने भगवान् के दर्शन करके उनकी तीन परिक्रमा दी और फिर उनकी दीवारो को देखती हुई बाहिर के कक्ष मे स्वाध्याय करते हुए अभयकुमार के पास से निकली। उनके समीप आने पर राजकुमार बोले—

"आपको यह चैत्यालय पसद आया ?"

इस प्रश्न को सुनकर ज्येष्ठा ने कुछ-कुछ लज्जित सी होकर उत्तर दिया—

"भला, इतने सुन्दर चैत्यालय को देखकर किसका मन प्रसन्न न होगा ? यह चैत्यालय आपने ही बनवाया है ?"

अभयकुमार—मकान तो सब यही का है। हाँ, वेदी, मूर्ति आदि पूजन का समस्त सामान मै राजगृह से अपने साथ लाया हूँ।

जेष्ठा—अच्छा आप राजगृह के निवासी है ?

चेलना—तो क्या आप प्रतिष्ठित प्रतिमा को बराबर अपने साथ रखते है ?

अभयकुमार—ऐसा ही है राजकुमारी !

ज्येष्ठा—तो प्रतिष्ठित प्रतिमा को साथ रखने में तो आपको बडी भारी दिक्कत होती होगी ? क्योकि प्रतिष्ठित प्रतिमा की अनेक मर्यादायें होती है, जिनका मार्ग मे पालन करना पडता है।

अभयकुमार—तो राजकुमारी जी ! यह जीवन उन मर्यादाओ का पालन करने के लिये ह। तो है और किसलिये है ?

ज्येष्ठा—आप लोग श्री जिनेन्द्र भगवान् की अत्यन्त भक्ति-भाव से स्तुति एव उपासना करते है, इसलिये आप धन्य है। आप लोगो के समान सच्चा भक्त इस पृथ्वीतल पर दूसरा कोई दिखाई नही देता। आपका ज्ञान तथा रूप सभी अप्रतिम है। कृपा कर आप बतलावे कि राजगृह कहाँ है। वह किस देश मे है ? वहाँ का राजा कौन है ? और वह किस धर्म का पालन करता है ?"

अभयकुमार—राजकुमारियो ! यदि आपको मेरा परिचय जानने की इच्छा है तो आप सुने।

"समस्त लोक का मन हरने वाला, लाख योजन चौड़ा, गोल और तीन लोक में शोभायमान जम्बू द्वीप है। वह जम्बू द्वीप कमल के समान सुशोभित है। क्योकि जिस प्रकार कमल के पत्ते होते है, उसी प्रकार जम्बू द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत तथा ऐरावत नाम वाले सात क्षेत्र है। जिस प्रकार कमल मे पराग होता है उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप में नक्षत्ररूपा

पराग मौजूद है। जिस प्रकार कमल में कली होती है उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप मे भी सुमेरु पर्वतरूपी कली बनी हुई है। जिस प्रकार कमल मे मृणाल होता है, उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप मे भी शेषनागरूपी मृणाल लगा हुआ है। जिस प्रकार कमल पर भ्रमर रहते है उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप मे भी मनुष्य-रूपी भ्रमर इसके ऊपर गूँजते रहते है। यह जम्बू द्वीप दूध के समान उत्तम निर्मल जल से भरे हुए तालाबों से जीवो को नाना प्रकार के अनेक आनन्द प्रदान करने वाला है। यह जम्बू द्वीप राजा के समान जान पडता है। क्योकि जिस प्रकार राजा अनेक बडे-बडे राजाओ से सेवित होता है उसी प्रकार यह द्वीप भी अनेक प्रकार के महीधरो अर्थात् पर्वतो से सेवित है। जिस प्रकार राजा कुलीन वश का होता है उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी कुलीन अर्थात् (कु) पृथ्वी मे लीन है। जिस प्रकार राजा शुभ स्थिति वाला होता है उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी अच्छी तरह स्थित है। जिस प्रकार राजा महादेशी अर्थात् बडे-बडे देशो का स्वामी होता है, उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी महादेशी अर्थात् विस्तीर्ण है। जिस प्रकार लोक अलोक का मध्यभाग है, उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी समस्त द्वीपो तथा तीन लोक के मध्य भाग में है।

"इस जम्बू द्वीप के मध्य में अनेक शोभाओ से शोभित, गले हुए सोने के समान देह वाला, देदीप्यमान, अनेक प्रकार की कान्ति वाला सुमेरु पर्वत है। उस मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में उत्तम धान्यो को उपजाने वाला, मनोहर, अनेक प्रकार की विद्याओ से पूर्ण, सुखो का स्थान भरत क्षेत्र है। यह भरत क्षेत्र साक्षात् धनुष के समान है। जिस प्रकार धनुष मे बाण होते है उसी प्रकार इसमे गगा तथा सिन्धु नदी के रूप में दो बाण है। यह भरत क्षेत्र अनेक प्रकार के बडे-बड़े देशों से व्याप्त, पुर तथा ग्रामो से सुशोभित, अनेक मुनियों से पूर्ण, पुण्य की उत्पत्ति का स्थान तथा अत्यन्त शोभायमान है। जिस प्रकार शरीर के मध्य मे नाभि होती है उसी प्रकार इस भारतवर्ष के मध्य मे मगध नामक एक देश है। उस मगध देश में अनेक ऐसे ग्राम पास-पास बसे हुए हैं, जो धन-धान्य तथा गुणी मनुष्यो से व्याप्त तथा सम्पत्तिमान् है।

वहाँ अत्यन्त निर्मल जल से भरे हुए, काले-काले हाथियो से व्याप्त अनेक सरोवर ऐसे दिखलाई देते है, मानो स्वय मेघ ही आकर उनकी सेवा कर रहे है। वहाँ के तालाब साक्षात कृष्ण के समान मालूम होते है। जिस प्रकार, श्रीकृष्ण कमलाकर—कमला (लक्ष्मी) के आकर (खान) है, उसी प्रकार तालाब भी कमलो के आकर (खान) है। उस मगध देश मे राजघरो मे सुशोभित, अनेक प्रकार की शोभाओ वाला, धन्य-धान्य से पूर्ण, अनेक जनो से व्याप्त राजगृह नामक एक नगर है। वहाँ न तो अज्ञानी पुरुष है, न शीलरहित स्त्रियाँ हैं और न निर्धन पुरुषो का निवासस्थान है। वहाँ के पुरुष कुवेर के समान ऋद्धि के धारण करने वाले तथा स्त्रियाँ देवागनाओ के समान है। वहा स्वर्ग के विमानो के समान सुवर्ण के अनेक घर बने हुए है। वह राजगृह नगर बडे-बडे सुवर्णमय कलशो से शोभित है। उसमे अनेक ऐसे ऊँचे-ऊँचे सौध है जो अपनी ऊँचाई से आकाश का स्पर्श करने वाले तथा देदीप्यमान है। वहाँ की भूमि अनेक प्रकार के फलो से मनुष्यो के चित्त को सदा आनन्दित करती रहती है। उस मगध देश तथा राजगृह नगर के स्वामी महाराज श्रेणिक बिम्बसार है। वह प्रजाओ का नीतिपूर्वक पालन किया करते है। राजा श्रेणिक जैन धर्म के परम भक्त है। अभी उनकी आयु छोटी है, किन्तु तो भी वह अनेक गुणो के भडार है। वह रूप में कामदेव के समान, वल मे विष्णु के समान तथा ऐश्वर्य मे इन्द्र के समान है। हे राजकन्याओ ! हम लोग उन्ही के नगर के रहने वाले व्यापारी है। हमने अपनी छोटी-सी आयु मे इस भूमण्डल की चारो दिशाओ की यात्रा की है। हम सभी कलाओ के अच्छे जानकार है। भूमण्डल भर मे हमने अनेक राजाओ को देखा, किन्तु जैसी जिनेन्द्र की भक्ति, सत्य, गुण, तेज हमने महाराज श्रेणिक में देखा वैसा कही नही देखा। उनके प्रताप से उनके सभी शत्रु अपने-अपने मनोरम नगरो को छोड-छोड कर वन में रहने लगे। राजा श्रेणिक के जैसा कोषबल भी आज भारत के किसी अन्य राजा के पास नही है। उनके समान धर्मात्मा, गुणी तथा प्रतापी इस पृथ्वी पर दूसरा राजा नही है। हमको यह सौभाग्य प्राप्त है कि हम उन महाराज

श्रेणिक के कृपापात्र है और उनके महल मे जब चाहें तब जा सकते हैं।"

युवराज अभयकुमार उन दोनो राजकन्याओ के सामने ज्यो-ज्यो राजा श्रेणिक के रूप तथा गुण की प्रशसा करते जाते थे त्यो-त्यो उन कन्याओ के ऊपर एक नशा जैसा चढता जाता था। क्रमश वह राजा श्रेणिक के गुणो को सुनकर अत्यन्त मुग्ध हो गई। उनके मन में यह इच्छा उठने लगी कि हम किस प्रकार वर रूप में राजा श्रेणिक को प्राप्त करे। वह राजा श्रेणिक के गुणो पर एकदम रीझ गई। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर अत्यन्त सकुचाते हुए ज्येष्ठा बोली—

"श्रेष्ठिवर्य ! किसी महापुरुष के ऐसे लोकोत्तर गुणो का वर्णन हमारे सामने करने से क्या लाभ, जबकि वह हमारे लिये अप्राप्य है। हम पिता के वश मे है। न जाने हमारे पिता के उन मगधेश के साथ कैसे सबन्ध हो, वरन् हम तो यह सुनती है कि हमारे गणतन्त्र तथा मगधराज का आजकल युद्ध होने वाला है। ऐसी स्थिति मे ऐसे लोकोत्तर गुणो के धारक पुरुष की इच्छा करना हमारे लिये उस बौने के समान है जो ऊँचे आम के वृक्ष से अपने हाथ से ही फल तोडना चाहता हो।"

अभयकुमार—राजकुमारी ! तुमने ऐसी क्या बात कह दी ? मनुष्य सर्वशक्तिमान् है। यदि आपके मन मे राजा श्रेणिक को प्राप्त करने की इच्छा है तो मेरे पास ऐसी विद्या है कि मै आपको तुरन्त ही राजगृह नगर ले चल सकता हूं। आप केवल थोडा साहस करके चलने की हा-भर कर दीजिये।

इस पर ज्येष्ठा ने लजाते हुए कहा—"हम तो आपकी बातचीत से उन नरश्रेष्ठ के आधीन हो चुकी है। आपके उपाय मे सहयोग करने मे हमको प्रसन्नता होगी।"

अभयकुमार—"तो आप उठकर इस बाये हाथ के मार्ग में प्रवेश करें। मैं आप को राजगृह नगर में लिये चलता हू।"

इस समय तक अभयकुमार के मकान से लेकर वैशाली के बाहर गगा-तट तक सुरंग बनकर तैयार हो चुकी थी। सुरग का द्वार बायें हाथ की एक कोठरी में खुलता था। ज्येष्ठा तथा चेलना जब उस कमरे मे आईं तो वह

सुरंग में अधकार देख कुछ घबरा सी गई । ज्येष्ठा बडी थी और समझदार भी अधिक थी । उसने मनमे सोचा कि मुझे इस मार्ग से जाना उचित नही है । वह अभयकुमार से बोली—

"श्रेष्ठिवर्य ! आप चेलना को लेकर तनिक इस सुरग के मार्ग से आगे बढे । मैं अपना रत्नहार लेती आऊँ, वह मुझे बहुत प्यारा है ।"

यह कहकर ज्येष्ठा तो वहा से चली गई, किन्तु अभयकुमार ने चेलना को तुरत ही अदर रखी हुई एक छोटी सी डोली मे बिठला लिया । वह चारो जन अपनी कोठरी तथा सुरग के मार्ग को अन्दर से बन्द करके उस डोली को स्वय ही उठा कर ले चले । क्रमश वह लोग सुरग से बाहिर आ गये । यहा अत्यन्त तेज घोडो वाले रथ उनके लिये तैयार खडे थे । वह उन रथो पर बैठकर अत्यन्त तेज़ी से राजगृह नगर की ओर चले । रथ के थोडी दूर आगे बढने पर कुमारी चेलना को अपने माता-पिता की याद सताने लगी और वह रोकर कहने लगी—

"श्रेष्ठिवर्य ! मुझे अपनी माता की याद आ रही है । आप मुझे वापिस वैशाली ले चले ।"

यह सुनकर अभयकुमार बोले—

"राजकुमारी ! अब तो पीछे वापिस लौटना किसी प्रकार सभव नही है । क्योकि तुम्हारे पिता हमारे बिना कहे आने पर रुष्ट होकर हमारे साथ तुमको भी जान से मरवा देंगे । इसलिये तुम मन मे थोडा धैर्य धारण करो । जब तुम कामदेव के समान सुन्दर राजा श्रेणिक के दर्शन करोगी तो तुम सारे दुख भूल जाओगी ।"

यह सुनकर कुमारी चेलना ने रोना बन्द कर दिया और वह लोग राजगृह की ओर अपनी यात्रा पर चल दिये ।

इस समय वैशाली की सेनाए मगध पर चढी जा रही थी । वह बडी शीघ्रता से गंगातट पर एकत्रित हो रही थी । इन लोगो के श्रेष्ठिवेष के कारण इनको वणिक् समझ कर इनसे कोई-भी नही बोला । क्रमश. यह लोग गगा नदी को नावो पर पार करके मगध राज्य मे कुशलपूर्वक आ पहुचे । यहा से

युवराज ने एक शीघ्रगामी दूत द्वारा सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पास यह समाचार भिजवा दिया कि वे कुमारी चेलना के साथ आ रहे है। इस समाचार से सारे राजगृह मे बडा भारी उत्सव मनाया गया। कुमार का स्वागत करने के लिये सारे नगर को नये सिरे से सजाया गया। सम्राट् स्वय भी अपनी चतुरगिणी सेना लेकर अत्यन्त ऐश्वर्य के साथ उनका स्वागत करने के लिये नगर के बाहिर निकले। अपने बाजो का शब्द सुनते ही कुमार बहुत प्रसन्न हुए। जब उन्होंने सम्राट् को आते देखा तो वह रथ से नीचे उतर कर उनके चरणो मे गिर पडे। सम्राट् ने उनको उठाकर छाती से लगा लिया। कुमारी चेलना को एक अत्यन्त सजी हुई पालकी मे बिठला दिया गया। अब इस जुलूस ने अत्यन्त मथर गति से नगर की ओर बढना आरम्भ किया। नगर के द्वार पर पहुचने पर सम्राट् को तोपो की सलामी दी गई। यहा जनता का एक बडा भारी समूह विद्यमान था। उसने सम्राट् को देखकर उच्च शब्द से विजय घोष किया—'सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"युवराज अभयकुमार की जय।"

नगर मे स्थान-स्थान पर युवराज की आरतिया उतारी गई। अनेक स्थानो पर उनका पान आदि से सत्कार किया गया। अन्त मे राजमहल के समीप आने पर जुलूस रोक दिया गया। कुमारी चेलना की पालकी के रनवास के द्वार पर आने पर सम्राट् की माता महारानी इन्द्राणी देवी ने उसका स्वागत किया। फिर वह उसको अत्यन्त सजे हुए विवाह-मण्डप मे ले गई। यहा उनका सम्राट् के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया गया। विवाह वेदी पर सम्राट् ने घोषणा की कि वह महारानी चेलना को पटरानी पद पर अभिषिक्त करते है।

इस प्रकार युवराज अभयकुमार की चतुरता से सम्राट् को लिच्छवी कुमारी चेलना देवी की प्राप्ति हुई। अब सम्राट् चेलना देवी को एक अत्यन्त उत्तम महल मे ठहराकर आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। रानी चेलना भी सम्राट् को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह उनके सपर्क से शीघ्र ही अपने माता के वियोग-दुःख को भूल गई।

३८

वैशाली तथा मगध की संधि

मध्याह्न का समय है। सूर्यदेव अपनी प्रखर किरणो से ससार को तपा रहे है। धूप के मारे गाय-भैंस आदि सभी पशु छाया को खोज-खोज कर उसके नीचे जा बैठै है। पक्षी भी इस समय चुग्गे की खोज से हटकर वृक्षो पर विश्राम कर रहे है। किन्तु गगा जी के दोनो तट पर दो प्रबल सेनाएँ इस समय भी आमने-सामने खडी हुई है। उत्तर की ओर लिच्छवियो की प्रधानता में अष्टकुल की चतुरगिणी सेनाए युद्ध के लिये तैयार खडी है और गगा के दक्षिणी तट पर प्रतापी मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बसार की विजयी सेनाए नावो को तैयार करके गगा को पार करने की तैयारी कर रही है। इधर लिच्छवी युवक मगध की साम्राज्य-कामना को जडमूल से उखाड देने के लिये कृतसकल्प है, तो उधर मगध-सेनाएं अपने सम्राट् के शत्रुओ के दमन करने के उत्साह में आगे बढ रही है। गगा के दोनो तट पर बडे-बडे सैनिक यानो तथा बजडो मे सैनिक लोग भर-भर कर एक-दूसरे पर आक्रमण करने ही वाले थे कि मगध की सेनाओ ने अपने सम्राट् श्रेणिक बिबसार तथा महारानी चेलना को आते हुए देखकर जोर से जय-ध्वनि की।

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"लिच्छवी कुमारी महारानी चेलना देवी की जय।"

वैशाली की सेनाए मगध-सैनिको के इस जयघोष को सुनकर हक्की-बक्की सी रह गई। वह यह सुन चुके थे कि उनके गणपति महाराजा चेटक की सबसे छोटी कन्या कुमारी चेलना अतिशय रूपवती है। वह यह भी सुन चुके थे कि मगधराज उससे विवाह करना चाहते थे, किन्तु राजा चेटक ने उनके जैनी न होने के कारण उनको अपनी कन्या देने से इकार कर दिया था। फिर उनको यह भी समाचार मिला था कि कुमारी चेलना देवी मध्याह्न के समय अपने

कमरे मे सोते-सोते ही गायब हो गई। इस सबध में अनेक प्रकार की किंवदन्तिया सुनी जाती थी। कुछ का कहना था कि उसके रूप पर आसक्त होकर गन्धर्वराज ने उसका अपहरण किया है। कुछ का कहना था कि स्वय देवराज इन्द्र उसको गुप्त रूप से उसके पलग समेत उठा कर ले गये है। इस प्रकार उस के सबध मे जितने मुह उतनी बाते सुनने मे आती थी, किंतु आज मगध-सैनिकों के मुख से 'लिच्छवी कुमारी महारानी चेलना देवी की जय' सुनकर उनको पता चल गया कि उनके गणपति की पुत्री अब प्रतापी मगधराज की पटरानी है। अतएव अब उनके मन मे यह तर्क-वितर्क होने लगा कि क्या उनका मगध के विरुद्ध शस्त्र उठाना उचित होगा। इसी सोच-विचार के कारण उनके ऊपर उठने वाले शस्त्र अपने आप ही नीचे को झुक गये।

इसी समय मगध-सेना की ओर से एक तेज नौका सफेद पताका उडाती हुई लिच्छवी सेना की ओर जाती हुई दिखलाई दी। इस नौका को देखकर दोनो सेनाए अत्यधिक आश्चर्य मे पड गई। इस नौका को अपनी ओर आते देखकर लिच्छवियो ने तुरन्त उसको मार्ग दे दिया। उसी समय लिच्छवी सेना के महाबलाधिकृत का युद्धपोत सामने दिखलाई दिया। श्वेत पताका वाली नौका को उनके युद्धपोत पर पहुचाया गया। उस नौका मे पाच मगध सैनिक थे। बज्जी-गणतत्र के महबलाधिकृत के सामने जाने पर उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

महाबलाधिकृत—आपका श्वेत पताका उडाते हुए हमारी सेना में आने का क्या उद्देश्य है ?

एक सैनिक—महोदय, हम मगध की पट्ट राजमहिषी महारानी चेलना देवी का एक सदेश लाये है, जिसे हम उनके पिता गणपति महाराज चेटक को ही देना चाहते है।

महाबलाधिकृत—अच्छा, आप लोग थोडा अपनी नौका पर ठहरे। इसका प्रबध अभी किया जाता है।

यह कहकर महाबलाधिकृत सुमन स्वय अपने युद्धपोत से उतरकर गगा तट पर आये। गणपति राजा चेटक का शिविर पास ही था। महाबलाधिकृत

सुमन ने उनके पास आकर उनसे कहा—

"देव ! मगध सेना से श्वेतपताकाधारी नौका पर कुछ सैनिक आये है। वह कहते है कि वह मगध की राजमहिषी महारानी चेलना देवी का एक सदेश आपको देना चाहते है। मेरी सम्मति मे तो उनको यहा बुलवा कर उनका सदेश सुन लेना चाहिये।"

राजा चेटक—किन्तु महाबलाधिकृत ! यह कैसा आश्चर्यदायक समाचार है। बेटी चेलना वैशाली के राजमहल से गायब होकर मगध की राजमहिष किस प्रकार बन गई ?

सुमन—तभी तो मेरी सम्मति है कि उनके सदेश को उन्हे बुलाकर सुन लिया जावे।

राजा—अच्छा, उनको बुलवाओ, किंतु आप महाबलाधिकृत, अभी यही रहे !

यह कहकर राजा ने श्वेतपताकाधारी नौका के पाँचो मगध-सैनिको को अपने पास बुलाने के लिये एक सैनिक भेजा। सैनिक द्वारा यह सदेश पाते ही अपनी नौका से उतरकर पाचो मगध-सैनिक गगा के तट पर चढ गये। उन्होने राजा चेटक के शिविर मे पहुचकर उनको सैनिक ढग से अभिवादन किया। तब राजा चेटक बोले—

"आप लोग हमसे क्या कहना चाहते है ?"

एक सैनिक—देव ! मगध की राजमहिषी एवं आपकी पुत्री महारानी चेलना देवी ने आपसे हाथ जोडकर निवेदन किया है कि उनको आपके दर्शनो की बडी भारी इच्छा है। यदि आप एक नौका पर बैठकर भागीरथी की मध्य धारा मे आ जावे तो महारानी भी अपने पति सम्राट् बिम्बसार के साथ वहा आकर आपके दर्शन करने को तैयार है।

इस पर राजा चेटक बोले—

"आप लोग थोडी देर तक बगल के डेरे मे ठहरें। आपको अभी उत्तर मिलेगा।"

सैनिको के बगल के तम्बू मे चले जाने पर महाबलाधिकृत बोले—

"राजन्! मेरी सम्मति मे तो राजा श्रेणिक बिम्बसार तथा महारानी चेलना देवी से भेट करना ही उचित होगा।"

राजा—किन्तु, निश्चय से इस भेट मे सधि-प्रस्ताव किया जावेगा। हम तो उस समय ही मगध के साथ युद्ध-घोषणा करने के पक्ष मे नही थे, किन्तु लिच्छवी युवको के उत्साह तथा मगध-द्वेष के कारण ही यह युद्ध-घोषणा की गई।

सुमन—तो इसमे हर्ज ही क्या है राजन्! सधि-प्रस्ताव आवेगा तो सधि भी कर लेगे। फिर अब तो मगध के साथ की हुई हमारी सधि क्षणिक सधि न होकर स्थायी सधि होगी।

राजा—अच्छा तो मगध-सैनिको को बुलवा कर उनसे कह दिया जावे कि हम उनका प्रस्ताव स्वीकार करने को तैयार है।

इस पर बगल के तम्बू मे से मगध-सैनिको को बुलवा कर राजा चेटक बोले—

"मगध-वीरो! हम आपका प्रस्ताव स्वीकार करते है। आप लोग जाकर समाचार दे दे कि हम अपने बजरे मे महाबलाधिकृत को साथ लेकर मध्य भागीरथी मे अभी आते है।"

राजा चेटक के यह वचन सुनकर पाचो मगध-सैनिक उनको सैनिक अभिवादन कर तुरत ही वहा से वापिस अपनी नौका मे आकर अपनी सेना मे चले गये।

इन सैनिको के चले जाने के बाद दोनो ओर की सेनाएँ अत्यन्त उत्सुकता के साथ भागीरथी के दोनो तटो की ओर देखने लगी। थोडी ही देर मे एक बडे भारी सैनिक बजडे को मगध-सेना की ओर से तथा दूसरे सैनिक बजडे को लिच्छवियो की ओर से गगा जी के मध्य भाग की ओर बढते हुए देखा गया। मगध-के बजडे के जल मे आते ही मगध-सेना ने गगनभेदी स्वर में इस प्रकार उच्च घोष किया—

वैशाली तथा मगध की संधि

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय"

"सम्राज्ञी चेलना की जय"

सम्राट् बिम्बसार तथा महारानी अत्यधिक बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए थे। उनके वस्त्रो के ऊपर पडे हुए उनके विविध प्रकार के रत्नजटित आभूषण इस समय के दृश्य को और भी आकर्षक बना रहे थे। उन दोनो के सिर पर मुकुट शोभा दे रहा था, जिसके रत्नो का प्रकाश सारे बजडे मे पड रहा था। वह दोनो बजडे के ऊपरी भाग मे खुले आकाश के नीचे एक रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए थे। उनके सिर पर छत्र लगा हुआ था और कुछ सैनिक उनको चंवर ढुला रहे थे।

राजा चेटक भी अपने राजसी सम्मान के साथ अपने खुले बजड़े पर बैठे हुए थे। उनके पास महाबलाधिकृत सुमन बैठे हुए थे। क्रमश दोनो बजडे दोनो तट से बढते हुए भागीरथी की मध्य धार मे आगये। दोनो ओर के सैनिक उनको अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। जब दोनो बजडे एक दूसरे के साथ मिल गये तो दोनो ओर की सेनाओ ने अपने-अपने राजा की फिर जय बोली।

राजा चेटक के नेत्र बडी उत्सुकता से अपनी पुत्री को देख रहे थे। यद्यपि उनको चेलना के गुप्त रूप से चले जाने तथा उसके एक अजैन के साथ विवाह करने पर दु ख था, किंतु उसके वर्तमान सौभाग्य से उनको संतोष भी था। उनको देखते ही प्रथम रानी चेलना बोली —

"पिता जी ! मै आपके चरणो में प्रणाम करती हू।"

चेटक—अखण्ड सौभाग्यवती हो बेटी !

चेलना—मुझे अखण्ड सौभाग्यवती का आशीर्वाद देकर पिता जी फिर आप मेरे सौभाग्य-देवता के साथ युद्ध क्यो कर रहे है ? कृपया युद्ध बन्द कर दे। आप जानते है कि मगध की सेनाओं को जीतना कोई सुगम कार्य नहीं है। फिर आपके हमारे बीच मे कोई ऐसे भारी मतभेद भी तो नही है, जिनके लिये युद्ध अनिवार्य हो। अतएव आप इस व्यर्थ के रक्तपात को रोक दें।

राजा चेटक—मैं सेनाओं को अभी पीछे हटने का आदेश देता हू। आप दोनो अपने बजडे से उतर कर हमारे बजडे पर आकर हमारा आशीर्वाद ग्रहण करें।

इस पर चेलना ने अपने पति की ओर देखा। उनको उतरने के लिये तैयार देखकर वह उनका हाथ पकडकर महाराजा चेटक के बजडे की ओर बढी। राजा चेटक ने अपने बजडे पर आगे बढकर सम्राट् बिम्बसार तथा रानी चेलना को अपकी छाती से लगा लिया और बोले—

"मै आप दोनों को आशीर्वाद देता हू कि आपकी जोडी चिरजीवी हो।"

बिम्बसार—मै आपका आशीर्वाद पाकर अपने को धन्य मानता हूँ।

इसके बाद रानी चेलना अपने पिता की छाती से लगकर उनसे मिल कर रोने लगी। राजा चेटक के नेत्रो मे भी उसको देखकर आँसू आ गये। हृदय के उद्गार हल्के होने पर चेलना बोली—

"पिता जी ! मुझे दु ख है कि मै आपकी जानकारी के विना अपने बाल-चापल्यवश घर से चली आई। मुझे क्षमा कर दीजिये।"

राजा चेटक—बेटी ! जो कुछ हुआ उसका शोक न करो। अब तो तुम इस बात का यत्न करो कि जिससे तुम्हारे पतिदेव को भी जैन धर्म मे श्रद्धा हो जावे।

चेलना—पिता जी ! मै तो इनको जैनी समझकर ही घर से आई थी, किन्तु यहा आने पर मुझे पता चला कि यह जैन न होकर बौद्ध है। तथापि इन्होने मुझे जैन धर्म का पालन करने की पूरी स्वतन्त्रता दी हुई है। यह सदा ही मेरे सुख मे सुख तथा मेरे दु ख मे दु ख मानते है।

राजा—बेटी, यह महापुरुष है। महापुरुषो का आचरण ऐसा ही हुआ करता है। अच्छा, अब तुम अपने बजडे पर जाओ।

चेलना—पिता जी ! मेरी पूजनीया माता को मेरी चरणवन्दना कहे।

इसके पश्चात् राजा चेटक ने रानी चेलना तथा सम्राट् बिम्बसार दोनो को फिर हृदय से लगाकर अपने बजड़े पर जाने की अनुमति दी। उनके अपने बजडे पर आने पर दोनो ओर से खुशी के बाजे बजने लगे और जय-जयकार की ध्वनि होने लगी। दोनो बजड़ो के अपनी-अपनी सेना मे चले जाने पर गगा के दोनो तट की सेनाए हट गई और युद्ध बन्द हो गया।

३९

सेनापति जम्बूकुमार

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का सभा-भवन खचाखच भरा हुआ था कि सेनापति भद्रसेन ने उनसे निवेदन किया।

भद्रसेन—मै श्रीमान् से कुछ निवेदन करने की अनुमति चाहता हू।

सम्राट्—अवश्य कहिये सेनापति जी ! आप क्या कहना चाहते है ?

भद्रसेन— देव ! मै अत्यन्त वृद्ध हो गया हू और पेट का रोग मेरा पीछा नही छोड़ रहा है। इसलिये मै मगध राज्य के प्रधान सेनापति पद से अवकाश ग्रहण करना चाहता हू।

सम्राट्—आपकी शारीरिक स्थिति का हमको पता है सेनापति ! हमने भी कई बार यह विचार किया कि आपसे अधिक कार्य लेकर हम आपके स्वास्थ्य के साथ कुछ न्याय नही कर रहे है, किन्तु आपके स्थान पर कोई उपयुक्त व्यक्ति न मिलने से इस विषय को हमने बराबर अभी तक टाला।

भद्रसेन—सम्राट् की इस चिन्ता को मै पहले से ही समझता था। अतएव उसके संबध मे कुछ आपसे निवेदन करना है देव !

सम्राट्—मै आपसे वही तो सुनना चाहता हू।

भद्रसेन—देव ! आज आपके पास दो व्यक्ति ऐसे है जो मेरा स्थान ग्रहण करने योग्य है। यद्यपि यह दोनो ही नवयुवक है, किन्तु उनकी सैन्य-संचालन की योग्यता किसी प्रकार मुझ से कम नही है। इनमें एक व्यक्ति तो युवराज अभयकुमार है और दूसरे व्यक्ति है सेठ अर्हंदास के पुत्र जम्बूकुमार। उन दोनो ही युवको ने मेरे निरीक्षण मे सैनिक शिक्षा प्राप्त करके सैन्य-संचालन मे कुशलता प्राप्त की है। यदि महाराज सहमत हो तो इनमे से किसी को भी आप इस महान् मगध साम्राज्य का सेनापति-पद प्रदान कर सकते है।

सम्राट्—आपकी इस विषय मे क्या सम्मति है वर्षकार जी !

वर्षकार—आर्य भद्रसेन का कथन यथार्थ है। उनको अब सेनापति-पद से मुक्ति दे देनी चाहिये। यदि युवराज अभयकुमार की अधीनता में श्रेष्ठिपुत्र जम्बूकुमार को प्रधान सेनापति बनाया जावे तो कोई हानि नही है।

सम्राट्—अच्छा, भद्रसेन जी ! आपको सेनापति-पद से मुक्ति दी जाती है, आप जम्बूकुमार को हमारे सामने उपस्थित करे।

भद्रसेन—जम्बूकुमार यहा सभा मे ही उपस्थित है सम्राट् !

सम्राट् से यह कहकर भद्रसेन जी ने जम्बुकुमार की ओर देखा। जम्बूकुमार उनके सकेत को समझ कर अपने स्थान से उठकर सम्राट् के पास आया। वह सम्राट् के चरणो मे प्रणाम करके उनके सम्मुख खडा हो गया। उसको देखकर सम्राट् कहने लगे —

"क्यो जम्बूकुमार ! तुम मगध जनपद के प्रधान सेनापति-पद के उत्तर-दायित्व को वहन कर सकोगे ?"

जम्बूकुमार—सम्राट् की कृपा की सहायता से सभी कुछ किया जा सकता है देव !

सम्राट्—अच्छा, हम तुम को मगध जनपद के प्रधान सेनापति-पद पर नियुक्त करते है। तुम को युवराज अभयकुमार के निर्देश मे कार्य करना होगा। यह प्रधान सेनापति-पद का खड्ग है। तुम इसको ग्रहण करके इस पद की शपथ लो।

इस पर जम्बूकुमार ने उस तलवार को अभिवादन करके अपने हाथ मे लेकर उसका चुम्बन किया। फिर उन्होने इस प्रकार शपथ ली—

'मै सेठ अर्हद्दास का पुत्र जम्बूकुमार इस बात की शपथ लेता हू कि मगध राज्य के प्रधान सेनापति-पद के उत्तरदायित्व का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करूँगा और सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार तथा उनके उत्तराधिकारियो की प्रत्येक आज्ञा का पालन करूँगा।"

इसके पश्चात् सम्राट् ने जम्बूकुमार के वस्त्र पर प्रधान सेनापति का पदक लगा कर उसको राजसभा मे प्रधान सेनापति के लिये नियत स्थान पर बिठलाया।

इसी समय दौवारिक ने राजसभा मे प्रवेश करके कहा—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय हो।"

सम्राट्—क्या है दौवारिक।

दौवारिक—देव ! केरल देश के विद्याधर राजा मृगाक का एक दूत सम्राट् की सेवा मे उपस्थित होना चाहता है।

सम्राट्—उसे अत्यन्त आदरपूर्वक लिवा लाओ।

सम्राट् के यह कहने पर दौवारिक वापिस चला गया। उसके जाने के थोड़े समय पश्चात् दक्षिण देश की वेषभूषा से भूषित एक अधेड व्यक्ति ने सभा मे प्रवेश करके कहा—

"मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

राजा—क्यो महाशय ! कहिये हमारे सबधी राजा मृगाक ने हमारे लिये क्या संदेश दिया है। वह कुशलपूर्वक तो है।

दूत—देव ! विद्याधर राजा मृगाक अपने समस्त परिजनो सहित अत्यन्त कुशलपूर्वक है । किन्तु आजकल उनके ऊपर हसद्वीप (लका) के राजा रत्नचूल ने आक्रमण किया है। अतएव राजा मृगाक ने आपसे सहायता की याचना की है और आपके नाम यह पत्र दिया है।

यह कहकर दूत ने एक पत्र राजा श्रेणिक के हाथ में दे दिया। पत्र पढकर राजा कुछ चिन्ता मे पड गये। तब महामात्य वर्षकार बोले—

इसमें चिन्ता की क्या बात है देव ! आप जम्बूकुमार के सेनापतित्व में सेना को अभियान करने की आज्ञा दे और अपने श्वशुर की सहायता करें।"

सम्राट्—मै यही सोच रहा था कि जम्बूकुमार को उसकी नियुक्ति के प्रथम दिन ही इतना बडा उत्तरदायित्व दिया जावे अथवा नही ?

वर्षकार—मै तो इसमें कोई हानि नही देखता । फिर इस प्रका जम्बूकुमार को भी अपनी योग्यता दिखलाने का अवसर मिल जावेगा।

इस पर जम्बूकुमार ने उठकर कहा—

"यदि मुझे इस प्रकार अपनी योग्यता दिखलाने का अवसर मिलेगा तो मै इसमे अपना सौभाग्य समझू गा।"

सम्राट्—अच्छा यदि तुम्हारी भी यही इच्छा है तो यहा से एक अक्षौहिणी सेना लेकर एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर यात्रा आरभ कर दो।

इस घटना के एक सप्ताह बाद जम्बूकुमार ने मगध सेना को लेकर दक्षिण की यात्रा आरभ कर दी। जम्बूकुमार ने दक्षिण मे जाकर अत्यन्त वीरतापूर्वक शत्रु-सेना का सहार किया। उन्होंने अपने हाथ से आठ सहस्र योद्धाओ का सहार किया। मगध की इस विजय से सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की कीर्ति उस प्रदेश मे भी बहुत अधिक बढी। राजा मृगाक ने तो इससे अपने ऊपर इतना अधिक उपकार माना कि उन्होने अपनी पुत्री बिलासवती का राजा श्रेणिक के साथ वाग्दान कर उनको अनेक प्रकार की वस्तुएँ भेट मे भेजी।

४०

रानी चेलना का धर्म-संघर्ष

अर्ध रात्रि का समय है। चन्द्रमा अपनी सोलहो कलाओ से आकाश मे चमक रहा है। चन्द्रमा का प्रकाश इतना उज्ज्वल है कि बहुत कम तारे उसके प्रकाश मे दिखलाई दे रहे है। चन्द्रमा का प्रकाश राजगृह नगर के ऊपर पडता हुआ ऐसा उत्तम दिखलाई दे रहा है, जैसे समस्त मगध के ऊपर दुग्ध की वर्षा हो रही हो। सारा नगर गहन निद्रा मे सोया पडा है, किन्तु सम्राट् बिम्बसार के शयनकक्ष से अभी तक भी प्रकाश की एक हल्की सी रेखा दिखलाई दे रही है, जिससे पता चलता है कि सम्राट् अभी तक जग रहे है। शयनककक्ष के अन्दर भोग-विलास की पूरी सामग्री उपस्थित है। दीवारो पर सुन्दर-सुन्दर चित्र टगे हुए है। कमरे के ठीक बीचो-बीच एक बहुत बडे पलग पर राजा श्रेणिक तथा रानी चेलना लेटे हुए चन्द्रमा की शोभा को देख रहे है। रानी कुछ उदास है। राजा उसको हसाने का बारबार प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु अत्यधिक यत्न करने पर भी वह उसको हसाने मे अभी तक भी सफल नही हो सके। अन्त मे राजा बोले—

"रानी क्या बात है ? मै तुमको प्राय उदास पाता हूँ। आज तो तुम मुझे विशेष रूप से उदास दिखलाई दे रही हो। जब से वैशाली तथा मगध का युद्ध बद हुआ है, मै तुमको प्राय उदास ही पाता हूँ।"

रानी—कुछ ऐसी खास बात तो नही है प्राणेश्वर !

राजा—आज मैंने तुहहारे मन की बात पूछने का पूर्ण निश्चय कर लिया है। तुमको मेरे सिर की सौगध है, जो वास्तविक बात न बतलाओ।

रानी—आप शपथ देते है तो बात बतलानी ही पडेगी। किन्तु वह ऐसी है राजन् कि वह आपके या मेरे किसी के भी वश की नही है।

राजा—तो भी मै सुनू तो सही कि क्या बात है।

रानी—अच्छा महाराज ! आपका आग्रह ही है तो सुनिये। वैशाली से मुझे राजगृह लाने को फुसलाते समय युवराज ने यह बतलाया था कि आप जैनी है, किन्तु यहा आकर मै देखती हूँ कि आपका घर परम पवित्र जैन धर्म से रहित है। आपके यहा बौद्ध धर्म की पूरी सत्ता जमी हुई है। मै प्राय यही सोचा करती हू कि पुत्र अभयकुमार ने यह बहुत बुरा किया जो वैशाली मे छल से जैन धर्म का वैभव दिखलाकर मुझ भोली-भाली को ठग लिया। माना कि आपका वैभव अलौकिक है, किन्तु जैन धर्म के बिना मुझे वह सब नि सार दिखलाई देता है, क्योकि यदि ससार मे धर्म न होकर धन मिले तो उस धन का न मिलना ही अच्छा। किन्तु यदि धन के बिना धर्म मिले तो वह धर्म समस्त सुखो का मूल है, धर्म के बिना सासारिक सुख का केन्द्र चक्रवर्तीपना भी किसी काम का नही। मै बारबार यही सोचा करती हूँ कि मैने पिछले जन्म मे कौन सा घोर पाप किया, जो इस जन्म मे मुझे जैन धर्म से विमुख होना पडा। हाय ! इस प्रकार तो मेरा क्रमश जैन धर्म से सबध छूट ही जावेगा। स्त्रियो को कवियो ने इसीलिये अबला कहा है कि वह बिना सोचे-समझे दूसरों की बातो पर विश्वास कर लेती है और पीछे पछताती है।

यह कहकर रानी चेलना सुबक-सुबक कर रोने लगी। तब राजा बोले—

"रानी, तुम्हारी इस चिन्ता का समाचार मुझे कई बार मिल चुका है। इसीलिये मैने यह कठोर आज्ञा प्रचारित कर दी है कि तुम्हारे धर्म-ध्यान एव धर्माचरण मे किसी प्रकार की बाधा न डाली जावे। हा, यह तुम्हारा भ्रम है कि ससार भर का भला जैन धर्म ही कर सकता है। ससार में यदि कोई धर्म है तो वह बौद्ध धर्म ही है। यदि जीवों को सुख मिल सकता है तो बौद्ध धर्म से ही मिल सकता है। भगवान् बुद्ध ही सच्चे देव है। वह समस्त ज्ञान एवं विज्ञान को जानते है। संसार में उनसे बढकर कोई देव उपास्य एवं पूज्य नही है। जो लोग अपने आत्मा के हित की आकांक्षा करते है उन्हें भगवान् बुद्ध की ही पूजा, भक्ति तथा स्तुति करनी चाहिये। प्रिये ! भगवान्

बुद्ध की कृपा से ही जीवो को वास्तविक धर्म का पता लगकर सब प्रकार के सुखो की प्राप्ति होती है।

राजा के मुख से बुद्ध तथा बौद्ध धर्म की इतनी अधिक प्रशसा सुनकर रानी ने उत्तर दिया—

"प्राणनाथ! आप जो बौद्ध धर्म की इतनी प्रशसा कर रहे है सो वह इतनी प्रशसा के योग्य नही है। उससे जीवो का लेशमात्र भी हित नही हो सकता। ससार मे सर्वोत्तम जैन धर्म ही है। जैन धर्म छोटे-बडे सब प्रकार के जीवो पर दया करने का उपदेश देता है, जब कि गौतम बुद्ध स्वय मासाहार करते है। जैनियों के अभी तक के तेईसो तीर्थङ्कर सर्वज्ञ थे। अब चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर भी केवल ज्ञान प्राप्त करके सर्वज्ञ हो जावेंगे और सब जीवो को जन्म, जरा तथा मरण के दुःख से छूटने का उपदेश देंगे।"

राजा—भगवान् महावीर तो तुम्हारे भानजे है न रानी!

रानी—भानजे है नही, वरन् थे। जब तक वह गृहस्थ में थे वह मेरे भानजे थे और मैं उनकी मौसी थी, किन्तु अब तो वह सभी सासारिक बंधनों को छोडकर मुनि-दीक्षा लिये हुए है, केवल ज्ञान हो जाने के बाद वह मुझ सहित सारे मुमुक्षु जीवो के गुरु होगे। जैन धर्म मे कर्मफल का दाता कोई यमराज अथवा धर्मराज नही माना गया है। वह जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जैन धर्म में वही यथार्थ उपदेशदाता सच्चा आप्त माना गया है, जो बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह रूप पच महाव्रत का पालन करता हो, जिसको केवल ज्ञान हो चुका हो, जो निर्ग्रन्थ हो, तथा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों को अपने जीवन मे चरितार्थ करने वाला हो। प्राणनाथ! मैंने संक्षेप में जैन धर्म का वर्णन किया है, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन तो कुछ समय पश्चात् केवल ज्ञान होने पर भगवान् महावीर स्वामी ही करेंगे। मेरा विश्वास है कि जो जीव इस जैन धर्म से विमुख होकर घृणा करते हैं उनको कदापि भाग्यशाली नही कहा जा सकता।

राजा श्रेणिक रानी चेलना के मुख से इस प्रकार जैन धर्म का स्वरूप सुनकर चुप हो गये। उन्होने रानी से केवल यही कहा—

"रानी! मै पहिले ही कह चुका हू कि तुमको जो कुछ श्रेयस्कर जान पडे तुम वही करो, किन्तु अपने चित्त मे किसी प्रकार का मैल न लाओ। मै नही चाहता कि तुमको किसी प्रकार का दुख हो।"

महाराज के मुख से ऐसा अनुकूल उत्तर पाकर रानी चेलना अत्यन्त प्रसन्न हो गई। अब वह निर्भय होकर जैन धर्म का पालन करने लगी। उसने अपने महल में ही एक जैन मदिर बनवा लिया और वहा अत्यन्त भक्ति-भाव से उपासना करने लगी। वह प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी को निर्जल व्रत रखती थी। पर्वों के अवसर पर वह प्राय रात्रिजागरण भी किया करती थी। जैन शास्त्रो का स्वाध्याय वह प्रतिदिन किया करती थी। उसको इस प्रकार धर्म पर आरूढ देखकर समस्त रनवास उसकी धर्मभावना का प्रशसक हो गया। रानी चेलना ने कुछ ही दिनो के अदर समस्त रनवास को जैनी बना लिया।

राजा श्रेणिक बौद्ध मत के श्रद्धालु थे। अतएव राजगृह मे कुछ बौद्ध साधु सदा ही बने रहते थे। उनको पता लगा कि रानी जैन धर्म की परम भक्त है और उसने सारे रनवास को जैनी बना लिया है तो राजगृह के प्रधान बौद्ध साधु सजय शीघ्र ही आकर राजा बिम्बसार से मिले। उन्होने राजा से कहा—

"राजन्! हमने सुना है कि आपकी रानी चेलना जैन धर्म की परम भक्त है तथा वह बौद्ध धर्म को एक घृणित धर्म मानती है। हमने यह भी सुना है कि वह बौद्ध धर्म को रसातल मे पहुचाने का पूरा प्रयत्न भी कर रही है। यदि यह बात सत्य है तो आप शीघ्र ही उसके प्रतीकार का कोई उपाय सोचे। अन्यथा बड़े भारी अनर्थ की सभावना है।"

बौद्ध गुरु सजय के ऐसे वचन सुनकर महाराज ने उत्तर दिया—

"पूज्यवर! रानी को मै बहुत कुछ समझा चुका। उसके ध्यान मे एक भी बात नही आती। कृपाकर आप ही उसके पास जावे और उसे समझावें। यदि आप इस सम्बन्ध मे विलम्ब करेंगे तो स्मरण रखिये कि बौद्ध धर्म की

अब खैर नही, क्योकि निश्चय ही रानी बौद्ध धर्म को जड़ से उखाड़ने के लिये पूरा-पूरा प्रयत्न कर रही है।"

सम्राट् के इन वचनों से बौद्ध गुरु सजय को कुछ सात्वना मिली। वह इस बात से यह सोचने लगे कि—

'चलो राजा तो बौद्ध धर्म का भक्त है।"

वह राजा से बोले—

"राजन्! आप अपने मन मे खेद न करे। हम अभी रानी को जाकर समझाते है। हमारे लिये रानी को समझा लेना कुछ कठिन नही है।"

बौद्ध साधु सजय राजा से यह कहकर रानी चेलना के पास आये। रानी नें जो उनको आते देखा तो उनको बडे आदर से आसन देकर बिठलाया और स्वय उनके सामनें बैठ गई। रानी ने उनसे कहा—

"कहिये महाराज, आपने मेरे महल में पधारने का कष्ट कैसे किया ?"

तब सजय बोले—

"रानी! हमने सुना है कि तू जैन धर्म को परम पवित्र धर्म समझती है और बौद्ध धर्म से घृणा करती है। यदि तेरा सचमुच मे ही ऐसा विचार है तो यह उचित नही है। तू यह निश्चयपूर्वक समझ ले कि ससार में जीवो का हित करने वाला केवल बौद्ध धर्म ही है। जैन धर्म से जीवो का कल्याण कदापि नही हो सकता। देख यह जितनें नगे साधु है वह सब पशु के समान हैं। जिस प्रकार पशु नग्न रहता है उसी प्रकार ये भी नग्न फिरते रहते हैं। पशु जिस प्रकार आहार न मिलने से उपवास करता है उसी प्रकार ये भी आहार के अभाव मे उपवास करते है। पशु के समान यह विचारशक्ति, ज्ञान तथा विज्ञान से भी रहित होते है। यह साधु जैसे इस जन्म में दीन दरिद्री होते हैं उसी प्रकार पर-जन्म में भी इनकी यही दशा रहती है। उन्हे अन्न तथा वस्त्र अगले जन्म में भी नही मिलता। वह जिस प्रकार क्षुधा, तृषा आदि का कष्ट इस जन्म में उठाते हैं, उसी प्रकार उनको अगले जन्म में भी उठाना पडता है। हे रानी! यह बात ध्यान देने की है कि क्षेत्र में जैसा बीज बोया जाता है उससे तदनुरूप ही फल उत्पन्न

होता है । जो जैसा कर्म करता है उसको वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। हे रानी ! यह बात मत भूल कि यदि तू इन दरिद्र जैन मुनियो की सेवा-शुश्रूषा करेगी तो तुझे भी इनके समान अगले जन्म मे दरिद्र एव भिक्षुक बनना पडेगा। इसलिये तू अनेक प्रकार के भोग भोगने वाले एव वस्त्र आदि से सुखी बौद्ध साधुओ की भक्तिपूर्वक सेवा किया कर। इनको ही अपना हितैषी मान, जिससे परभव मे भी तुझे अनेक प्रकार के भोगो की प्राप्ति हो। हे पतिव्रते ! अब तुझे चाहिये कि तू शीघ्र ही अपने मन से जैन मुनियो की भक्ति को निकाल दे। बुद्धिमान् लोग कल्याणकर मार्ग पर ही चला करते है, सो सच्चा कल्याण करने वाला मार्ग भगवान् बुद्ध का ही है।"

बौद्ध-गुरु का उपदेश सुनकर रानी चेलना ने उनसे कहा—

"गुरु महाराज ! आपका उपदेश मैंने सुन लिया, किन्तु उसमे मुझे एक भारी शका है। यदि आज्ञा हो तो कहू।"

संजय—अवश्य रानी ! तेरी शकाओ का निवारण करने के लिये ही तो हम तेरे पास आये है।

रानी—आप यह बात कैसे जानते है कि जैन मुनियो की सेवा करने से परभव मे भी कष्ट भोगने पडेगे और दीन-दरिद्री होना पडेगा तथा बौद्ध-गुरुओ की सेवा से मनुष्य अगले जन्म मे सुख पावेगें।"

रानी के यह वचन सुनकर बौद्ध-गुरु सजय बोले—

"रानी ! तुझे हमारी इस बात मे सदेह नही करना चाहिये। बुद्ध भगवान् के समान उनके सभी प्रधान शिष्य भी सर्वज्ञ होते है। अतएव परभव की बात बतलाना हमारे सामने कोई बडी बात नही। हम विश्वभर की बाते बतला सकते है।"

बौद्ध गुरु के यह वचन सुनकर रानी ने उन पर बहुत श्रद्धा प्रकट करके कहा—

"गुरु महाराज ! यदि आप अखण्ड ज्ञान के धारक सर्वज्ञ हैं तो आप कल मेरे महल में पधार कर मेरे यहाँ भोजन ग्रहण करें। आपको भोजन कराने के

उपरान्त मैं भक्तिपूर्वक आपके मत को ग्रहण करूँगी आप इस विषय में लेशमात्र भी सदेह न करे।"

रानी के मुख से इन शब्दो को सुनकर बौद्ध साधुओ को अत्यन्त सतोष हुआ और वह रानी से कहने लगे—

"अच्छा रानी! अब हम जाते है और कल तेरे यहा भोजन के लिये आकर तुझे बौद्धमत ग्रहण करावेगे।"

यह कहकर वह अपने अन्य साथियो सहित रानी के महल मे चलकर राजा श्रेणिक के पास आये। उन्होने उनको राजमहल के सारे वार्तालाप का समाचार सुनाया। उसको सुनकर राजा भी बहुत प्रसन्न हुए। अब तो उनको भी पूर्ण विश्वास हो गया कि अब रानी निश्चय से बौद्ध बन जावेगी। वह बौद्ध साधुओ को विदा करके रानी की अनेक प्रकार से प्रशसा करते हुए रात को उसके पास आये और उससे बोले—

"प्रिये! आज तुम धन्य हो जो तुमने गुरुओ का उपदेश सुनकर बौद्ध धर्म धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली। शुभे! इस बात का ध्यान रहे कि बौद्ध-धर्म से बढकर मनुष्य का हितकारी ससार मे अन्य कोई धर्म नही है। कल तुम गुरुओ के लिये उत्तम भोजन तैयार कराना।"

यह कहकर राजा सो गये और रानी चेलना ने अगले दिन बौद्ध गुरुओ के लिये अनेक प्रकार के उत्तम भोजन तैयार कराये। लड्डू, खाजा आदि अनेक प्रकार के मिष्टान्नो के साथ-साथ छहो प्रकार के रसो के उत्तम पदार्थ तैयार कराये गये। राजा श्रेणिक ने गुरुओ के बिठलाने का प्रबध करके बौद्ध गुरुओं को बुलाने के लिये अत्यन्त विनयपूर्वक निमत्रण भिजवाया।

राजमहल का निमत्रण पाकर बौद्ध साधु अपने पात्र, चीवर आदि ठीक करके राजमदिर की ओर चले। रानी चेलना ने उनको राजमदिर में प्रवेश करते देखकर उनका बहुत सम्मान किया। बौद्ध गुरुओ के अपने आसन पर बैठ जाने पर रानी ने उनके चरणो का प्रक्षालन किया। उसके पश्चात् उनके सामने सोने-चादी के थाल रखकर उनमे अनेक प्रकार के लड्डुओ, खीर, श्रीखण्ड,

भात मूग के लड्डू आदि स्वादिष्ट पदार्थों को परोस दिया गया। भोजन परसा जाने पर रानी ने उनसे भोजन आरभ करने की प्रार्थना की।

रानी के प्रार्थना करने पर गुरुओ ने भोजन करना आरभ किया। उन्होने सभी प्रकार के पदार्थों को खाना आरभ किया। इधर तो बौद्ध साधु भोजन मे लगे हुए थे उधर रानी ने अपनी एक दासी के द्वारा बौद्ध गुरु सजय के बायें पैर के जूते को उठवाकर उसके बहुत छोटे-छोटे टुकडे करवाये। रानी ने उनको चूने के पानी मे औटा कर फिर खट्टी छाछ मे डलवा कर उनमे खूब मसाला मिलवा कर उनका रायता बनवा दिया। बाद मे उसे भी बौद्ध गुरुओ के सामने थोड़ा-थोडा करके परोस दिया गया।

जब भोजन करते-करते साधुओ की तबियत मधुर खाद्य पदार्थो से अकुला गई तो उन्होने उसको एक अद्भुत चटनी समझ कर सेवन किया। वह छाछ-मिश्रित उन टुकडो को खा गये। गुरुओ के भोजन कर चुकने पर रानी ने उनको ताम्बूल, इलायची आदि दिये। इसके पश्चात् वह रानी से कहने लगे—

"रानी! तेरी प्रार्थना पर हम लोगो ने तेरे राजमहल मे आकर भोजन कर लिया। अब तू शीघ्र ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर अपने आत्मा को पवित्र बना। अब तुझे जैन धर्म से सम्बन्ध छोड देना चाहिये।"

इस पर रानी ने विनयपूर्वक उनसे कहा—

"महाराज! आपने जो मेरे यहाँ भोजन किया, उसके लिये मै आपकी आभारी हूँ। आप अपने स्थान पर पधारे। मै वही आपके पास आकर आपसे बौद्ध-धर्म की श्रद्धा ग्रहण करूँगी।"

रानी चेलना के यह वचन सुनकर बौद्ध साधु अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ से चल दिये। किन्तु जिस समय वह द्वार पर आये तो अपने पैर के बाये जूते को न पाकर एकदम घबरा गय। प्रथम तो वह एक दूसरे का मुँह देखने लगे, फिर उन्होने उसे इधर-उधर ढूँढा। किन्तु जब उनको जूता कही भी न मिला तो वह फिर वापिस रानी के पास आकर उससे बोले—

"रानी! हमारे पैर का बाया जूता नही मिल रहा। जान पड़ता है कि

उसे हँसी मे छिपा दिया गया है। रानी ! गुरुओ के साथ तुझको इस प्रकार की हँसी नही करनी चाहिये।"

बौद्ध-गुरुओ के यह वचन सुनकर रानी हँस कर बोली—

"महाराज ! जब आप किसी व्यक्ति के तीनो जन्मो का हाल जानने योग्य ज्ञान के धारक है तो क्या आप अपने उस ज्ञान की सहायता से अपने जूते को नही खोज सकते ?"

रानी के मुख से इन शब्दो को सुनकर साधु लोग बडे लज्जित हुए। अत मे उनको यह कहना ही पडा कि—

"सुन्दरी ! हमको ऐसा ज्ञान नही है कि हम इस बात को जान ले कि हमारे जूते कहाँ है। कृपा कर आप ही हमारे जूते बतलावे।"

बौद्ध-गुरुओ के यह वचन सुनकर रानी को क्रोध हो आया। वह उनसे बोली—

"महापुरुषो ! जब आप जैन-धर्म को जानते तक नही, तो आपने उसकी निदा कैसे की ? बिना समझे बोलने वाले मनुष्य को पागल कहा जाता है। आप लोग गुरुपद के योग्य कदापि नही है। आप लोग भोले-भाले प्राणियो को ठगने वाले, असत्यवादी, मायाचारी एव पापी है।"

रानी के मुख से ऐसे वचन सुनकर बौद्ध-गुरु बगले झाकने लगे। उनसे कोई भी उत्तर देते न बना। अन्त मे वह केवल यही बोले—

"रानी ! आप कृपा कर हमारे जूते दे दे, जिससे हम अपने स्थान को चले जावे।"

बौद्ध-गुरुओ के यह वचन सुनकर रानी बोली—

"महानुभाव ! आपकी चीज आपके ही पास है। आप विश्वास रखें वह किसी दूसरे के पास नही है।"

रानी चेलना के यह वचन सुनकर सजय बहुत नाराज़ होकर रानी से बोले—

"रानी ! तू यह क्या कहती है ? हमारी चीज़ हमारे पास कहाँ है ?

क्या हम उसको खा गये ? तुझको हम साधुओ के साथ इस प्रकार का व्यवहार नही करना चाहिये ।"

सजय के इन वचनो को सुनकर रानी बोली—

"गुरुओ ! आप घबरावे नही । मै अब भी कहती हूँ कि आपकी चीज आपके ही पास है । यदि आप नही मानते तो मै उसे आपके पास से निकाल कर दिखला सकती हूँ ।"

रानी के इन वचनो से सजय सहित सभी बौद्ध साधु बड़े चक्कर मे पड़े । वह बार-बार यही सोचने लगे कि रानी कहती क्या है ? यह क्या बात हो गई ? अब उनको सदेह होने लगा कि 'क्या उसने हमको जूतो का भोजन करा दिया ।' ऐसा विचार करते-करते उनको क्रोध के साथ-साथ वमन भी हो गया ।

वमन के साथ निकले हुए उन्होने जूतो के टुकडो को भी देखा । अब तो उनके होश गुम हो गये और वह रानी की बार-बार निंदा करने लगे । अब वह रानी द्वारा तिरस्कृत होकर अत्यन्त लज्जित हुए और वहाँ से सीधे सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पास गये । वहाँ जाकर उन्होने राजा को अपने अपमान का सारा वृत्तात सुनाया । वहाँ से वह चुपचाप अपने विहार मे आ गये ।

४१

जैन धर्म का परिग्रहण

"प्रिये ! मुझे तुमको यह सवाद देते हुए प्रसन्नता हो रही है कि अब की बार हमारे नगर मे कुछ बौद्ध साधुओ का एक सघ आया है। उनमे कई एक साधु अत्यधिक तपस्वी तथा बडे भारी ज्ञानी हैं। उनके ज्ञान मे समस्त ससार झलकता है। उनका ध्यान अत्यन्त उच्च कोटि का होता है। जब कोई उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करता है तो वे ध्यान मे अतिशय लीन होने के कारण बडी कठिनता के उसका उत्तर देते है। ध्यानावस्था मे उनका आत्मा एकदम मुक्त हो जाता है। वह अत्यन्त उत्तम धार्मिक तत्त्व के उपदेशक है। तप के कारण उनके शरीर से कान्ति जैसी निकलती है।"

राजा के इन शब्दो को सुनकर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह उनसे अत्यन्त विनय से बोली—

"कृपानाथ ! यदि आपके गुरु ऐसे पवित्र और ध्यानी है तो कृपा कर मुझे भी उनके दर्शन कराइये। जिससे ऐसे परम पवित्र महात्माओ के दर्शन से मै भी अपने जन्म को पवित्र करूँ। आप इस बात पर विश्वास रखे कि यदि मेरी दृष्टि मे बौद्ध धर्म की सच्चाई जम गई और वह साधु सच्चे साधु निकले तो मै तत्काल ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर लूँगी। मुझे जैन धर्म से चिपके रहने में कोई विशेष आग्रह नही, किन्तु मै बिना परीक्षा किये किसी दूसरे के कथनमात्र से जैन धर्म का परित्याग नही कर सकती। क्योकि जो व्यक्ति हेयोपादेय को जाने बिना तथा बिना समझे-बूझे केवल दूसरे के कथनमात्र से अपने मार्ग का परित्याग कर दूसरे के बतलाये हुए मार्ग पर चल पडते है उनको शक्तिहीन मूर्ख कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति अपने आत्मा का कल्याण नही कर सकते।"

इसको सुनकर राजा बोले—

"रानी ! तुम्हारा कथन पूर्णतया तर्कसगत है। मै तुम्हारी इस बात से बहुत प्रसन्न हूँ। अच्छा, आज तुम और हम दोनो जाकर गुरुओं के ध्याना-वस्था मे दर्शन करेगे।"

यह कहकर राजा वहाँ से चले गये। उन्होने साधुओ के पास ध्यान लगाने का सदेश भेजकर रानी को पालकी पर बैठा कर वहाँ जाने को कहला दिया। बौद्ध साधु एक विशेष प्रकार से तैयार किये गये मण्डप में ध्यान लगा कर बैठ गये। जिस समय वह ध्यान मे बैठे थे रानी भी उनके दर्शनो के लिये पालकी मे बैठकर आ गई। उसने उनसे कुछ प्रश्न भी किये, किन्तु उन्होने ध्यानमग्न होने के कारण रानी के किसी प्रश्न का उत्तर नही दिया।

रानी के प्रश्नो को सुनकर उनका एक शिष्य बोला—

"माता ! ये समस्त साधु इस समय ध्यान मे लीन है। इनका आत्मा इस समय परम तत्त्व मे लीन है। इसलिये यह देहमुक्त होने पर भी सिद्ध है। इसीलिये इन्होने आपके प्रश्नो का उत्तर नही दिया।"

शिष्य के यह शब्द सुनकर रानी चुप हो गई, किन्तु उसने उसी समय अपनी एक दासी के कान मे कुछ कहकर उस मण्डप मे आग लगवा दी और एक ओर खडी होकर इस दृश्य को देखती हुई कुछ समय बाद अपने राजमदिर चली आई।

उधर मण्डप में अग्नि लगते ही सब साधु ध्यान छोड़-छोड़ कर मण्डप के नीचे से भाग निकले। जो लोग कुछ समय पूर्व ध्यानारूढ हो निश्चल बठे थे वही अब व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। रानी के इस कृत्य से उनको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने राजा श्रेणिक के पास जाकर उनको यह वृत्तांत सुनाया। बौद्ध-गुरुओ के मुख से इस सारे समाचार को सुनकर महाराज को भी बहुत बुरा लगा। अतएव वह अत्यन्त क्रोध में भरकर रानी के पास आये और उससे बोले—

"रानी ! मण्डप मे जाकर तूने यह अतिनिन्द्य तथा नीच काम कैसे कर डाला ? यदि तेरी बौद्ध धर्म पर श्रद्धा नही है और तू बौद्ध साधुओ को

ढोगी समझती है तो तू उनकी भक्ति मत कर। किन्तु मण्डप में आग लगाकर उन विचारो के प्राण लेने का यत्न करना तेरी कौन सी बुद्धिमत्ता थी ? तू जो अपने को जैनी बतला कर जैन धर्म की डीग मारा करती है, सो तेरी वह डीग सर्वथा व्यर्थ मालूम पडती है। कहा तो जैन धर्म का दयाप्रधान रूप, जिसमे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के सभी जीवो की रक्षा की जाती है, और कहा तेरा यह दुष्ट व्यवहार, जो तूने साधु पुरुषो के प्राण लेने का यत्न किया। अपने इस व्यवहार से तूने उस दयामय धर्म का पालन कहाँ किया ? अब तेरा यह कहना कि मै जैन हूँ, केवल अपलापमात्र ही है। इस दुष्ट कर्म से तुझे कोई जैनी नही मान सकता।"

महाराज के इस प्रकार के कठोर शब्द सुनकर रानी चेलना ने उनसे बडी विनय तथा शाति से इस प्रकार निवेदन किया—

"कृपानाथ ! आप मुझे क्षमा करे। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आपको एक विचित्र कथानक सुनाना चाहती हूँ। आप कृपया उसे ध्यानपूर्वक सुने। उसको सुनकर आप यह निश्चय कर सकेंगे कि इस कार्य मे मेरा अपराध कितना है।"

रानी के इस वचन को सुनकर राजा बोले—

"अच्छा ! रानी कहो, तुम कौन सा कथानक सुनाना चाहती हो।"

इस पर रानी बोली—

"प्राणनाथ ! इसी जम्बूद्वीप मे एक वत्सदेश है, जिसकी राजधानी का नाम कौशाबी है। वह कौशाबी उत्तमोत्तम बाग-बगीचो तथा देवतुल्य मनुष्यो से स्वर्गपुरी की शोभा को धारण करती है। कौशाबी मे सागरदत्त नाम का एक सेठ रहता था, जिसकी सेठानी का नाम वसुमती था। उसी कौशाबी मे सुभद्र-दत्त नाम का एक अन्य सेठ भी रहता था, जिसकी पत्नी का नाम सागर-दत्ता था।

"उन दोनो सेठो मे आपस मे बडी भारी मित्रता थी। एक बार उन दोनों ने अपनी-अपनी पत्नियो को गर्भवती देखकर आपस मे यह निश्चय किया कि यदि दोनों

मे से एक के पुत्र तथा दूसरे के पुत्री हो तो दोनो का विवाह कर दिया जावे, जिससे उन दोनो के प्रेम का उनकी सन्तान भी निर्वाह करे। कालान्तर मे सेठ सागरदत्त के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वसुमित्र रखा गया। इस पुत्र का आकार नाग जैसा था। सेठ सुभद्रदत्त के एक कन्या हुई, जिसका नाम नागदत्ता रखा गया। युवावस्था प्राप्त करने पर उन दोनो का आपस मे विवाह कर दिया गया। विवाह के पश्चात् दोनो दम्पती आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

एक बार नागदत्ता की माता सागरदत्ता अपनी पुत्री को अनेक प्रकार के आभूषण पहिरे देखकर रोने लगी। पुत्री द्वारा रोने का कारण पूछने पर वह उससे कहने लगी—

"बेटी! कहा तो तेरा मनोहर रूप, सौभाग्य, उत्तम कुल तथा मनोहर मति और कहा भयकर शरीर का धारक बिना हाथ-पैर का तेरा पति नाग? बेटी! मुझे सदा तेरे इसी अशुभ भाग्य की चिन्ता सताती रहती है।"

माता को इस प्रकार रुदन करती देखकर पुत्री नागदत्ता का चित्त भी पिघल गया। वह उसको सात्वना देती हुई विनयपूर्वक बोली—

"माता! तू इस बात के लिये तनिक भी खेद न कर। मेरा पति यद्यपि दिन भर नाग बना रहता है, किन्तु रात्रि होने पर वह प्रथम तो एक सन्दूक मे घुस जाता है और फिर उसमे से निकल कर उत्तम मनुष्याकार बन जाता है। फिर वह रात भर मनुष्य बना हुआ मेरे साथ शयन करता है।"

पुत्री के मुख से इस विचित्र घटना को सुनकर माता सागरदत्ता आश्चर्य करने लगी। तब उसने अपनी पुत्री नागदत्ता से कहा—

"बेटी! यदि यह बात सत्य है तो तू उस सन्दूक को किसी परिचित स्थान में रखकर मुझे पहिले से बतला देना। तब मैं तेरी बात मानूंगी।"

पुत्री नागदत्ता ने अपनी माता की यह बात स्वीकार कर ली। एक दिन उसने उस सन्दूक को किसी ऐसे स्थान पर रख दिया, जो उसकी माता ने उसे पहिले से बतलाया था। इसके पश्चात् वह अपने मनुष्याकार पति के

साथ अपने प्रकोष्ठ मे चली गई। उसके अपने प्रकोष्ठ मे जाने पर सागर-दत्ता ने उस सदूक को निर्जीव समझकर एकदम जला दिया। तब उसका जामाता वसुमित्र फिर सदा के लिये मनुष्याकार बन गया।

"उसी प्रकार हे दीनबन्धो ! जब मैं बौद्ध-गुरुओ के दर्शन करने गई तो वहा एक ब्रह्मचारी ने मुझ से कहा कि बौद्ध गुरुओ का आत्मा इस समय मोक्ष मे है और इनके ये शरीर इस समय निर्जीव पडे है। मैंने सोचा कि यदि ऐसी स्थिति है तो ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे बौद्ध-गुरुओ को शारीरिक वेदना फिर सहन न करनी पडे। यह सोचकर मैंने उनके शरीरो को निर्जीव समझ कर उनमे आग लगवा दी। क्योकि इस बात को सभी जानते है कि जब तक आत्मा का इस शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है, तब तक उसे अनेक कष्ट उठाने पडते है, किन्तु ज्यो ही इसका शरीर से सम्बन्ध छुट जाता है इसका सभी दु खो से पीछा छुट जाता है। इस प्रकार हे नाथ ! अपने शरीरो के सर्वथा जल जाने से वह समस्त गुरु सिद्ध हो जाते। मैंने तो उनको दु ख से सर्वथा छुडाने के लिये ही यत्न किया था। अपनी समझ मे मैंने जैन धर्म के सिद्धात के विरुद्ध कुछ भी कार्य नही किया। प्रभो ! अब आप स्वय विचार कर ले कि इसमे मैंने क्या अपराध किया ?

"सभी बौद्ध गुरु मण्डप मे आग लगते ही भागकर बाहिर आ गए। इससे यह सिद्ध है कि उनका वह ध्यान सच्चा ध्यान नही था। ध्यान के बहाने से वह भोले जीवो को ठग रहे थे। मोक्ष कोई ऐसी सुलभ वस्तु नही जो सब किसी को अनायास ही मिल जावे। मोक्ष प्राप्त करने की जो प्रणाली जैन आगम मे बतलाई गई है वही उत्तम और सुखप्रद है। आपको अपने चित्त को शात करके बौद्ध साधुओ के ढोग को समझ लेना चाहिये।"

रानी चेलना के इन युक्तिपूर्ण वचनो से राजा श्रेणिक को कुछ भी उत्तर देते न बना। यद्यपि रानी के सामने उनको निरुत्तर होना पडा, किंतु अपने गुरुओ का पराभव देख उनके चित्त मे अशाति बनी ही रही। उनके मन मे बराबर यह विचार बना रहा कि रानी ने बौद्ध-गुरुओ को जलाने का यत्न

करके बडा भारी अपराध किया है। उन्होने मन ही मन निश्चय किया कि रानी से गुरु-अवमानना का बदला अवश्य लिया जावेगा।

एक दिन सम्राट् श्रेणिक विम्बसार एक बडी भारी सेना साथ लेकर शिकार खेलने गए। वहा उन्होने वन मे यशोधर नामक एक जैन महामुनि को खड्गासन से ध्यानारूढ पाया। मुनि यशोधर परम ज्ञानी, आत्मस्वरूप के सच्चे वेत्ता तथा परम ध्यानी थे। उनका मन सर्वथा उनके वश में था। मित्र-शत्रुओ पर उनका समभाव था। वह त्रिकालदर्शी तथा समस्त मुनियो में उत्तम थे। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की दृष्टि उन मुनिराज पर पडी। उन्होने इससे पूर्व कभी किसी जैन मुनि को नही देखा था। उन्होने उनको देखकर अपने एक पार्श्ववर्ती सैनिक से पूछा—

"देखो भाई ! स्नान आदि के सस्कार रहित एव मूण्ड मु डाए यह कौन व्यक्ति खडा है ? मुझे शीघ्र कहो।"

पार्श्वचर बौद्ध था। उसने महाराज को इन शब्दो मे उत्तर दिया—

"कृपानाथ ! आप क्या इसे नही जानते ? यही महाभिमानी तो महारानी चेलना का गुरु जैन मुनि है।"

महाराज की तो यह इच्छा थी ही कि वह महारानी के गुरु से बदला ले। पार्श्वचर का वचन सुनकर उनकी प्रतिहिंसा की अग्नि प्रज्वलित हो गई। उनको तुरन्त रानी द्वारा किये हुए अपने गुरु के अपमान का स्मरण हो आया। अतएव उन्होने एक क्षण विचार करके अपने साथ आये हुए सभी शिकारी कुत्तो को मुनिराज पर छोड दिया।

कुत्ते बड़े भयानक थे। उनकी दाढें बडी लम्बी थी। डीलडौल मे भी वे सिंह के समान ऊँचे थे। किन्तु मुनिराज के समीप पहुंचते ही उनकी सारी भयानकता दूर हो गई। ज्यो ही उन्होंने मुनिराज की शान्त मुद्रा देखी, वह मत्रकीलित सर्प के समान शात हो गए। वह मुनिराज की प्रदक्षिणा देकर उनके चरण-कमलो मे बैठ गए।

सम्राट् इस दृश्य को दूर से देख रहे थे। उन्होने जो कुत्तों को क्रोधरहित

होकर मुनिराज की प्रदक्षिणा करते देखा तो मारे क्रोध के उनके नेत्र लाल हो गए। वह सोचने लगे कि यह साधु नही, वरन् कोई धूर्त, वंचक मन्त्रकारी है। इस दुष्ट ने मेरे बलवान् कुत्तो को मन्त्र द्वारा कील दिया है। मै अभी इसको दण्ड देता हूँ।

यह विचार करके राजा म्यान से तलवार खीचकर मुनिराज को मारने को चले। महाराज मुनि को मारने चले तो एक अत्यन्त भयानक कृष्ण सर्प फण ऊँचा किये हुए उनके मार्ग मे आ गया। राजा ने सर्प को देखते ही जान से मार डाला और फिर उसको अपने धनुष से उठा कर मुनिराज के गले में डाल दिया। मुनिराज गले मे सर्प पड जाने पर भी अपने ध्यान मे वैसे ही निश्चल खडे रहे।

राजा श्रेणिक अब शिकार का कार्यक्रम स्थगित करके वापिस राजगृह आये। वहाँ उन्होने अपने गुरुओ को यह सारा समाचार सुना दिया। श्रेणिक द्वारा एक जैन मुनि का अपमान किये जाने से उन्हे बडी प्रसन्नता हुई।

लगभग एक प्रहर रात्रि गई होगी। रानी चेलना अपना सामायिक समाप्त कर उठी ही थी कि राजा श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उसके पास आकर बोले—

"रानी! तूने जो मेरे गुरु का अपमान किया था, उसका बदला लेने का मुझे तेरे गुरु से आज अवसर मिला।"

राजा के यह वचन सुनते ही रानी सन्नाटे में आ गई। उसने एकदम घबरा कर पूछा—

"आपने क्या किया महाराज? मुझे शीघ्र बतलाइये? मेरे हृदय की बेचैनी बढती जाती है।"

"कुछ भी नही रानी! तेरे गुरु मुनिराज जगल में खड़े ध्यान कर रहे थे कि मैंने धनुष से उठाकर एक मरा हुआ सर्प उनके गले में डाल दिया।"

राजा के यह वचन सुनते ही मुनि पर घोर उपसर्ग जान कर उसके नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। क्रमश उसकी हिचकियाँ बँध गईं और

वह फूट-फूट कर रोने लगी। वह रोते-रोते कहने लगी—

"राजन् ! तुमने यह क्या महापाप कर डाला। अब आपका अगला जन्म कभी भी उत्तम नही बन सकता। हाय ! अब मेरा जन्म सर्वथा निष्फल है। राजमदिर मे मेरा भोग भोगना भी महापाप कर है। हाय ! मेरा सम्बन्ध ऐसे कुमार्गी व्यक्ति के साथ क्यो हुआ ! युवावस्था प्राप्त होने पर मै मर ही क्यो न गई ? हाय ! अब मै क्या करू ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ रहूँ ? हाय ! यह मेरा प्राण-पखेरू इस शरीर से क्यों नही विदा हो जाता ? प्रभो ! मै बडी अभागिन हूँ। अब मेरा किस प्रकार हित होगा। छोटे से छोटे गाँव, वन अथवा पर्वत मे रहना अच्छा, किन्तु जिन-धर्मरहित अति वैभवयुक्त इस राजभवन मे रहना ठीक नही। हाय दुर्दैव ! तुझे मुझ अभागिन पर ही यह वज्र-प्रहार करना था !"

इस प्रकार रानी बडी देर तक बिलख-बिलख कर रोती रही। रानी के इस रुदन से राजा का पत्थर जैसा कठोर हृदय भी पिघल गया। अब उनके मुख से प्रसन्नता तिरोहित हो गई। वह एकदम किंकर्तव्यविमूढ होकर रानी को इस प्रकार समझाने लगे—

"प्रिये ! तू इस बात के लिये तनिक भी शोक न कर। वह मुनि अपने गले से मरे हुए सर्प को फेक कर कभी के वहाँ से चले गये होगे। मरे हुए सर्प का गले से निकालना कोई कठिन कार्य नही है।"

महाराज के यह वचन सुनकर रानी बोली—

"नाथ ! आपका यह कथन भ्रम पर आधारित है। यदि वह मुनिराज वास्तव मे मेरे गुरु है तो उन्होने अपने गले से मृत सर्प कभी भी नही निकाला होगा। प्राणनाथ ! अचल सुमेरु भले ही चलायमान हो जावे, समुद्र भले ही अपनी मर्यादा छोड दे, किन्तु जैन मुनि के ऊपर जब ध्यान की अवस्था मे कोई उपसर्ग आ जाता है तो वह बडे से बड़े उपसर्ग को भी सहन ही करते है, उसका स्वय निवारण नही करते। जैन मुनि पृथ्वी के समान क्षमा-भूषण से विभूषित होते है। वे समुद्र के समान गभीर, वायु के समान निष्परिग्रह, अग्नि के समान कर्म को भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान स्वच्छ चित्त

के धारक एवं मेघ के समान परोपकारी होते है। प्राणेश्वर ! आप विश्वास रखे कि मेरे गुरु निश्चय से परम ज्ञानी, परम ध्यानी तथा दृढ वैरागी होगे। किन्तु यदि वे इसके विपरीत परीषहो से भय करने वाले, अति परिग्रही, व्रत तप आदि से शून्य, मद्य-मास एव मधु के लोभी होगे तो वह मेरे गुरु नही हो सकते। इसीलिये आपके अत्यन्त यत्न करने पर भी जैन धर्म तथा जैन साधुओ मे मेरी श्रद्धा कम नही हुई। मै किसी अन्य धर्म पर आक्षेप नही करती, किन्तु तथ्य यह है कि जैन मुनि के जैसे पवित्र आचरण और किसी धर्म के साधु के नही होते।"

रानी चेलना के इन शब्दो को सुनकर राजा का हृदय भय के मारे काँप गया। वह और कुछ न कहकर केवल इतना ही कह सके—

"प्रिये ! तूने इस समय जो कुछ कहा है वह बिल्कुल सत्य दिखलाई देता है। यदि तेरे गुरु इतने क्षमाशील है तो हम दोनो उनको इसी समय रात्रि मे जाकर देखेगे और उनका उपसर्ग दूर करेगे। मै अभी तेज़ चलने वाली सवारी का प्रबन्ध करता हूँ।"

इस पर रानी बोली—

"नाथ ! अब आपके मुख से फूल झडे है। यदि आप स्वय न भी जाते तो मै स्वय अवश्य जाती। आपने यह बात बिल्कुल मेरे मन की कही। अब आप चलने में शीघ्रता करे।"

यह कहकर रानी चलने की तैयारी करने लगी। राजा ने उसी समय एक तेज़ घोडो वाली गाडी तैयार करा कर कुछ थोडे से सैनिक लेकर वन की ओर प्रयाण आरभ कर दिया। वह दोनो थोडी देर मे ही मुनिराज यशोधर के समीप जा पहुँचे।

इधर राजा मुनिराज के गले मे सर्प डाल कर गये, उधर मुनि महाराज ने अपने ध्यान को और भी गाढा करके मन मे इस प्रकार चिन्तन करना आरम्भ किया—

"इस व्यक्ति ने जो मेरे गले में सर्प डाला है, सो मेरा बड़ा उपकार

किया, क्योंकि इससे मेरे अशुभ कर्म और भी शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो जावेंगे। सञ्चित कर्मों की उदीरणा के लिये परीषह सहन करने का अवसर बडे भाग्य से मिलता है। यह सर्प डालने वाला मेरा बडा उपकारी है, जो इसने परीषहो की सामग्री मेरे लिये एकत्रित कर दी। यह शरीर तो मुझ से सर्वथा भिन्न है। यह कर्म से उत्पन्न हुआ है। किन्तु मेरा आत्मा समस्त कर्मों से रहित, पवित्र एवं चैतन्य स्वरूप है। क्लेश तो शरीर को होता है, आत्मा को नही। यद्यपि यह शरीर अनित्य, महान् अपावन, मल-मूत्र का घर तथा घृणित है तथापि विद्वान् लोग न जाने क्यो इसे अच्छा समझते है। वह इत्र-फुलेल आदि सुगधित पदार्थों से इसका संस्कार करते है। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर यह शरीर एक पग भी नही चल सकता। इसलिये इस शरीर को अपना समझना निरी मूर्खता है। मनुष्य जो यह कहते है कि शरीर मे सुख-दु ख आदि होने पर आत्मा सुखी-दु खी होता है यह बात भी उनकी सर्वथा निर्मूल है। क्योकि जिस प्रकार छप्पर मे आग लगने पर केवल वह छप्पर ही जलता है तदन्तर्गत आकाश रही जलता, उसी प्रकार शारीरिक सुख-दु ख मेरे आत्मा को सुखी-दु खी नही बना सकते। मैं अपने आत्मा को ध्यान-बल से चैतन्यस्वरूप, शुद्ध, निष्कलक समझता हूँ। यह शरीर तो जड़, अशुद्ध, अस्थि, मास तथा चर्ममय, मल-मूत्र आदि का घर तथा अनेक क्लेश देने वाला है। इसको मुझे कभी भी नही अपनाना चाहिये।"

मुनिराज यशोधर इस प्रकार की भावनाओ का चिन्तन करते हुए उसी प्रकार सर्प को गले में धारण किये हुए परीषह सहन करते रहे और इधर राजा-रानी उनके दर्शन करने शीघ्रतापूर्वक चले आ रहे थे। उन्होने जब मुनिराज के समीप आकर उनको ज्यो का त्यो ध्यान मे मग्न देखा तो आनन्द तथा श्रद्धा के मारे उनके शरीर में रोमांच हो आया। राजा ने सब से प्रथम मुनिराज के गले से उस सर्प को निकाला। रानी जब से घर से निकली थी मार्ग मे चीनी बखेरती जाती थी। यहाँ तो उसने पर्याप्त बखेरी। चीनी की गध के कारण मुनिराज के शरीर पर चढ़ी हुई चींटियाँ उनके शरीर से उतर कर

चीनी पर चली गई। उन्होने मुनिराज के शरीर को काट-काट कर खोखला कर दिया था। अतएव रानी ने उनके शरीर को उष्ण जल में भिगोये हुए कोमल वस्त्र से धोया। फिर रानी ने उनकी जलन को कम करने के लिये उनके शरीर पर चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेप किया। इस प्रकार मुनिराज के उपसर्ग को अपने हाथों से दूर करके वे दोनो उनको नमस्कार कर आनन्दपूर्वक उनके सामने भूमि पर बैठ गये। राजा मुनिराज की ध्यान-मुद्रा पर आश्चर्य कर रहे थे। वह उनके दर्शन से बहुत ही सतुष्ट हुए।

मुनिराज रात्रि भर उसी प्रकार ध्यान मे लीन खडे रहे और राजा-रानी जागरण करते हुए उनके सामने उसी प्रकार बैठे रहे। रात्रि समाप्त होने पर जब सूर्य का प्रकाश चारो ओर फैल गया तो रानी ने मुनिराज के चरणो का प्रक्षालन किया। फिर उसने मुनिराज की फिर से तीन प्रदक्षिणा की और उनकी पूजा कर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगी—

"प्रभो! आप समस्त ससार मे पूज्य एव अनेक गुणो के भडार हैं। आपके गले में सर्प डालने वाले तथा आपको फूलो का हार पहिनाने वाले दोनो ही आपकी दृष्टि मे समान है। भगवन्! आप इस संसाररूपी समुद्र को पार कर चुके है तथा औरो को भी इसके पार उतारने वाले हैं। आप सभी जीवो के कल्याणकारी है। करुणासिंधो! अज्ञानवश जो कुछ आपकी अवज्ञा करके हम से आपका अपराध हो गया है उसे आप क्षमा करें। यद्यपि मै जानती हूँ कि आप राग-द्वेष से रहित तथा किसी का भी अहित न करने वाले है, तथापि आपकी अवज्ञा-जनित हमारा अशुभ कार्य हमें संताप दे रहा है। प्रभो! आप मेघ के समान सभी जीवो का उपकार करने वाले, धीर, वीर एव शुभ भावना वाले है।"

रानी के इस प्रकार मुनि की स्तुति कर चुकने पर उनको राजा तथा रानी दोनो ने ही फिर भक्ति-भाव से प्रणाम किया। मुनिराज इस समय तक अपना ध्यान छोड कर बैठ गये थे। उन्होने उन दोनो से कहा—

"आप दोनो की धर्म-वृद्धि हो।"

मुनिराज के मुख से इन शब्दो को सुनकर राजा पर बडा भारी प्रभाव पड़ा। वह मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगे—

"ओहो ! यह मुनिराज तो वास्तव मे बडे भारी महात्मा है। इनके लिये शत्रु और मित्र वास्तव मे समान है। इनके गले मे सर्प डालने वाला मै तथा उनकी परम भक्त रानी दोनो पर ही इनकी एक सी कृपा है। यह मुनि धन्य है, जो गले मे सर्प पडने के अनेक कष्ट सहन करते हुए भी इन्होने उत्तम क्षमा को न छोडा। हाय ! मै बडा नीच व्यक्ति हूँ, जो मैने ऐसे परम योगी की अवज्ञा की। ससार मे मेरे समान वज्रपापी कोई न होगा। हाय ! अज्ञानवश मैने यह कैसा अनर्थ कर डाला। अब इस पाप से मेरा छुटकारा कैसे होगा ? अब तो मुझे नियम से नरक आदि घोर दुर्गतियो मे जाना होगा। अब मै क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इस कमाये हुए पाप का प्रायश्चित्त किस प्रकार करूँ ? अब तो इस पाप को धोने का केवल यही उपाय है कि मै शस्त्र से स्वय अपना मस्तक काट कर इन मुनिराज के चरणो मे चढा कर अपने समस्त पापो का शमन करूँ।"

राजा श्रेणिक बिम्बसार का इस प्रकार विचार करते हुए लज्जा से मस्तक झुक गया। मारे दु:ख के उनके नेत्रो मे आँसू आ गये।

मुनिराज बडे भारी ज्ञानी थे। उन्होने राजा के मन के समस्त संकल्प-विकल्प को जान लिया। अतएव वह महाराज को सात्वना देते हुए बोले—

"राजन् ! तुमने जो अपने मन मे आत्महत्या का विचार किया है, उससे प्रायश्चित्त न होकर और भी भीषण पाप होगा। आत्महत्या बडा भारी पाप है। पाप अथवा कष्ट के कारण जो लोग परभव मे सुख मिलने की आशा मे आत्महत्या करते है उनकी यह भारी भूल है। आत्मघात से कदापि सुख नही मिल सकता। इससे परिणाम संक्लेशमय हो जाते है। सक्लेशमय परिणामो से अशुभ कर्मो का बध होता है और अशुभ कर्म के बध से नरक आदि घोर दुर्गतियो में जाना पड़ता है। राजन् ! यदि तुम अपना हित करना चाहते हो तो तुम इस अशुभ संकल्प को छोड दो। यदि तुम्हे प्रायश्चित्त ही करना है तो

अपने आत्मा की निंदा करो। आत्म-हत्या से पापो की शाति नही हो सकती।"

मुनिराज के यह वचन सुनकर महाराज को बडा भारी आश्चर्य हुआ। वह महारानी से कहने लगे—

"सुन्दरी ! यह क्या बात हुई ? मुनिराज ने मेरे मन की बात कैसे जान ली ?"

तब रानी ने उत्तर दिया—

"नाथ ! यह मुनिराज त्रिकालदर्शी है। आपके मन की बात तो क्या, यह आपके अगले-पिछले जन्मो का हाल भी बतला सकते है।"

रानी के यह वचन सुनकर राजा ने मुनि के मुख से धर्म का वास्तविक स्वरूप सुनकर जैन धर्म को धारण किया। उन्होंने उसी समय श्रावक के व्रत धारण किये और रानी सहित मुनिराज के चरणो की वन्दना कर उनके गुणो को स्मरण करते हुए आनन्दपूर्वक अपने घर वापिस आगये।

बिम्बसार का परिवार

क्यों भाई धनदत्त ! यह कैसी बात हुई ? राजा श्रेणिक तो गौतम बुद्ध के बड़े भारी भक्त थे, अब वह जैनी कैसे बन गये ?"

धनदत्त—'भाई, कुवेरदत्त ! मुझे भी यही आश्चर्य है। जब गौतम बुद्ध तप की अवस्था मे सम्राट् के पास आये थे तो सम्राट् उनको अपना समस्त राजपाट देने को तैयार थे और जब वह बुद्ध बनकर आये तो वह उनके श्रद्धालु बन गये, किन्तु उनकी बौद्ध धर्म की वह समस्त श्रद्धा अब एक-दम जैन धर्म की ओर चली गई। क्यो भाई पुष्पदन्त, तुम्हारा इस विषय मे क्या विचार है ?"

पुष्पदन्त—इसमे विचार कैसा ? यह सारी करामात उसी जैन रानी की है, जिसे युवराज अभयकुमार वैशाली से भगा लाये थे।

कुवेरदत्त—महारानी के विषय मे ऐसा मत कहो भाई। वह ऐसी गुण-वती है कि सारी प्रजा उस पर अपनी जान तक देने को तैयार है। यद्यपि जनता उसको विदेह कुमारी समझती है, किन्तु वास्तव में वह प्रतापी लिच्छवी कुल मे उत्पन्न वैशाली के गणतंत्र के प्रधान राजा चेटक की सबसे छोटी कन्या है।

धनदत्त—इतना ही नही। कौशाम्बीपति उदयन, चम्पापति दृढवर्मा, नाथ-वंशशिरोमणि भगवान् महावीर जैसे विश्वविख्यात व्यक्ति उसके भानजे है।

पुष्पदन्त—किन्तु महारानी चेलना को वैदेही रानी क्यो कहा जाता है ?

धनदत्त—यह तो सीधी सी बात है। वज्जी गणतंत्र के अष्टकुल मे मिथिला का विदेह गण भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर आज बज्जियो की राजधानी वैशाली बसी हुई है वह कभी पहिले मिथिला राज्य का भाग थी। इसलिये रानी चेलना को वैदेही रानी भी कहा जाता है।

पुष्पदन्त—किन्तु एक बात बड़ी आश्चर्यजनक है। रानी चैलना के सातो राजकुमार एक से एक बढ़कर सुन्दर है।

कुवेरदत्त—अजी उनमे सबसे बड़े कुरिगक का चेहरा तो तेज से बेहद दमकता है। सुनते है उसका लौकिक नाम अजातशत्रु रखा गया है।

धनदत्त—किन्तु, भाई सुनते है कि उस राजकुमार के ग्रह अपने पिता के लिये अच्छे नही है। जब यह गर्भ मे था तो रानी चेलना को यह दौहृद हुआ था कि वह राजा श्रेणिक को रक्त मे लथपथ इस प्रकार देखे कि उसके वक्ष-स्थल से रक्त की अविरल धारा बह रही है।

पुष्पदन्त—उस दौहृद को किस प्रकार पूर्ण किया गया ?

धनदत्त—उसको इन्द्रजाल विद्या द्वारा पूर्ण किया गया था।

कुवेरदत्त—रानी चेलना के द्वितीय पुत्र वारिषेण के धार्मिक जीवन की भी जनता मे बहुत चर्चा है।

पुष्पदन्त—तो क्या उसके तृतीय पुत्र हल्ल तथा चतुर्थ पुत्र विदल्ल कुछ कम धार्मिक है ?

धनदत्त—आपकी यह बात ठीक है। रानी चेलना के सभी पुत्र एक से एक बढकर धार्मिक है। उसके पाचवे, छठे, तथा सातवे पुत्र जितशत्रु, गजकुमार तथा मेघकुमार विशेष पराक्रमी है।

कुवेरदत्त—अजी तो सम्राट् की कौशल रानी क्षेमा के पुत्र ही गुणो मे कौन से कम सुन्दर तथा पराक्रमी है ?

धनदत्त—यह बात तुम्हारी ठीक है। बात यह है कि उच्चवश की विशेषताए इसी प्रकार प्रकट हुआ करती है।

पुष्पदन्त—तो क्या सम्राट् के महलो से बौद्ध धर्म तथा बौद्ध साधुओ का एकदम बहिष्कार हो गया ?

धनदत्त—नही, उनकी कौशल रानी तथा नन्दश्री अभी तक भी बौद्ध हैं। उनके कारण राज्य भवन मे बौद्ध साधुओ का गमनागमन होता ही रहता है। किन्तु रानी चेलना तथा सम्राट् की जैन धर्म पर अटल श्रद्धा है, जिससे वहा जैन

मुनियो को प्राय आहार दान दिया जाता है।

पुष्पदन्त—किन्तु यह आजकल युद्ध की तैयारी कैसी की जा रही है ?

धनदत्त—तैयारी क्या, युद्ध तो सभवत आरभ हो गया है।

कुवेरदत्त—यह युद्ध किसके साथ हो रहा है ?

धनदत्त—चम्पा के राजा दृढवर्मा के साथ।

कुवेरदत्त—इस युद्ध का कारण क्या है ?

धनदत्त—बात यह है कि दृढवर्मा की राजधानी चम्पापुर जैनियो का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है।

कुवेरदत्त— उसमे जैनियो के तीर्थपने की क्या बात है ?

धनदत्त—वहा जैनियों के बारहवे तीर्थकर भगवान् वासुपूज्य की निर्वाण भूमि है।

पुष्पदत्त—तो वहा तीर्थ होने के कारण अग तथा मगध का युद्ध क्यो आरम्भ हो गया।

धनदत्त—बात यह है कि रानी चेलना वहा वासुपूज्य भगवान् के स्मृति-चिह्न बनवाना चाहती थी। किन्तु दृढवर्मा ने इसमें न केवल हस्तक्षेप किया, वरन् रानी चेलना के प्रति अत्यन्त अपमानजनक शब्दो का प्रयोग किया।

कुवेरदत्त—किन्तु दृढवर्मा तो रानी चेलना का भानजा है। उसने अपनी मौसी के सम्मान का भी ध्यान न रखा ?

धनदत्त—तो इसी का फल उसे चखाने के लिये तो प्रधान सेनापति जम्बूकुमार की अध्यक्षता मे मगध सेना ने चम्पापुर पर चढाई की है।

पुष्पदन्त—जैन राजा तो जैन राजा पर चढाई किया नही करते। यह युद्ध कैसे आरम्भ हो गया।

धनदत्त—दृढवर्मा जैन नही वरन् बौद्ध है। उसके माता-पिता जैन थे, किन्तु दृढ़वर्मा निर्वासित जीवन मे बौद्ध बन गया था।

कुवेरदत्त—तो उसकी सहायता तो उसके नाना राजा चेटक तथा मौसेरे भाई राजा उदयन कर रहे होगे।

धनदत्त—मगध-महामात्य ने उनको राजा श्रेणिक के उनके साथ के संबन्ध को पुनः स्मरण करा कर उनको पहिले ही तटस्थ कर दिया है। वास्तव में उनके लिये तो राजा श्रेणिक तथा दृढवर्मा दोनों ही उनके सम्बन्धी हैं। फिर जैन होने के कारण राजा श्रेणिक दृढवर्मा की अपेक्षा उनके अधिक निकट हैं।

पुष्पदन्त—क्या यह युद्ध अधिक विकट हो सकता है ?

धनदत्त—विकट क्या हो सकता है ? अंग की मगध के मुकाबले शक्ति ही क्या है ? विजयी मगध-सेना का वेग वह एक सप्ताह संभाल ले तो बहुत समझो।

कुवेरदत्त—तो उसने मगध को युद्ध का निमन्त्रण किस बल पर दे दिया ?

धनदत्त—चीटी के जब मरने के दिन आते हैं तो उसके पख निकल आते है।

कुवेरदत्त—क्या इस युद्ध को किसी प्रकार टाला नही जा सकता था ?

धनदत्त—सम्राट् अपमान को कडुवे घूट के समान पी जाते तो इसको सुगमता से टाला जा सकता था।

पुष्पदन्त—अच्छा, आज समझा मै इस युद्ध के रहस्य को।

४३

चम्पा का पतन

"मुझसे तो यह विलम्ब सहन नही होता महामात्य ! आज सात दिन से चम्पा के दुर्ग से हमारे ऊपर तीरो की वर्षा की जा रही है, जैसे वह मगध सेना को गाजर-मूली ही समझते हो।"

"किन्तु इसमें तुम्हारी क्या हानि है सेनापति जम्बूकुमार ? तुमने नौकाओ में बालू भरकर उनकी ओट में अपनी सेना को खड़ा किया हुआ है। मुख्य सेना को तुमने शिविर में रखकर मोर्चे पर केवल इने-गिने सैनिको से ही काम चलाया हुआ है।"

जम्बूकुमार—इसमें मगध सेना का बडा अपमान हो रहा है महामात्य ! लोग कहते हैं कि मगध सेना संसार भर में सबसे प्रबल होने पर भी चम्पा जैसे छोटे से दुर्ग पर किस प्रकार झख मार रही है।

महामात्य—किन्तु दुर्ग का पतन होने पर यह क्या कहेंगे ?

जम्बूकुमार—तब तो उनको यथार्थ बात को मानना ही पड़ेगा। किन्तु इसमें सन्देह नही महामात्य ! कि चम्पा का दुर्ग संसार के प्रबलतम दुर्गों में से एक है। उनके पास अन्न-जल की कोई कमी नहीं है। इस प्रकार तो हम एक वर्ष तक भी दुर्ग का घेरा डाले रहेंगे तो भी इस दुर्ग का पतन नही होगा।

अभयकुमार—किन्तु आपने यह भी पता लगाया कि इस दुर्ग को कौशाम्बी-नरेश ने जीत कर दधिवाहन को किस प्रकार मार डाला था ?

महामात्य—उस युद्ध में कौशाम्बी नरेश को दो कारणों से सफलता मिली थी। एक तो उन्होने प्रकट युद्ध की अपेक्षा कूट युद्ध का आश्रय अधिक लिया था, दूसरे उस समय इस दुर्ग की भी इतनी अच्छी दशा नही थी। महाराज दधिवाहन समझते थे कि उनको कभी भी कोई युद्ध करना नही पड़ेगा। अतएव उन्होने दुर्ग को अनेक स्थानों में अरक्षित छोडा हुआ था, किन्तु दृढवर्मा ने अपने पिता के सिंहासन पर न बैठकर निर्वासित जीवन व्यतीत करके राज्य

कर उसके अनेक गुप्त मार्गों का पता लगा लिया है।

इस पर जम्बूकुमार बहुत ही प्रसन्न हो गया और बोला—

"अच्छा, महामात्य ! तब तो आप हमारी सारी सेना से भी अधिक कार्य अब तक कर चुके है।

महामात्य—इसलिये हम चम्पा दुर्ग पर कल प्रात काल रक्त की एक भी बूद बहाये विना अधिकार कर लेंगे।

जम्बूकुमार—तब तो कल दुर्ग पर अधिकार करना अत्यन्त सुगम है। आप कल के लिये सब को काम बाट दे।

महामात्य—दुर्ग मे तीन गुप्त मार्ग है, जिनमे से एक राजसभा मे, दूसरा अन्त.पुर मे तथा तीसरा प्रधान द्वार पर खुलता है। युवराज दो सहस्र सैनिक लेकर आज रात को तीसरे पहर के आरभ मे अन्त पुर के गुप्त मार्ग से प्रवेश करेंगे। शेष दोनो मार्गो मे एक-एक सहस्र सैनिक प्रवेश करके अपने-अपने स्थान पर गुप्त मार्ग के अन्दर रहते हुए सकेत शब्द की प्रतीक्षा करेंगे। जब युवराज दृढवर्मा को बदी बना लेंगे तो एक तुरही का शब्द करने की व्यवस्था करेंगे। इस शब्द के सुनते ही गुप्तवेषी दो सहस्र सैनिको का नायक अश्वजित् प्रधान द्वार को खोल देगा तथा शेष दोनो मार्गो के सैनिक भी अपने-अपने सुरग मार्ग से निकल कर राजसभा तथा दुर्ग द्वार पर अधिकार कर लेगे। प्रधान द्वार के खुलते ही तुम अपनी सेना लेकर एकदम नगर के अन्दर घुसकर सारे नगर पर अधिकार कर लेना।

जम्बूकुमार—यह तो आपकी बड़ी सुन्दर योजना है महामात्य ! तब तो हम लोग प्राचीर पर आक्रमण करने के लिये व्यर्थ ही घबरा रहे थे।

महामात्य—अच्छा, अब आप लोग थोडा विश्राम कर ले।

जम्बूकुमार—हा, अब तो यही उचित होगा।

यह कहकर जम्बूकुमार, अभयकुमार तथा महामात्य वर्षकार तीनों ही अपने-अपने शिविर में चले गये।

इस समय लगभग एक पहर रात्रि गई थी। एक पहर रात्रि और व्यतीत होने पर चार सहस्र सैनिको ने प्राचीर के गुप्त मार्गों के द्वारा दुर्ग मे प्रवेश

करना आरंभ किया। एक मार्ग से युवराज अभयकुमार दो सहस्र सैनिको को लेकर स्वयं अन्त पुर की ओर चले। एक अन्य मार्ग द्वारा एक सहस्र सैनिक राज सभा की ओर तथा तीसरे गुप्त मार्ग द्वारा एक सहस्र सैनिक प्रधान द्वार की ओर चले। चम्पापुरी मे रहने वाले दो सहस्र मगध सैनिक भी अस्त्र-शस्त्रो से लैस होकर अपने को छिपाते हुए मुख्य-मुख्य नाको पर लग गये। प्रधान सेनापति जम्बूकुमार अपनी समस्त सेना को तैयार करके मुख्य द्वार से कुछ दूरी पर खडा हुआ उसके खुलने की प्रतीक्षा करता रहा।

युवराज तो भूमिगत मार्गों के विशेषज्ञ थे ही, उन्होने उस सारे मार्ग को लगभग आधे पहर मे पार कर लिया। जिस समय वह अन्त पुर में अपने सैनिकों के साथ पहुँचे तो दृढवर्मा वहा गहन निद्रा में सोया हुआ था। उन्होंने फुर्ती से दृढवर्मा को गिरफ्तार करके अन्तःपुर के सभी द्वारो पर अपने प्रहरियों को नियुक्त कर दिया। दृढवर्मा ने जब अपने को बेबस पाया तो उसने तुरंत ही अपनी अंगूठी में लगी हुई हीराकनी को चाट कर आत्महत्या कर ली।

उसी समय युवराज अभयकुमार नें तुरही बजवाई। उसका शब्द सुनते ही मगध सैनिको ने प्रधान द्वार के पास सुरंग में से निकल कर उसे खोल दिया। उस समय प्रधान द्वार पर कुल पाच-छः सैनिक थे। उनको सुगमता से वश में कर लिया गया।

प्रधान द्वार के खुलते ही प्रधान सेनापति जम्बूकुमार ने मगध-सेना के साथ तुरन्त ही उसमें प्रवेश किया। अब तो सारे नगर पर अधिकार करके दृढवर्मा की समस्त सेना को बदी बना लिया गया। युवराज अभयकुमार ने समस्त मगध सेना में यह कठोर आज्ञा प्रचारित कर दी थी कि नगर में किसी प्रकार की लूटपाट न की जावे।

इस प्रकार अत्यन्त शान्तिपूर्वक अंग देश पर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का अधिकार हो गया। जिन बदी सैनिकों ने सम्राट् के प्रति भक्ति की शपथ लेने का विचार प्रकट किया उनको मगध-सेना में भर्ती कर लिया गया।

इस प्रकार अंग देश का युद्ध समाप्त हो गया और रानी चेलना ने वहां श्री वासुपूज्य भगवान् की निर्वाण भूमि पर उनकी चरण-पादुकाएँ स्थापित कराईं।

४४

भगवान् महावीर स्वामी को केवल ज्ञान

अपराह्न का समय है। वैशाख शुक्लपक्ष की दशमी का दिन होने के कारण धूप में पर्याप्त उष्णता आ गई है। फिर भी ज्येष्ठ मास के जैसी तेजी नहीं आई है। वन एकदम शान्त है। उसमे पास के जृम्भक नामक गाव के कुछ थोड़े से पशु चरते हुए दिखलाई दे रहे है। पक्षी अपने-अपने बच्चों को घोसलो मे छोड़ कर आहार की खोज मे यत्र-तत्र गए हुए है। ऋजुकूला नदी के जल पर पड़ती हुई सूर्य की किरणे उसके जल की नीलिमा को और भी अधिक चमका रही है। नदी के तट पर वन अत्यत सघन है। उसमे बड, पीपल, जामुन, पिलखन, शाल आदि के अनेक प्रकार के वृक्ष है, जिन पर अनेक प्रकार के पक्षी मीठा शब्द कर रहे है। नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे पडी हुई एक शिला ऐसी सुन्दर दिखलाई दे रही है कि उसने एक प्रकार से नदी का घाट जैसा बनाया हुआ है। शिला लगभग अढाई गज लम्बी तथा दो गज चौडी है। वह सफेद पत्थर की बनी हुई और एकदम समतल है। शिला के ऊपर एक महापुरुष पद्मासन से विराजमान है। उनके शरीर पर कोई भी वस्त्र नही है। उनका शरीर तप के कारण अत्यत दुर्बल हो गया है। आज भी वह दो दिन के उपवास से है। उनके नेत्र आधे मु दे तथा आधे खुले हुए है। उनकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर लगी हुई है। वह एकदम ध्यान मे लीन है। इस समय वह अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा का साक्षात्कार कर रहे है। यह महापुरुष भगवान् महावीर स्वामी है।

उस समय शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रही थी। वृक्षो मे नई कोपलें निकल रही थी, फूल फूल रहे थे और वसन्त ऋतु की शोभा सारे वन में छा रही थी कि अचानक एक ओर से घु घरू का शब्द आया। क्रमश भगवान् के सन्मुख अनेक सुन्दर देवाङ्गनाएं आई । उन्होने भगवान् के सम्मुख डटकर

अपने कोयल जैसे कण्ठ से अनेक प्रकार के रागो का गाना आरम्भ किया। उनका प्रत्येक गीत कामोत्तेजक भावों को प्रकट करता था। साथ ही वह अनेक प्रकार की काम-चेष्टाएं करके भगवान् को लुभाने के लिये हाव-भाव प्रकट कर रही थी। उनके पास अनेक प्रकार के वाद्य भी थे, जिनको वह स्वयं ही बजा रही थी। उनको गाते-गाते बहुत समय व्यतीत हो गया, किन्तु भगवान् अपने ध्यान से टस से मस न हुए। जब वह अप्सराएं भगवान् को अपने संगीत से वश मे न कर सकी तो उनमे से कुछ ने अपने वस्त्रो को एक दम फेक कर अपने शरीर को भगवान् के शरीर से रगड़ना आरम्भ किया। किन्तु भगवान् के ध्यान को वह तब भी भग न कर सकी। भगवान् ने कामदेव अथवा मार के इस भीषण आक्रमण को अत्यत शांति से सहन किया। मार जब उनको अनेक प्रकार के सासारिक भोगों के प्रलोभनो से वश में न कर सका तो अपनी उन सभी अप्सराओ को लेकर लज्जित होकर वहा से स्वयं ही भाग गया। भगवान् ने इस समय अपने ध्यान के प्रकर्ष से अपने आत्मा के अन्दर ऐसी भीषण अग्नि प्रज्वलित की, जिसमे उनके सभी घातिया कर्म नष्ट हो गए और उनको तीन लोक को हस्तामलकवत् प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान् को केवल ज्ञान होते समय उस सारे वन में एक बिजली जैसी चमक गई, जिससे जृम्भक गाव सहित ऋजुकूला नदी भी प्रकाशित हो गई।

केवल ज्ञान होने के उपरांत भगवान् कुछ देर तक तो ध्यानावस्था में रहे, किन्तु कुछ देर बाद उन्होंने ध्यान खोल दिया। उन्होंने जीवन में सब से अधिक मूल्यवान् वस्तु को प्राप्त कर लिया। उनके ज्ञान में भूत, भविष्य तथा वर्तमान की अनन्त पर्यायें एक साथ झलकने लगीं। उनका मुख इस प्रकार दमकने लगा, जैसे अनेक सूर्य एक स्थान पर एकत्रित होकर चमकते हों। उनके पाव भट्टी मे तपाये गए पीतल के समान चमकदार हो गए। उनके नेत्रो से अग्नि-ज्वाला जैसी ज्योति निकलने लगी।

केवल ज्ञान होने पर देवताओ ने उनके समवशरण अथवा धर्मसभा

की रचना की, जिसमें मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, देव, दानव तथा पशु-पक्षी तक अपने-अपने स्थान पर बैठकर उनका उपदेश सुनने लगे। भगवान् महावीर अहिंसा के साक्षात् अवतार थे। अतएव उनके समवशरण में आकर कोई भी व्यक्ति आपस मे द्वेष-भाव नही करता था। सिह और बकरी एक स्थान पर बैठकर उनका उपदेश सुनते थे। वह अर्द्धमागधी भाषा में उपदेश देते थे, किन्तु केवल ज्ञान होने पर कोई गणधर न होने के कारण वह उपदेश न दे सके।

उन दिनो राजगृह में सुमति नामक ब्राह्मण के पुत्र गौतमगोत्री इन्द्रभूति नामक एक बड़े भारी विद्वान् रहते थे। वह पांच सौ शिष्यो को छहो अङ्गों सहित चारो वेदो की शिक्षा दिया करते थे। उनके पास एक ब्राह्मणवेषी विद्यार्थी आकर इस प्रकार बोला—

"महाराज! मेरे पूज्य गुरु भगवान् महावीर स्वामी ने मुझे एक श्लोक बतलाया है, किन्तु उसका अर्थ बतलाने के पूर्व वह अपने शुक्ल ध्यान में आरूढ़ हो गए। मैं अनेक स्थानों मे इस श्लोक का अर्थ पूछने गया, किन्तु मुझे कोई भी न बतला सका। मैंने सुना है कि आपके समान इस संसार में कोई विद्वान् नही है। क्या आप कृपा कर मुझे इस श्लोक का अर्थ बतलावेगे?"

इन्द्रभूति—अच्छा वत्स! कहो, वह कौन सा श्लोक है?

विद्यार्थी—देव, श्लोक यह है—

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं सकलगणितगणा. सत्पदार्था नवैव,
विश्वं पञ्चास्तिकायव्रतसमितिविदः सप्ततत्वानि धर्मं।
सिद्धं मार्गस्वरूपं विधिजनितफलजीवषट्कायलेश्या,
एतान्यः श्रद्दधाति जिनवचनरतो मुक्तिगामी स भव्य.॥

विद्यार्थी के मुख से इस श्लोक को सुनकर इन्द्रभूति असमंजस में पड़ गये। यद्यपि वे वैदिक साहित्य के धुरंधर विद्वान् थे, किन्तु जैन सिद्धान्त का उन को लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। छः द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, नव पदार्थ, सात तत्त्व,

छ काय के जीव तथा छ. लेश्याएं उनके लिये पहेलियां थीं। बहुत कुछ सोच विचार के पश्चात् वह ब्राह्मण-विद्यार्थी से बोले—

"यह कैसा अनर्गल श्लोक है। चल इसके सम्बन्ध में मैं तेरे गुरु से ही वार्त्तालाप करूंगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

यह कहकर ब्राह्मण-विद्यार्थी उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगा।

इन्द्रभूति अपने अग्निभूति तथा वायुभूति नामक दो लघुभ्राताओ तथा पांचसौ शिष्यो सहित भगवान् महावीर के समवशरण की ओर चले। भगवान् के समीप पहुच कर जो उन्होने उनकी परमवीतराग मुद्रा को देखा तो उनका हृदय स्वयं ही नम्रीभूत हो गया। वह उनकी योगावस्था की आत्मविभूति को देखकर ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होने उनको साष्टांग प्रणाम कर उनसे निवेदन किया—

"भगवन्! मैं आपसे इस श्लोक का अर्थ जानना चाहता हूं।"

इस पर भगवान् बोले—

"वत्स! इस ससार में जितनी भी वस्तुए हैं वे या तो सजीव है या निर्जीव है। जीव अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य सहित है, किन्तु यह अनादि काल से कर्म के बन्धन में पड़ा हुआ अपने को भूला हुआ है। यदि यह अपने स्वरूप को ठीक-ठीक पहचान कर ज्ञानपूर्वक तप करे तो यह इसी जन्म में समस्त कर्मों को नष्ट करके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य को प्राप्त कर सकता है। यह जीवतत्त्व का वर्णन है।

इन्द्रभूति—भगवन्! जीवतत्त्व के अतिरिक्त अजीवतत्त्व कौन से हैं?

भगवान्—अजीवतत्त्व पांच हैं—

पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। यही छ. द्रव्य हैं।

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाये जावें उसे पुद्गल कहते हैं। संसार के सभी दृश्य पदार्थ इसी पुद्गल के बने हुए हैं। प्राणियो का शरीर भी पुद्गल का ही बना हुआ है। इस जीव को शुभ और अशुभ कर्मों का फल देने वाली कर्मवर्गणाएं भी पुद्गल की ही बनी होती हैं।

इन्द्रभूति—तो भगवन् ! जब कर्म फल देने वाला द्रव्य भी पुद्गल है तो आपने धर्म तथा अधर्म को पृथक् द्रव्य क्यो कहा ?

भगवान्—यह धर्म तथा अधर्म द्रव्य पुण्य तथा पाप रूप न होकर दो अन्य ऐसे सूक्ष्म पदार्थ हैं, जिनको किसी सूक्ष्मदर्शक यत्र द्वारा भी नही देखा जा सकता। यह दोनो द्रव्य समस्त लोकाकाश में व्याप्त है। धर्म द्रव्य जीव तथा पुद्गल को गमन करने में उसी प्रकार सहायता करता है, जिस प्रकार मछली की सहायता जल करता है। किन्तु जिस प्रकार जल मछली को चलने की प्रेरणा नही करता, उसी प्रकार धर्म द्रव्य भी जीव तथा पुद्गल को चलने के लिये प्रेरणा नही करता। प्रकाश की किरणे सूर्य से होकर इस पृथ्वी पर धर्म द्रव्य के माध्यम से ही आती है। जिस प्रकार धर्म द्रव्य जीव तथा पुद्गल के गमन में माध्यम बन कर सहायता करता है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य उन दोनो की ठहरने मे सहायता करता है। इस विषय मे ग्रीष्मकाल मे किसी छायादार वृक्ष का उदाहरण लिया जा सकता है। चलने वाला पथिक यदि छाया मे ठहरता है तो वह छाया उसको सहायता देती है, किन्तु यदि वह ठहरना नही चाहता तो वह उसको ठहरने की प्रेरणा भी नही करती।

इन्द्रभूति—आकाश तथा काल द्रव्य किस को कहते है भगवन् ?

भगवान्—जो सब द्रव्यों को रहने का स्थान दे उसे आकाश द्रव्य कहा जाता है। वस्तु का पर्याय बदलना काल द्रव्य का काम है। काल द्रव्य के कारण ही एक नई वस्तु कुछ समय पश्चात् पुरानी हो जाती है, किन्तु काल का यह निश्चय रूप है। उसका व्यवहार रूप पल, घड़ी, प्रहर, अहोरात्र, सप्ताह, मास, वर्ष आदि समय है। इन छहो द्रव्यो के प्रदेश सयुक्त होते हैं, किन्तु काल द्रव्य के अणु रत्नो के ढेर के रत्नों के समान पृथक्-पृथक् होते हैं। इसीलिये काल द्रव्य के अतिरिक्त शेष पाच द्रव्यो को अस्तिकाय कहा जाता है। इन छहो द्रव्यो के सक्षेप मे जीव तथा अजीव यह दो भेद भी किये जा सकते है।

इन्द्रभूति—सात तत्त्व कौन से होते है ?

भगवान्—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये सात तत्त्व होते है। जीव तथा अजीव का स्वरूप तुम को बतला दिया गया। शरीर मे कर्म-वर्गणाओं के आने को आश्रव तथा कर्मों के जीव में बंध जाने को बध कहते है। किन्तु जब जीव कर्मों को नष्ट करने के लिये यत्नशील होता है तो वह प्रथम आत्मा मे कर्मों का आना उसी प्रकार रोकता है, जिस प्रकार किसी तालाब के जल को निकालने के लिये प्रथम उसमे पानी लाने वाले नल अथवा मार्ग को बन्द किया जाता है। शरीर में नई कर्मवर्गणाओं का आगमन रोकने को संवर तथा सचित कर्मों के नष्ट करने को निर्जरा कहते हैं। जब यह जीव समस्त कर्मो को नष्ट करके इस शरीर से छुटकारा पाकर आवागमन के चक्कर से छूट जाता है तो उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन सात तत्त्वो मे पुण्य तथा पाप को मिलाने से उनको नव पदार्थ कहा जाता है।

इन्द्रभूति—उस श्लोक मे बतलाये हुए षट्काय के जीव कौन-कौन से हैं ?

भगवान्—इन्द्रिया पाच होती है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्ण। कुछ जीव ऐसे होते है जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है—जैसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक जीव। इन पाचो प्रकार के जीवो को स्थावर जीव भी कहा है। शेष जीवो को त्रसकायिक जीव कहा जाता है; यही छः काय के जीव है।

इन्द्रभूति—भगवन् ! स्थावर तथा त्रसजीव किन्हें कहते है ?

भगवान्—जो जीव पैदा होते हो, बढ़ते हो, मरते हो, किन्तु चल-फिर न सकते हो उन्हे स्थावर जीव कहते है, तथा जो पैदा होते हों, बढते हो किन्तु चल फिर सकते हो उन्हे त्रसजीव कहते है। त्रसजीव चार प्रकार के होते हैं—

द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय।

जिन जीवों के केवल स्पर्शन तथा रसना ये दो इन्द्रिया ही हो नाक, आख तथा कान न हो उन को द्वीन्द्रिय कहा जाता है जैसे चावलों में पाया जाने वाला लट नामक कीड़ा। जिन जीवो के केवल स्पर्शन, रसना तथा घ्राण ये तीन इन्द्रिया ही हो तथा आख एव कान न हो तो उन्हे तेइन्द्रिय कहा जाता है, जैसे

चीटी, मकौडा आदि। जिन जीवो के केवल स्पर्शन, रसना घ्राण तथा चक्षु यह चार इन्द्रिया ही हों तथा कान न हो उनको चौइन्द्रिय कहा जाता है, जैसे मक्खिया, भौरा, बर्र, तितली आदि। किन्तु जिन जीवो के पाचो इन्द्रिया हो उन्हे पञ्चेन्द्रिय जीव कहा जाता है। सयमी पुरुष को इन छहो काय के जीवो की रक्षा करके अपने परलोक को सुधारना चाहिये।

इन्द्रभूति—भगवन् ! परलोक को किस प्रकार सुधारा जा सकता है ?

भगवान्—इसके लिये सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नत्रय को धारण करना चाहिये। अन्य धर्मों में इनको व्यावहारिक दृष्टि से भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग कहा गया है। इनमे से एक-एक का अवलम्बन करने से कभी भी उद्धार नही हो सकता। जिस प्रकार किसी मार्ग पर जाने के लिये प्रथम यह आवश्यक है कि उस मार्ग के ज्ञान के साथ-साथ यह विश्वास हो कि उस मार्ग पर जाने से अमुक स्थान तक निश्चय से पहुचा जा सकता है, उसी प्रकार सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् ज्ञान का होना भी आवश्यक है। फिर जिस प्रकार उस मार्ग पर चलकर ही गतव्य स्थान पर पहुचा जा सकता है उसी प्रकार सम्यक् चारित्र का पालन करना भी आवश्यक है।

इन्द्रभूति—तो भगवन् ! क्या व्रत तथा समितिया सम्यक् चारित्र का अग है।

भगवान्—संसार सागर से पार उतरने के लिये व्रतों का पालन करना आवश्यक है। पालन करने की दृष्टि से चारित्र के दो भेद है—एक सकल चारित्र, दूसरा विकल चारित्र। सकल अर्थात् पूर्ण चारित्र का पालन गृहत्यागी मुनि ही कर सकते है, किन्तु गृहस्थ विकल अथवा एकदेश चारित्र का पालन करते हैं। व्रत पाच है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। साधु को इनका पूर्णतया पालन करना चाहिये, किन्तु गृहस्थ को इनका पालन करने में इतनी छूट दी जाती है कि गृहस्थ को स्थावर जीवो की अहिंसा में ढिलाई करते हुए त्रसजीवो की हिंसा का पूर्ण त्याग करना चाहिये। व्यापार आदि की अनिवार्य आवश्यकता होने पर वह थोडा झूठ बोल सकते हैं। जल तथा मिट्टी के

अतिरिक्त वह बिना दी हुई और कोई वस्तु नही लेते। अपनी स्त्री के अतिरिक्त वह ससार की सभी स्त्रियों को माता तथा बहिन समझते है तथा परिग्रह की वस्तुओं का परिमाण कर लेते है कि मैं इतने समय मे इतनी वस्तुए अमुक परिमाण मे अपने पास रखूंगा, उनसे अधिक न रखूगा। मुनियो के लिये यह पाचो यम अथवा महाव्रत कहलाते है, किन्तु गृहस्थो के लिये यही पञ्च अणुव्रत कहलाते है। मुनियो को पच महाव्रत के अतिरिक्त पाच समितियो तथा तीन गुप्तियो का भी पालन करना चाहिये। पाच समितिया ये है—

ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपण समिति तथा उत्सर्ग समिति। जीवो की रक्षा करते हुए सामने की चार हाथ भूमि को देखकर चलने को ईर्या समिति, हित, मित, प्रिय वचन बोलने को भाषा समिति; दिन मे एक बार ऐसा शुद्ध भोजन लेने को एषणा समिति कहते है जिससे तप की वृद्धि हो, न कि शरीर को रसो से पुष्ट किया जावे। तप के उपकरण कमण्डलु, पीछी आदि तथा ज्ञान के उपकरण शास्त्र आदि को इस प्रकार देखकर रखने तथा उठाने को आदान-निक्षेपण समिति कहते है कि कोई जीव उनके नीचे न आ जावे। निर्जन्तु स्थान देखकर मलमूत्र का त्याग करने को उत्सर्ग समिति कहते है। इन पाचो समितियो का पालन करना प्रत्येक मुनि के लिये आवश्यक है।

मन को वश में करने को मनोगुप्ति, वचन के वश में करने को वचन-गुप्ति तथा काय के वश मे करने को कायगुप्ति कहते हैं। यह तेरह प्रकार का मुनियो का चारित्र है।

इन्द्रभूति—भगवन्! मै ब्राह्मण-विद्यार्थी द्वारा बतलाये हुए श्लोक के अर्थ को तो समझ गया, किन्तु कृपा कर यह बतलाइये कि ईश्वर तथा जीव का परस्पर क्या सम्बन्ध है?

भगवान्—जीव के अतिरिक्त ससार मे नित्य-मुक्त कोई ईश्वर नही है। यह जीव ही रत्नत्रय का पालन करके ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।

इन्द्रभूति—तो भगवन्! इस संसार का स्रष्टा कौन है?

भगवान्—जिस प्रकार इस जीव को कर्मफल-दाता कोई नही है, उसी प्रकार इस सृष्टि का स्रष्टा भी कोई नही है। जिस प्रकार पौद्गलिक कर्मवर्गणाए जीव को स्वयं कर्मफल देती है उसी प्रकार पौद्गलिक नियमो द्वारा अनादि काल से सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय होती रहती है। सृष्टि को उत्पन्न करने अथवा उसमें प्रलय करने वाला कोई ईश्वर या परमात्मा नही है।

इन्द्रभूति—भगवन्! आपने मुझे अमृततत्त्व का उपदेश देकर मेरे अज्ञानान्धकार को नष्ट किया है। अब मै गृहस्थ के बन्धन मे न पडकर अपने आत्मा का कल्याण करूँगा। कृपा कर मुझे दीक्षा दे।

इस पर भगवान् ने गौतम इन्द्रभूति को तुरत दीक्षा दे दी। उनके साथ ही उनके दोनो छोटे भाइयों—अग्निभूति तथा वायुभूति तथा पाँच सौ शिष्यो ने भी दीक्षा ले ली। भगवान् ने दीक्षा देकर तीनो गौतम बन्धुओं को अपना गणधर पद देकर सम्मानित किया। उनके अतिरिक्त भगवान् के आठ गणधर और भी थे। तीनों गौतम गणधरों में से प्रत्येक के गण मे पाँच-पाच सौ मुनि थे।

चौथे गणधर आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्र के थे। उनके गण में भी ५०० मुनि थे,।

पाचवें गणधर सुधर्माचार्य वैशम्पायन गोत्र के थे। उनके आधीन भी ५०० मुनि थे।

छठे गणधर मण्डिकपुत्र अथवा मण्डितपुत्र वशिष्ठ गोत्र के थे। वह २५० श्रमणों को धर्मशिक्षा देते थे।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र कश्यपगोत्री थे। वह २५० मुनियो को शिक्षा देते थे।

आठवें गणधर अकम्पित गौतम गोत्र के तथा नौवें अचलवृत हरितापन गोत्र के थे। यह दोनों ही तीन-तीन सौ श्रमणों को धर्म-ज्ञान अर्पण करते थे।

दसवें गणधर मैत्रेय तथा ग्यारहवें प्रभास काण्डिन्य गोत्र के थे। इन दोनो के संयुक्त प्रबन्ध में ३०० मुनि थे।

इनमें से केवल इन्द्रभूति गौतम तथा सुधर्माचार्य ही भगवान् की निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् जीवित रहे। अवशेष नौ गणधर भगवान् के जीवन काल में ही

मुक्त हो चुके थे। यह सब केवलज्ञानी थे। इस प्रकार इन गणधरों के आधीन ४२०० मुनि थे, किन्तु भगवान् महावीर के संघ में मुनियों की समस्त सख्या १४००० थी।

भगवान् महावीर स्वामी ने मुनि-संघ बनाने के अतिरिक्त महिलाओं क दीक्षित करके उनका भी संघ बनाया था। महिलाओं में सबसे प्रथम दीक्षा लेनेो वाली उनकी गृहस्थ जीवन की मौसेरी बहिन महासती चन्दनबाला थी। जैन साध्वियों को आर्यिका कहा जाता था। महासती चन्दनबाला के संघ में छत्तीस सहस्र आर्यिकाएं थी। वह सभी मुनियों जैसे कठिनव्रतों, संयम और आत्म-समाधि का साधन करती थी। आर्यिकायें केवल एक वस्त्र पहनती थीं।

भगवान् का तीसरा संघ श्रावका का था, जो सबके सब अणुव्रतों के धारक गृहस्थ थे। उनकी संख्या एक लाख थी। इनमें प्रमुख श्रावक सांणास्तक थे हैं।

भगवान् के चौथे संघ में तीन लाख श्राविकाएं थी, जिनमें मुख्य सुल्सा तथा रेवती थी। इस प्रकार भगवान् के चतुर्विध सघ में मुनि, आर्यिकाएं, श्रावक तथा श्राविकाएं थीं। इनके अतिरिक्त भगवान् के भक्त अविरत गृहस्थो की सख्या इन सबसे कई गुनी थी।

केवल ज्ञान होने के पश्चात् भगवान् महावीर ने अपने चतुर्विध संघ सहित स्थान-स्थान पर घूमते हुए धर्म का प्रचार किया। यद्यपि भगवान् ने समस्त उत्तरी भारत का भ्रमण किया, किन्तु दक्षिणी भारत में भी वह कुछ स्थानों पर अवश्य गये। फिर भी उनका विहार विशेष रूप से मगध तथा वैशाली में ही हुआ।

केवल ज्ञान के बाद भगवान् सर्वप्रथम मगध गये और वहां से वैशाली आये थे। फिर आपने श्रावस्ती, वैषष्ठी आदि स्थानों में उपदेश दिया। अपने तीस चतुर्मासों में से भगवान् ने चार वैशाली में, चौदह राजगृह में, छः मिथिला में, दो भद्रिका में, एक अलभीक में, एक पान्थि भूमि में, एक श्रावस्ती में तथा अंतिम पावापुर में पूर्ण किया था। फिर भी उन्होंने समस्त उत्तरी भारत को अपने उपदेश से कृतार्थ किया था।

४५

बिम्बसार द्वारा भगवान् के दर्शन

मध्याह्न होने मे अभी विलम्ब है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपनी राज-सभा मे सिहासन पर विराजमान है। राज-सभा आधीन राजाओ, सामतो, राजकर्मचारियो तथा अन्य व्यक्तियो से ठसाठस भरी हुई है। राजा श्रेणिक के ऊपर ढुरते हुए चमरो से निकलने वाली ज्योति सभासदो के नेत्रों मे बिजली के जैसी चमक यदा-कदा उत्पन्न कर रही है। सम्राट् के सिर पर चन्द्रमण्डल के समान श्वेत छत्र शोभायमान हो रहा है। बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे है कि वनमाली ने प्रवेश करके उनके सन्मुख अनेक प्रकार के फलो तथा फूलो की डलिया रखकर निवेदन किया —

"राजराजेश्वर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"क्यों माली! आज असमय क्यो आए? तुम्हारी डलिया मे आज सब ऋतुओ के फल-फूल क्यो दिखलाई देते है।"

राजा के इन वचनो को सुनकर माली एक बार तो कुछ सोचकर आनन्द गद्गद् हो गया। किन्तु दूसरे ही क्षण कुछ सम्भल कर बोला—

"देव! विपुलाचल पर्वत पर तीन लोक के नाथ भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण आया हुआ है। उनके आगमन के प्रभाव से वहां सभी ऋतुओ के फल तथा फूल खिल गए है। जनता में स्वयमेव धार्मिक भावना जागृत हो रही है। देवता उन भगवान् की सेवा कर रहे है। वृक्षो से अपने आप ही पुष्प झड रहे है। सब दिशाएं निर्मल हो गई है। आकाश भी मेघ-रहित होकर स्वच्छ दिखलाई दे रहा है। पृथ्वी धूलरहित हो गई है। शीतल, मन्द तथा सुगन्ध पवन चल रही है। भगवान् के मुख से सभी जीवों का कल्याण करने वाली दिव्य ध्वनि निकल रही है। राजन् उनके विराजने का प्रभाव ऐसा पड़ा है कि जिन लोगो में आपस मे जन्म से ही वैरभाव था ऐसे विरोधी पशु-

पक्षियों ने भी वैरभाव त्याग दिया है। सिह, मृग आदि शान्ति से एक दूसरे के पास बैठे हुए है। हथिनी सिह के बालक को दूध पिला रही है। मृगो के बच्चे सिहिनी को माता बुद्धि से देख रहे है। सर्पों के फरणो पर मेढक इस प्रकार नि शक बैठे है, जिस प्रकार श्रात पथिक वृक्षो की छाया में आश्रय लेते है। जिन लोगों का इस जन्म मे ही किसी कारणवश वैर हो गया था, वे भी अपने वैर-भाव को छोडकर शान्ति से बैठे हुए है। राजराजेश्वर ! उन भगवान् के आगमन से प्रकृति को भी ऐसा भारी आनन्द हुआ है कि वृक्षों में सभी ऋतु के फल, फूल तथा पत्ते आ गए है। इसीलिये मैं उनको अपनी डाली में सजा कर देव के सन्मुख ला सका हूँ। खेतो मे स्वादिष्ट धान पक रहे है। प्रजा के सुख के लिये वन मे सब प्रकार की सर्वरोगनाशक तथा पौष्टिक बूटियां उत्पन्न हो रही है। हे महाराज ! श्री महावीर जिनेन्द्र के पधारने से एक साथ इतने चमत्कार हो रहे है कि उनका वर्णन वाणी द्वारा नही किया जा सकता। मैं राजसेवक हूँ। मेरा कर्तव्य महाराज को सम्वाद देना था। अब आप जैसा उचित समझे करे।"

वनमाली के इन शब्दो को सुनकर राजा श्रेणिक को बडा आनन्द हुआ। प्रेम से उनके नेत्रो मे जल आ गया तथा रोमाच खडे हो गए। उन्होंने प्रथम अपने गले से बहूमूल्य रत्नजटित कण्ठा उतार कर माली को देते हुए कहा—

"माली ! इस शुभ सवाद को सुनाने के लिये हम तुमको यह पारितोषिक देते है।"

माली ने कण्ठे को लेकर प्रथम हाथ जोडकर सिर से लगाया और फिर अपने गले म उसे धारण कर लिया।

राजा श्रेणिक इस सवाद को सुनकर तत्काल अपने राजसिहासन से उतर पडे। उन्होने विपुलाचल पर्वत की दिशा मे सात पग जाकर भगवान् महावीर स्वामी को वहीं से तीन बार नमस्कार किया। इसके पश्चात् उन्होने अपने सिहासन पर फिर बैठकर यह आज्ञा दी—

"नगर मे घोषणा कर दी जावे कि उन चौबीसवे तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया हुआ है। राजा तथा रानी उनके दर्शनो को जा रहे है। जिसकी इच्छा हो उनके साथ चलकर भगवान् के दर्शन करके उनका उपदेश सुने।"

यह कहकर राजा ने सभा विसर्जित करके भगवान् के दर्शनो के लिये जाने की तैयारी आरम्भ की। राजा ने जो महल मे जाकर रानी चेलना को यह सम्वाद सुनाया तो वह हर्ष के उद्रेक से एकदम प्रसन्न हो गई। उसने समस्त रनवास सहित भगवान् के दर्शन के लिये जाने की एकदम तैयारी की। राजा का रथ द्वार पर खडा हुआ था। साथ मे जाने वाले प्रजावर्ग की भीड प्रतिक्षण बढती जाती थी। जिस समय राजा अपने रथ पर बैठकर रानियो की पालकियों के साथ आगे बढे तो जनता प्रसन्न होकर जय-जयकार करने लगी। राजगृह मे उस समय भगवान् के दर्शनो के लिये जाने का एक आन्दोलन जैसा मच गया। सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शन के लिये राजा श्रेणिक के साथ चले जा रहे थे।

जिस समय राजा श्रेणिक ने भगवान् के समवशरण को दूर से देखा तो वह अपने रथ से उतर पडे। रानिया भी अपनी-अपनी पालकियो से उतर कर पैदल ही समवशरण के अन्दर चली। राजा श्रेणिक अपनी समस्त सेना तथा पुर-वासियो को साथ लिये हुए भगवान् के दर्शनो को आए।

समवशरण की शोभा को देखकर राजा एकदम आश्चर्य में भर गये। उन्होने श्रीमण्डप मे पहुच कर प्रथम धर्मचक्र की प्रदक्षिणा की। फिर उन्होने पीठ की पूजा करके गधकुटी के मध्य मे सिंहासन पर विराजमान श्री जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन किये। राजा श्रेणिक ने अपनी रानियो सहित भगवान् की गंधकुटी की तीन प्रदक्षिणाए की। फिर उन्होने बड़े भक्तिभाव से भगवान् का पूजन किया। पूजन करके वह बड़े प्रेम से भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने लगे—

"भगवन् ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। आप दिव्यवाणी के स्वामी हैं तथा कामदेव को जीतने वाले हैं। आप पूजने योग्य हैं, धर्म की ध्वजा है तथा धर्म के पति हैं। आप कर्मरूपी शत्रुओं का क्षय करने वाले है। आप जगत् के पालक हैं। आपका उपदेश सुनने के लिये समस्त देवता लालायित होकर आपके पास आये हुए हैं। आप में शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चारित्र, क्षायिक सम्यक् दर्शन तथा अनन्त दान आदि लब्धियाँ हैं। आपके शरीर में से उज्ज्वल ज्योति निकल रही है, मानो आपका पुण्य आपका अभिषेक कर रहा है। आपकी दिव्य ध्वनि जगत् के प्राणियो के मन को पवित्र करती है। आपके ज्ञान-सूर्य का प्रकाश मोहरूपी अधकार को दूर करता है।

"श्री जिनेन्द्र ! आपका ज्ञान अनन्त, अनुपम तथा भ्रमरहित है। आप इस समस्त विश्व को जानते हुए भी खेद का अनुभव नही करते। यह आपके अनन्त वीर्य की ही महिमा है। आपके भावो मे राग आदि की कलुषता नहीं है। आप क्षायिक चारित्र से सुशोभित हैं। स्वाधीन आत्मा से उत्पन्न अतीन्द्रिय पूर्ण सुख का आप उपभोग करते है। आप अनन्त गुणो के धारक हैं। आज भारत मे वेदों के नाम से यज्ञ मे असंख्य पशुओं का वध किया जा रहा है। वे समस्त जीव आज अपनी रक्षा के लिये आपके कृपा-कटाक्ष-कोर की ओर आशा-भरी दृष्टि से देख रहे हैं।

"भगवन् ! मै अत्यन्त अल्पज्ञानी तथा आचरणहीन हूँ। आप अपने निर्मल उपदेश से मेरी बुद्धि को धर्म-कार्य में लगावें, जिससे मैं सदा उत्तमोत्तम धार्मिक कार्य करता हुआ अपने परलोक को सुधार सकूँ।"

भगवान् महावीर की इस प्रकार स्तुति करके राजा श्रेणिक अत्यन्त विनयपूर्वक मनुष्यो के बैठने के कोठे मे जाकर बैठ गये। इसके पश्चात् राजा श्रेणिक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने दोनो हाथ जोड़कर एवं भक्ति से मस्तक झुका कर भगवान् से निवेदन किया—

'हे भगवन् सर्वज्ञ देव ! मैं जानना चाहता हूँ कि धर्म का स्वरूप क्या है ? धर्म का मार्ग क्या है ? तथा उसका कैसा फल है।"

राजा श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर भगवान् अपनी दिव्य ध्वनि मे बोले—

"राजन् ! सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रय मार्ग की एकत्र पूर्णता ही मोक्ष का मार्ग है। तत्त्वो के अर्थ मे श्रद्धान रखना सम्यक् दर्शन है। जीव, अजीव, आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष यह सात तत्त्व है। पुण्य और पाप का आश्रव तथा बध मे अतर्भाव किया जाता है, इसलिये उनकी गणना तत्त्वो मे नही की जाती। जीव का स्वरूप ज्ञानदर्शनमय है। उसमें इन दोनो की पराकाष्ठा होनी चाहिये। ज्ञान की पराकाष्ठा ही सम्यक् ज्ञान है। यह ससार छ. द्रव्यो से बना हुआ है। जिसमे गुण तथा पर्याय हों उसको द्रव्य कहते है। जीव गुण-पर्यायधारी है। इसलिये द्रव्य का लक्षण रखने से द्रव्य है। पुद्गल के भी गुण तथा पर्याय होते है। इसलिये उसे भी द्रव्य कहते है। धर्म, अधर्म तथा काल भी द्रव्य है। ये पाँचो अपने प्रदेशों की बहुलता के कारण अस्तिकाय कहलाते है। काल भी अपने गुण-पर्यायो के कारण द्रव्य है। किन्तु उसके प्रदेश पृथक्-पृथक् होने के कारण वह अस्तिकाय नहीं है। आकाश के जितने भाग को पुद्गल का एक अविभागी परमाणु घेरता है, उसे प्रदेश कहते है। इस माप से मापने पर काल द्रव्य के अतिरिक्त अन्य पाँचो द्रव्यों को बहुप्रदेशीय कहा जाता है। इन जीव आदि सातो तत्त्वो के यथाथ स्वरूप पर श्रद्धान करना सम्यक् दर्शन है। उनको वैसे का वैसा ही जानना सम्यक् ज्ञान है। कर्मों के बन्धन के कारण आत्मा मे उत्पन्न होने वाले भावों का जिससे निरोध हो वह सम्यक् चारित्र है। इन तीनों की एकता से कर्मों का नाश होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये इसे रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग कहा जाता है।

"यह जीव सदा से सत् है। यह अनादि, अनन्त, नित्य, स्वत.सिद्ध अमूर्तिक तथा स्वदेहपरिमाण वाला है। यह अपने वास्तविक रूप म पुद्गल सम्बन्धी शरीरो से रहित है, तो भी यह अनादि काल से कर्मबन्धन में पड़ा हुआ इस ससार में पुनर्जन्म के कष्ट को भोगता रहता है। यह जीव असंख्यात प्रदेशों वाला तथा अनन्त गुणों का धारी है। पर्याय की अपेक्षा जीव म उत्पादन

तथा व्यय प्रतिक्षण होता रहता है। जीव का विशेष लक्षण चेतना है। यह ज्ञाता, द्रष्टा, कर्ता तथा भोक्ता है। शुद्ध निश्चय-नय से यह अपने शुभ भावो का कर्ता तथा भोक्ता है। अशुद्ध निश्चय-नय से यह राग-द्वेष आदि भावो का कर्ता तथा भोक्ता है और व्यवहार-नय से यह समस्त संसारी कार्यों का कर्ता तथा उनके फल का भोक्ता है। यह जीवात्मा न तो व्यापक है और न परिच्छिन्न ही है, वरन् यह अपने शरीर के परिमाण वाला है। यह अपने संकोच-विस्तार-रूप स्वभाव के कारण दीपक के प्रकाश के समान हाथी के शरीर में उतने बडे आकार का हो जाता है, किन्तु चीटी के शरीर में इतने छोटे आकार का बन जाता है। मोक्ष होने पर इसका आकार अपने अंतिम शरीर से कुछ ही कम प्राय उसके बराबर रहता है।

"इस जीव को प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान्, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानी आदि नामों से पुकारा जाता है। वह संसार के जन्मो में जीता है, जीता था और जीवेगा इसलिये इसे जीव कहा जाता है। ससार से छूटकर मोक्ष होने पर भी यह सदा जीता रहता है। तब उसको सिद्ध कहते हैं।"

"जो इस जीव का घात करते है वे बडे भारी पापी है। जीव का घात किसी भी अवस्था में किसी भी बहाने से नही करना चाहिये। कुछ लोगो का कहना है, यज्ञ में मारे हुए जीव सीधे स्वर्ग को जाते है। उनको चाहिये कि प्रथम वह अपने माता-पिता को मारकर उनको ही स्वर्ग पहुंचावें। संसार में 'जीवघाती महापापी' इस लोकोक्ति का घर-घर प्रचार किया जाना चाहिये। आज देश में वेदो के नाम पर जो असंख्य जीवो का यज्ञ में वध किया जा रहा है, उसका कारण धर्म न होकर उन पुरोहितों की मास खाने की अभिलाषा है। इनका यह कहना कि यज्ञ के मांस को न खाने वाला नरक में जाता है उनकी मास-भक्षण का प्रचार करने की भावना को प्रकट करता है। संसार में मद्य, मास तथा मधु से अधिक अपवित्र खाद्य पदार्थ और नहीं है। इनके अतिरिक्त बड़, पीपल पाकर, गूलर तथा अंजीर इन पांच उदुम्बर फलो का भी भक्षण नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनमें इतनी अधिक मात्रा में जीव होते है कि उनको नेत्रो

अष्ट देखा जाता है। जो व्यक्ति इन आठो वस्तुओं का त्याग करता है वह अष्ट-मूल गुण का धारक कहलाता है। व्यक्ति को चाहिये कि वह पञ्च महाव्रत, पंच समिति तथा तीन गुप्तियो का पालन करने की अपनी क्षमता बढ़ा कर मुनिव्रत ले ले। किन्तु यदि वह अपनी सामर्थ्य इतनी न समझे तो उसे पंच अणुव्रतो का धारण करके श्रावक के व्रत ले लेने चाहियें। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि मुनिव्रत ग्रहण करके तप किये विना मुक्ति कदापि नही हो सकती।"

यह कहकर भगवान् चुप हो गये। भगवान् के इस उपदेश को सुनकर अनेक व्यक्तियो ने मुनि-दीक्षा ली, अनेक ने श्रावक के व्रत लिये तथा अनेक ने कोई व्रत न लेकर उनके सिद्धान्त पर केवल श्रद्धान ही किया। राजा श्रेणिक भी भगवान् के उपदेश को सुनकर अत्यत प्रसन्न हुए। वे उपदेश सुनकर अपनी रानियों सहित भगवान् की फिर वन्दना करके भगवान् से अनेक प्रश्नो का समाधान करने लगे।

राजा श्रेणिक के साथ उनके पुत्रों ने भी भगवान् से अनेक प्रश्न पूछकर अपना शका-समाधान किया। उनके उपदेश को सुनकर राजा श्रेणिक अपनी रानियो तथा पुत्रों सहित अपने घर आये।

राजा श्रेणिक सवारी से उतर कर घर मे बैठे ही थे कि उनके पुत्र अभय-कुमार, वारिषेण तथा गजकुमार उनके पास आये। राजा ने उनकी उत्सुक मुद्रा देखकर उनसे पूछा—

"क्यो बेटा ! क्या कुछ कहना है ?"

इस पर अभयकुमार बोला—"हां, पिताजी ! यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ निवेदन तो करना है।"

तब राजा बोले—"तुम्हें जो कुछ कहना हो तुम प्रसन्नता से कहो बेटा ?"

तब अभयकुमार बोले—"पिताजी ! भगवान् महावीर के वचनो से मेरी आंखें खुल गई हैं। अब मुझे संसार के भोग काले सर्प के समान दिखलाई देते

है। कृपा करके मुझे अनुमति दें कि मैं भगवान् महावीर स्वामी के पास शीघ्र ही मुनि-दीक्षा ग्रहण कर लूं।"

अभयकुमार, वारिषेण तथा गजकुमार की जिन-दीक्षा की प्रार्थना सुनकर राजा एकदम चक्कर में पड गये। उनको यह नही सूझा कि उनको क्या उत्तर दें। तब तक महारानी नन्दश्री ने आकर महाराज से निवेदन किया—

"महाराज! भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनकर मैं बौद्ध अवश्य बन गई थी, किन्तु उससे मेरे आत्मा की तृप्ति नही हुई थी। किन्तु आज भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश सुनकर मेरा अन्तरात्मा तृप्त हो गया। अब तो मुझको भी ससार से भय लग रहा है। कृपा कर मुझे भी महासती चन्दनबाला के चरणो मे बैठकर दीक्षा लेने की अनुमति दें।"

नन्दश्री के इन वचनो को सुनकर महारानी चेलना बोलीं—

"बहिन नन्दश्री! तू धन्य है। तूने अपने पिता, पितामह आदि अनेक पीढियो के नाम को उज्ज्वल कर दिया। मैं आजतक जैनी बनी हुई भी अभी तक दीक्षा लेने को तैयार नही हो पाई, किन्तु तू आज तक बौद्ध बनी हुई भी एकदम दीक्षा लेने को तैयार हो गई।

इसके बाद रानी चेलना अभयकुमार आदि तीनों राजकुमारों से बोली—

'बेटा, अभी तो तुम्हारा बचपन है। दीक्षा तो बड़ी आयु में ली जाती है। तुमको अभी से क्या जल्दी है। फिर बेटा अभयकुमार! तुम्हारे बिना तो महाराज को राजकाज चलाना भी कठिन हो जावेगा।"

इस पर अभयकुमार ने उत्तर दिया—

"माता! संयम ग्रहण करने के लिये क्या बचपन तथा क्या बुढ़ापा। जब सासारिक भोगों से घृणा हो ही गई तो माता, अब हम लोगो से घर में न रहा जावेगा। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरी माता भी अपने तीनो पुत्रो का साथ देंगी। पिता जी! अब आप हम लोगो को दीक्षा लेने की अनुमति देकर हमको अपने आत्मा का कल्याण करने दें।"

इस पर राजा श्रेणिक का हृदय भर आया और वह गद्गद् कठ से कहने लगे—

"मेरी स्थिति इस समय बडी विचित्र है। कर्तव्य कहता है कि मै आप की प्रार्थना को स्वीकार कर लूँ, किन्तु मोह कहता है कि मै तुमको अपने नेत्रो की ओट न होने दूँ।"

फिर उन्होने नन्दश्री की ओर देखकर कहा—

"सुन्दरि ! तुमने मेरा निर्वासन अवस्था से साथ दिया है। सुख और दुःख में मेरा साथ जितना तुमने दिया है, उतना और किसी ने नही दिया। तुमको तो मेरा साथ जन्म भर निबाहना चाहिये।"

इस पर नन्दश्री ने उत्तर दिया—

"राजन् ! इस ससार मे किसने किसका साथ दिया है। यह जीव ससार मे अकेला ही आता है और इसको अकेले ही इस संसार को छोडना पडता है। इस क्षणिक जीवन में जो जीवो को एक दूसरे का साथ देते हुए देखा जाता है, वह तो नदी-नाव सयोग है। आप ज्ञानी, ध्यानी तथा धैर्यवान् है। आपको इस प्रकार अपने धैर्य को नही छोडना चाहिये। अब आप अपने कर्तव्य का स्मरण करके हम चारो को जिन-दीक्षा लेने की अनुमति सहर्ष प्रदान करे।"

इस पर राजा श्रेणिक ने कुछ देर मौन रहकर कहा—

"अच्छा, यदि आप लोगो का ऐसा ही विचार है तो मैं भी आपके शुभ कार्य में बाधा डालना नही चाहता।"

राजा श्रेणिक के यह वचन सुनकर तीनो राजकुमारो तथा महारानी नन्दश्री को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। इन लोगो के दीक्षा लेने का समाचार सुनकर जनता सहस्रो की संख्या में राजमहल के द्वार पर एकत्रित हो गई थी। जब यह चारों राजमहल के बाहिर आये तो जनता ने उनका सारे नगर में बडा भारी जुलूस निकाला। इसके पश्चात् जनता ने उस जुलूस को भगवान् के समवशरण पर जाकर समाप्त किया। जुलूस से छुट्टी पाकर अभयकुमार, वारिषेण तथा गजकुमार ने गौतम स्वामी के पास जाकर तथा महारानी नन्दश्री ने महासती चन्दनबाला के पास जाकर जिन-दीक्षा ग्रहण की।

४६

केरल यात्रा

मध्याह्न का समय है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपनी राजसभा में बैठे हुए हैं कि दौवारिक ने आकर कहा--

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"क्या है द्वारपाल ?

"देव ! व्योमगति नामक एक विद्याधर दक्षिण के केरल देश का निवासी द्वार पर खड़ा हुआ है। वह देव के दर्शन करना चाहता है।"

'उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अन्दर भेज दो।"

यह सुनकर द्वारपाल वापिस चला गया। इसके थोडी ही देर बाद एक अधेड़ आयु के व्यक्ति ने सभा में प्रवेश किया। इसका मुख का वर्ण अत्यन्त गौर था और उसमें से तेज निकल रहा था। उसके शरीर पर अत्यन्त बहुमूल्य राजसी वस्त्र थे। उसके सिर पर मुकुट तथा कानो में कुण्डल थे। उसने आते ही कहा—

"राजराजेश्वर सम्रा् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

इस पर राजा बोले—

"आप इस सिंहासन पर विराजिये। आपका कहा से आना हुआ ?"

सम्राट् के यह कहने पर वह व्यक्ति अपने निर्दिष्ट सिंहासन पर बैठकर बोला-

"राजन् ! मलयाचल पर्वत के दक्षिण भाग में समुद्र के किनारे केरल नामक एक नगर है। उस नगर का राजा मृगाक विद्याधर अत्यन्त धार्मिक तथा गुणवान् है। उसकी स्त्री का नाम मालतीलता है, जो अत्यधिक शीलवती, गुणवती तथा स्वर्ण के समान कान्ति वाली है। मै उस महारानी मालतीलता का भाई हूं। मेरा नाम व्योमगति विद्याधर है। मैं केरल नगर के समीप ही

सहस्रशृंग नामक पर्वत पर रहता हूँ। राजा मृगांक तथा रानी मालतीलता के एक पुत्री है, जिसका नाम विलासवती है। राजकुमारी विलासवती अत्यंत रूपवती तथा सुन्दरी है। उसके नेत्र कानों तक विशाल हैं। इसलिये उसको विशालवती भी कहा जाता है। उसके शरीर की कान्ति चम्पा के पुष्प के समान है। मुझे बतलाया गया है कि राजा मृगांक उस कन्या का वाग्दान आपके साथ कर चुके हैं और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आप सेना-सहित केरल देश की यात्रा करके उस कन्या का पाणिग्रहण करें।

"हम लोग आपके केरल पधारने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि हम पर एक आपत्ति आगई। केरल देश के दक्षिण में हंस द्वीप है, जिसे सिंहल द्वीप भी कहते हैं। वहां का राजा रत्नचूल विद्याधर है। वह अत्यंत पराक्रमी तथा तपस्वी है। उसने विलासवती के सौन्दर्य का समाचार सुनकर राजा मृगांक के पास संदेश भेजा कि राजकुमारी विलासवती का विवाह उसके साथ कर दिया जावे। किन्तु राजा मृगांक उस कन्या का विवाह आपके ही साथ करना चाहते हैं, इसलिये उन्होंने रत्नचूल के प्रस्ताव को स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। रत्नचूल ने इस बात से अपना अपमान समझा। वह राजा मृगांक के उत्तर से अत्यंत क्रोध में भर गया। अब उसने अपनी सम्पूर्ण सेना लेकर राजा मृगांक के राज्य पर चढाई कर दी है। राजा मृगांक ने उसकी सेना को अपने से अधिक प्रबल देखकर अपने दुर्ग का आश्रय ले लिया है। इस प्रकार राजा मृगांक दुर्ग में बैठा हुआ अपनी रक्षा कर रहा है और रत्नचूल उसके नगर को नष्ट कर रहा है। उस पापी ने अनेक मकानों को तोडकर भूमि से मिला दिया है। आजकल वह धन-धान्य से पूर्ण अनेक ग्रामों तथा नगरों से शोभित उस ऐश्वर्यवान् देश को उजाड़ रहा है। उसने अनेक वनो तक को उखाड़ डाला और किलों को तोड दिया है। इस समय राजा रत्नचूल केरल देश का विनाश कर रहा है और राजा मृगांक भय से पीडित होकर अपने दुर्ग के भीतर ठहरा हुआ किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर रहा है। वैसे राजा मृगांक युद्ध में [illegible] है। रत्नचूल पर आक्रमण करने का वह अवसर देख रहा है और

आजकल में अपनी शक्ति के अनुसार युद्ध भी करेगा। हम लोग आकाशचारी हैं। मैं अपने विमान पर बैठ कर आपको यह समाचार देने शीघ्रतापूर्वक आ पहुँचा। अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें।

"हे राजन् क्षत्रिय का धर्म है कि वह प्राणों का संकट आने पर भी युद्ध-क्षेत्र में अड़ा रहे और पीठ न दिखावे। महान् पुरुषो का धन प्राण नहीं, वरन् मान है। मान नही रहा तो यश कैसे हो सकता है। जो व्यक्ति शत्रु के पूर्ण बल को देखकर बिना युद्ध किये शस्त्र डाल देता है अथवा युद्ध-स्थल से भाग जाता है उसके यश में कालिमा लग जाती है। जो पुरुष धैर्य धारण कर युद्ध करके मर जाते हैं, किन्तु पीठ नहीं दिखलाते वे ही यशस्वी वीर पुरुष धन्य ह।

"हे राजन्! मै आपको केवल यह समाचार देने आया था। अब मुझे वापिस जाने की अनुमति दीजिये, क्योंकि मुझे आज ही वहां वापिस पहुँचना है। अपने शीघ्रगामी विमान के द्वारा मैं वहां आज ही पहुँच जाऊँगा। अपने बहनोई की इस आपत्ति के समय मुझे उनके पास शीघ्र ही पहुँच जाना चाहिये।"

यह कहकर जब वह विद्याधर अपने आसन से उठने लगा तो प्रधान सेनापति जम्बूकुमार उससे कहने लगे—

"हे विद्याधर! क्षण भर ठहरो। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार बड़े पराक्रमी हैं। वह सब शत्रुओं को जीत चुके हैं। उनके पास हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों की चार प्रकार की सेना है। यह सम्राट् महावीर, बुद्धिमान्, राज्य के सातों अंगों से पूर्ण, तेजस्वी तथा यशस्वी है। उनकी माग के ऊपर दृष्टि करके राजा रत्नचूल कुशलपूर्वक नही रह सकता।"

कुमार जम्बू स्वामी के इस प्रकार के वीरतापूर्ण वचन सुनकर व्योमगति विद्याधर को भारी आश्चर्य हुआ। वह कहने लगा—

"हे बालक! तूने जो कुछ कहा है, वह क्षत्रियों के योग्य ही कहा है। परन्तु यह कार्य असम्भव है। केरल देश यहां से सैकड़ो योजन दूर सुदूर दक्षिण

में है। मगध की सेना को वहा पहुँचते-पहुँचते भी महीनो लग जावेगे, तब तक युद्ध को किसी प्रकार टाला जा सकता है ?"

विद्याधर के यह वचन सुनकर जम्बूकुमार बोले—

"हे विद्याधर ! आपकी बातें ठीक है। आपकी यह बात भी ठीक है कि हमारे पास सैनिक विमान नही है। किन्तु आपको हमारा बल जाने बिना उठकर एक दम नही चले जाना चाहिये। आप थोड़ी देर ठहर कर जरा हमको सोच लेने का अवसर दें।"

यह सुनकर व्योमगति बोला—

"अच्छा कुमार, आप क्षण-एक विचार कर लें, मै ठहरा हुआ हूँ।"

व्योमगति के यह कहने पर जम्बूकुमार ने सम्राट् से कहा—

"हे स्वामी ! मेरी समझ में तो यह काम उतना कठिन नही है, जितना उसको आर्य व्योमगति ने बतलाया है। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं इस विषय में अपना विचार आपके सम्मुख उपस्थित करूँ।"

तब सम्राट् बोले—

"तुम अवश्य कहो कुमार ! हम तुम्हारा विचार जानने को उत्सुक है।"

इस पर जम्बूकुमार बोले—

"मेरे विचार से तो मुझे अकेले ही प्रथम आर्य व्योमगति के साथ उनके विमान पर बैठ कर केरल चला जाना चाहिये और पीछे से सम्राट् अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर यथाशक्ति शीघ्र केरल यात्रा के लिये प्रस्थान करें।"

सम्राट्—किन्तु तुम अकेले वहां क्या करोगे कुमार ?

फिर सम्राट् ने वर्षकार की ओर देखकर उससे पूछा—

"क्यों वर्षकार जी ! इस विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

इस पर वर्षकार ने उत्तर दिया—

"देव ! जम्बूकुमार के कथन में मुझे तो कोई बाधा दिखलाई नही देती। वह बल, विद्या और बुद्धि तीनो से भरपूर हैं। जिस प्रकार अङ्गद तथा हनुमान् ने रावण की सेना अकेले ही जाकर प्रलय मचा दी थी, इसी प्रकार

यह भी अकेले अपने ही बल से रत्नचूल को नीचा दिखलाने की क्षमता रखते है। किन्तु उनके बाद सम्राट् भी तत्काल ही सेना लेकर केरल चले जावें।"

तब सम्राट् बोले—

"अच्छा तो ऐसा ही होवे। जम्बूकुमार! तुम इन विद्याधर महोदय के साथ विमान पर अभी जा सकते हो। तुम एक क्षण के लिये घर जाकर अपने माता-पिता को सूचना दे आओ और अपने उपयोग के अस्त्र-शस्त्र भी अपने साथ ले लो और तुम वर्षकार जी, हमारी सेनाओ को यात्रा के लिये तुरत तैयार होने की हमारी आज्ञा प्रसारित करा दो।"

सम्राट् के यह कहने पर जम्बूकुमार वहा से उठकर तैयार खडे हुए अपने रथ पर बैठ कर अपने घर आये। यहा उन्होंने अपने माता-पिता को अपनी केरल-यात्रा का वृत्तान्त सुना कर अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र अपने शरीर पर बाधे। फिर वह उसी रथ पर बैठकर राजसभा मे आकर व्योमगति वद्याधर के विमान पर बैठकर केरल चले गये।

उनके जाने के बाद राजा श्रेणिक बिम्बसार भी अपनी चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर केरल देश की यात्रा पर चले।

४७

सिंहल-नरेश से युद्ध

कुमार जम्बूस्वामी विमान पर बैठे हुए आकाश के मार्ग से चले जाते थे और मार्ग के खेत, वन, पर्वत तथा अनेक देश शीघ्रतापूर्वक उनके नीचे भागते हुए दिखलाई देते थे। व्योमगति का विमान पवन के समान शीघ्रता से उड रहा था और जम्बूस्वामी तथा व्योमगति दोनों आकाश की शोभा देख रहे थे। विमान दोपहर पीछे उसी दिन केरल जा पहुचा।

जिस समय ये लोग वहां पहुचे तो नगर मे सेना का शब्द हो रहा था। यह देखकर जम्बूस्वामी बोले—

"यह कोलाहल कैसा है आर्य ?"

इस पर व्योमगति ने उत्तर दिया—

"इस स्थान पर आपके शत्रु राजा रत्नचूल की सेना का शिविर है। यह उसी सेना का शब्द है। उसकी सेना बड़ी प्रचण्ड है, जिसमे अनेक विद्याधर भी है। उसको जीतना सुगम नही है।"

यह सुनकर कुमार बोले—

"आप विमान को यहां ठहराइये। मै तनिक रत्नचूल से स्वय मिलना चाहता हूं।"

कुमार के यह कहने पर व्योमगति ने विमान को वही भूमि पर उतार दिया। जम्बूकुमार को भूमि पर उतार कर व्योमगति फिर विमान को आकाश में ले गया। इधर जम्बूकुमार विमान से उतर कर निर्भय होकर शत्रु-सेना की ओर चले और उसमें प्रवेश कर कौतुक से उसे देखने लगे। सेना के योद्धा कामदेव के समान सुन्दर कुमार को देखकर आश्चर्य करने लगे कि यह कौन है। किन्तु उनको कुमार से बात करने का साहस न हुआ। कुमार उनके बीच

से निकलते हुए सीधे राजद्वार पर पहुंचे । आपने वहां जाकर द्वारपाल से कहा—

"तू भीतर जाकर राजा से मेरा सदेश कह कि मै दूत हू और मुझे राजा मृगाक ने भेजा है। मै राजा रत्नचूल से कुछ समझौते की बातचीत करना चाहता हू।"

द्वारपाल उनका यह वचन सुनकर अन्दर गया और राजा की अनुमति लेकर जम्बूकुमार को अन्दर ले गया। जम्बूकुमार अपनी काति से अपने चारों ओर तेज फैलाते हुए निर्भय होकर राजा रत्नचूल के पास गये। वह उसको नमस्कार किये बिना ही उसके सामने जाकर खडे हो गये। उनको देखकर राजा रत्नचूल भी आश्चर्य करने लगा कि यह कैसा दूत है जो नमस्कार करना भी नही जानता और मुख से कुछ भी न बोलकर खम्भे के समान सामने खडा है। तब राजा रत्नचूल ने कुमार से पूछा—

"आप किस देश से आये है ? मेरे पास आपका क्या काम है ?"

इस पर कुमार ने उत्तर दिया—

"मै नीति-मार्ग का आश्रय लेकर आपको समझाने आया हू कि आप केरल देश से अपना घेरा उठा लो और इस हठ को छोड दो। विलासवती का वाग्दान हो चुका है। वह दूसरे व्यक्ति को मन से स्वीकार कर चुकी है। अतएव आपको उसे प्राप्त करने का हठ नहीं करना चाहिये। इस दुराग्रह से आपको इस लोक तथा परलोक दोनो ही जगह दु:ख प्राप्त होगा। इसमें आपको अपकीर्ति मिलेगी। जगत् मे स्थान-स्थान पर सैंहस्रो स्त्रियां हैं। आपको इसी कन्या को प्राप्त करने का हठ क्यो है, यह हमारी समझ में नहीं आया। यदि आपको अपनी सेना के बल का अभिमान है तो यह आपकी भूल है। संसार में कोई भी व्यक्ति सब से बड़ा बलवान् नही है। यहां एक से बढकर अनेक व्यक्ति बलवान् मिलेगे। जब राजा मृगाक अपनी कन्या को सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को देने का वचन दे चुके है तो वह आपको कैसे दी जा सकती है ? उससे उनका अपयश होगा। इसलिये आपको विलासवती को प्राप्त करने का

हठ छोड़कर अपना घेरा उठा लेना चाहिये ।"

कुमार के यह वचन सुनकर राजा रत्नचूल के नेत्र क्रोध से लाल हो गये । वह क्रोध मे भर कर कुमार से बोला—

"हे बालक ! तू मेरे घर मे दूत बन कर आया है। फिर तू बालक भी है, इसलिये मारने योग्य नही है किन्तु तूने जैसे अनुचित वचन कहे है यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसे वचन कहता तो मै उसे तत्काल मरवा देता। तू इस बात को नही जानता कि क्या कहना चाहिये और क्या नही कहना चाहिये। न तू इस बात का विचार करता है कि तू कितने बलशाली के साथ वार्तालाप कर रहा है। तू ढीठता के साथ जो मन मे आया, बक रहा है। जिस प्रकार उलूक मे सूर्य का सामना करने की शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार दुष्ट मृगांक या राजा श्रेणिक दोनो मे से कोई भी युद्ध मे मेरा सामना नही कर सकता । तुझे छोटे मु ह बडी बात नही करनी चाहिये ।"

राजा रत्नचूल के यह वचन सुनकर जम्बूकुमार ने उत्तर दिया—

'हे विद्याधर ! तूने जो कुछ भी घमड के वश मे होकर कहा है वह अपनी तथा दूसरे की शक्ति पर विचार किये बिना ही कहा है। तू अपनी विमान सेना पर घमड करता है, किन्तु स्मरण रख कि काक भी आकाश मे उडता है, किन्तु वह बाण से बिंध कर भूमि पर आ गिरता है।"

जम्बूकुमार के यह वचन सुनकर राजा रत्नचूल क्रोध मे भर कर अपने योद्धाओ से बोला—

"यह बालक बहुत वाचाल तथा कड ुवा बोलने वाला है। आप लोग इसको पकड कर हमारे सामने जान से मार डालो ।"

राजा रत्नचूल के यह वचन सुनकर दो सैनिक जम्बूकुमार को पकड़ने को आगे बढ़े । किन्तु जम्बूकुमार ने उन-दोनो को टाग लगाकर वह पटखनी दी कि दोनो चारों-खाने चित्त होकर धूल फाकने लगे। उन दोनो के गिरते ही एकदम पचास जवान तलवारे हाथ मे लेकर जम्बूकुमार पर झपटे। उनको अपनी ओर आते देखकर जम्बूकुमार फुर्ती से वहा से उछल कर एक

ऊचे टीले पर जा चढे। उन्होने अपने धनुष को उठाकर शीघ्रतापूर्वक ऐसे पैने बाण चलाये कि पचास के पचास सैनिको को बात की बात मे मार दिया। यह दृश्य देखकर राजा रत्नचूल बोला —

"यह बालक देखने मे ही बालक है,- किन्तु युद्धस्थल मे तो यह काल के समान प्रहार करता है। इसलिये आठ सहस्र सैनिको की पूरी सेना इसके ऊपर धावा करे।"

राजा रत्नचूल की यह आज्ञा पाकर आठ सहस्र योद्धा कुन्त आदि शस्त्र हाथ में लेकर जम्बूकुमार को मारने का उद्योग करने लगे। किन्तु कुमार के बाणो की मार के कारण कोई भी उनके पास तक न आ सका।

इस प्रकार एक भीषण युद्ध आरंभ हो गया। एक ओर कुमार जम्बू स्वामी अकेले थे और दूसरी ओर अनेक योद्धा थे। कुमार ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उनमे से अनेक को मार डाला।

व्योमगति विद्याधर ने जो इस प्रकार कुमार को लडते देखा तो उनको विमान पर आ जाने को कहा। किन्तु कुमार ने इस बात पर ध्यान नही दिया और उसी भयकरता से युद्ध करते रहे। इस समय बाण चलाने मे कुमार का हस्त-लाघव देखने योग्य था। वह कब बाण निकालते, कब उसको धनुष पर रखते, कब प्रत्यचा खेचते और कब उसको चलाते थे यह किसी को दिखलाई नही देता था। उस समय जल, स्थल तथा आकाश में सब ओर उन्ही के बाण छाये हुए थे। उनके बाणो से रत्नचूल के योद्धाओ के शरीर के अग ऐसे उड रहे थे, जैसे धुनिये के धनुष के धुनने से रुई उडती है।

उधर कुमार पर योद्धाओ के शस्त्र कोई नही पड पाते थे। उनकी दृष्टि ऐसी पैनी थी कि वह अपनी ओर आने वाले प्रत्येक शस्त्र को दूर से ही देखकर अपने बाणो से उसकेटुकडे २ कर देते थे। उनके अक्षय तूणीर से बाणों की अविरल धारा निकल-निकल कर कम होने का तनिक भी नाम नही लेती थी। कुमार ने ऐसी सावधानी तथा कुशलता से युद्ध किया कि रत्नचूल के योद्धा उनके सामने न ठहर सके। जिस प्रकार एक ही सूर्य सारे अधकार को नाश कर देता है, उसी

प्रकार उस अकेले कुमार ने सारे शत्रु-दल को नष्ट कर दिया।

इसी बीच किसी गुप्तचर ने जाकर राजा मृगाक से कहा-

"हे देव! आपके पुण्य के उदय से कोई महापुरुष आया है, जो शत्रु-सेना को इस प्रकार नष्ट कर रहा है, जिस प्रकार दावानल वन के वृक्षो को नष्ट करता है। वह बडी चतुराई से युद्ध कर रहा है। न जाने वह आपका इस जन्म का कोई मित्र है, अथवा पूर्वजन्म का कोई बन्धु है, या राजा श्रेणिक ने किसी वीर योद्धा को आपकी सहायता के लिये भेजा है।"

राजा मृगाक इस समाचार को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके शरीर में आनन्द के मारे रोमाच हो आया। अब राजा मृगाक भी अपनी समस्त सेना को तैयार करके युद्ध के लिये अपने दुर्ग से बाहिर निकला। उसकी सेना के बाजो की ध्वनि सुनकर रत्नचूल भी सावधान हो गया। वह क्रोधाग्नि से जलता हुआ युद्ध करने के लिये राजा मृगाक के सामने आया। इस प्रकार दोनो ओर की सेनाओ मे भयकर युद्ध होने लगा। अब तो हाथियो से हाथी, घोडो से घोडे, रथो से रथ, तथा विद्याधरो से विद्याधर भिडकर अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे। उस युद्ध के कारण उस समय उस युद्धस्थल मे रुधिर की धारा बह निकली। उस समय घोडों के खुरो की धूल आकाश मे छा गई, जिससे दिन मे भी अंधकार जैसा हो गया। कहीं योद्धा लोग एक दूसरे का नाम लेकर उनको ललकार रहे थे। रथो के चलने की, हाथियो की घटियों की, उनके चिघाडने की, धनुषो की टकार की तथा योद्धाओ की गर्जना की महान् ध्वनि हो रही थी। इस समय तलवार, कुन्त, मुद्गर, लोहदड आदि शस्त्रो से सैकडो योद्धाओ के शिर चूर्ण हो गये। कई एक की कमर टूट गई। कही योद्धा, कही हाथी तथा कही रथ टूटे पड़े थे। आकाश मे तलवार आदि चमकीले शस्त्रो के कारण बिजली सी चमक रही थी।

उस समय ऐसा भारी युद्ध हो रहा था कि किसी को भी अपने-पराये की सुधि नही थी। कही पृथ्वी पर आँते पडी थी, कोई बालो को फैलाये मूर्छित पड़ा था, कोई किसी के केशो को पकड़कर मार रहा था, कहीं शिर कट जाने
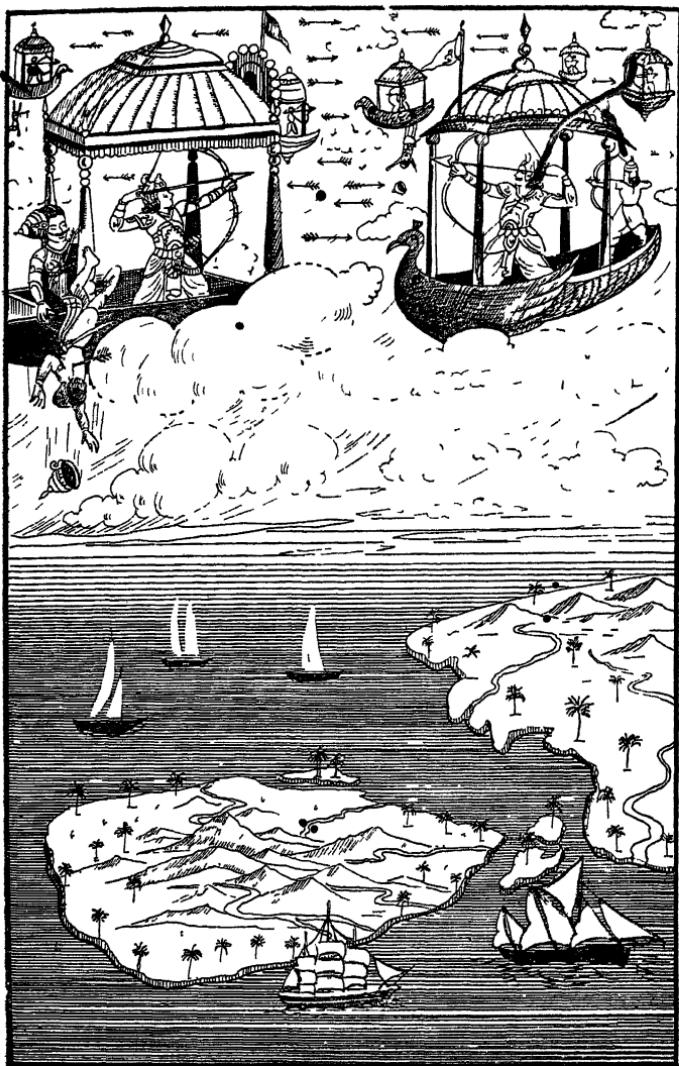
बिम्बसार के सेनापति जम्बूकुमार का सिंहल के राजा के साथ आकाश युद्ध

पर भी योद्धाओ के कबन्ध हाथ मे 'शस्त्र लिये युद्ध कर रहे थे। उस समय कुमार जम्बूस्वामी व्योमगति विद्याधर के विमान पर बैठकर रत्नचूल के साथ आकाश में युद्ध करने लगे। जम्बूस्वामी ने रत्नचूल का विमान तोड़ दिया, जिससे वह भूमि पर गिर गया। तब कुमार ने नीचे आकर रत्नचूल को बाँध लिया। राजा के पकडे जाने पर उसकी सेना भाग गई। तब राजा मृगाक तथा उसकी ओर के विद्याधर जम्बूकुमार की प्रशसा करने लगे। वह बोले—

"हे महाबुद्धिमान्, कामदेव के रूप को जीतने वाले कुमार आप धन्य हैं। आज आपने क्षत्रियधर्म के ऐश्वर्य को भली प्रकार प्रकट कर दिया।"

इस समय केरल नरेश मृगाक की सेना में जीत के बाजे बजने लगे। व्योमगति ने राजा मृगाक को जम्बू-कुमार का यथार्थ परिचय देकर उनका आपस मे घनिष्ठ प्रेम करा दिया। वदीजन कुमार के यश का गान करने लगे।

अब राजा मृगाक ने अन्य राजाओ को साथ लिये हुए बाजो की ध्वनि के साथ जम्बूकुमार को केरल नगरी के भीतर प्रवेश कराया। कुमार की सवारी का नगर में अत्यधिक आदर किया गया। नगर की युवतियो ने उनके ऊपर पुष्पो की वर्षा की। अनेक स्त्रियाँ हर्ष के मारे मगल गीत गाने लगी। तब वह आपस मे कहने लगी—

'हे सखि! देख तो सही, यही वह प्रतापी जम्बूकुमार है, जिन्होने लीलामात्र मे सिंहल-नरेश रत्नचल को बाध लिया।"

कोई सखी कहने लगी 'यह जम्बूकुमार सदा जीते रहे। इन्होने शत्रुओ को मारकर हमारे सौभाग्य की रक्षा की है। इस सिह की माता तथा सेठ अर्हद्दास की पत्नी जिनमती देवी धन्य है, जिसने अपने गर्भ मे दस मास तक इसे रखा। वह राजा श्रेणिक धन्य है, जिनकी सेवा ऐसे वीर योद्धा करते है कि अकेले ने ही सहस्रो योद्धाओं के छक्के छुडा दिये।

इस प्रकार जम्बू-स्वामी का जुलूस राजमहल के तोरण के पास पहुँचा। वहा अनेक प्रकार के रत्नो तथा मोतियो की अपूर्व शोभा की गई थी। कुमार कुछ देर तक उस शोभा को देखकर फिर धीरे-धीरे राजमन्दिर के भीतर गये। जम्बू-

कुमार को जो भी देखता था आनन्द से भर जाता था। राजा मृगाक ने जम्बूकुमार की सेवक के समान सेवा की। राजमहल मे उनको स्नान आदि कराकर भोजन कराया गया।

इसके पश्चात् दयावान् कुमार ने राजा मृगाक की सभा मे बैठकर रत्नचूल विद्याधर को बन्धनमुक्त किया। वह रत्नचूल से बोले—

"हे विद्याधर! युद्ध मे जय-पराजय तो होती ही है। युद्ध करना क्षत्रियो का धर्म है। इसमे आपको खेद नही करना चाहिये। अब आप सुखपूर्वक अपने घर जावें और राजा मृगाक के साथ प्रेम भाव बनाये रखे।"

इस पर राजा रत्नचूल बोला–

"हे स्वामी! अब कुछ दिन मुझे यही ठहरने की अनुमति दे, क्योकि मै आपके साथ चलकर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के दर्शन करना चाहता हू।"

इस पर कुमार बोले—

"जैसी आपकी इच्छा!"

केरल-राजकुमारी से विवाह

अब राजा मृगाक ने जम्बूकुमार के साथ-साथ राजा रत्नचूल का भी आतिथ्य किया। वह सब कुछ दिन वहां ठहर कर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार से मार्ग में मिलने तथा उनके साथ विलासवती का विवाह करने के लिये अत्यंत समारोह-पूर्वक चले। राजा रत्नचूल भी अत्यत भक्तिभाव से भरा हुआ उनके साथ चला। उनके साथ पाच सौ विद्याधर भी अपने-अपने विमानो पर चढकर चले। व्योममति विद्याधर अत्यत प्रसन्न होकर अपने विमान पर बैठकर कुमार के पीछे-पीछे चला। आकाश विमानो से छा गया। चलते-चलते वह सब उस कुरल पर्वत पर आये जहां सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपनी सेना तथा राजमण्डल के साथ विराजमान थे।

जब कुरल पर्वत सामने दिखलाई देने लगा तो व्योमगति ने मृगाक से कहा—

"मेरी सम्मति में हमको अपने विमानो को इसी स्थान पर आकाश में रोककर प्रथम सम्राट् से जाकर मिल आना चाहिये।"

"आपका यह प्रस्ताव बहुत सुन्दर है" कह राजा मृगांक ने भी अपने विमान को आकाश में ही रोक दिया।

तब व्योमगति तथा मृगाक के साथ-साथ रानी मालतीलता, सेनापति जम्बूकुमार तथा राजा रत्नचूल भी विमानों से उतर कर उनके साथ हो गये। वह सब जम्बूकुमार को आगे करके उस स्थान पर पहुँचे, जहा कुरल पर्वत पर सम्राट श्रेणिक बिम्बसार अपने शिविर में राज-सभा जोड़े हुए विराजमान थे। जम्बूकुमार नें द्वारपाल से सूचना दिलवाए बिना ही उनके साथ सभा में प्रवेश किया। जम्बूकुमार के साथ जब उन चारों नें सम्राट् की सभा में प्रवेश किया